

आधुनिक पॉजिटिव-पावर थिंकिंग से भी परे...

आध्यात्मिक सुपर थिंकिंग

(अनन्त शाश्वतिक परम विकास हेतु)

(गद्य-पद्यमय)

आचार्य कनकनन्दी

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती कुसुम ध.प. मुकेश कुमार जी शाह ग.पु. काँ, सागवाड़ा
2. श्रीमती प्रेमलता श्री भरत जी मांडव (डूँगरपुर)
3. कुमार निहित (3 माह) पुत्र श्री विपीन जी गनोड़ा के नामकरण निमित्त
4. श्री त्रिलोकचन्दजी जैन, दादावाड़ी, कोटा (राजस्थान)

ग्रंथांक-331

प्रतियाँ-500

संस्करण-प्रथम 2020

मूल्य-151 रु

प्राप्ति स्थान एवं सम्पर्क सूत्र

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-हेमन्त प्रकाश (महावीर देवडा)

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 94608-78187

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान, 55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विश्व अहिंसा दिवस के उपलक्ष्य में...

वर्तमान युग के जीनियस-पुरोगामी आत्म वैज्ञानिक
वैश्विक ज्ञान सम्पन्न निस्पृह श्रमणाचार्य
श्री कनकनन्दी गुरुवर...!

(आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे सत्य-तथ्य के ज्ञाता-अनुभवकर्त्ता!)

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : छोड़ो कल की बातें...)

छोड़ो/(तोड़ो) अपनी सीमाएँ...संकीर्ण एकान्त/(अनन्त मिथ्या) वाली...

पुरोगामी श्रमण गुरु की...समझो सत्य वाणी...कनकनन्दी आत्मविज्ञानी...

अनेकान्तवादी...आध्यात्मवादी...उदारवादी...हैं सत्यग्राही...

व्यापक दृष्टि...निस्पृह वृत्ति...प्रगतिशील...हैं गुणग्राही...(ध्रुव)...

प्रायः पञ्च दशक से वैश्विक विषयों के....

शोध-बोध-बोध-लेखन-अनुभव में सबसे आगे...

आधुनिक समस्त ज्ञान-विज्ञान परे...

भारतीय (जैन) तथ्य से सत्य उद्घाटित करे...

फारवर्ड द डेट बने हैं...अप् टू डेट से आगे...कनकनन्दी...(1)...

अनन्त शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर...

परमात्मा के अनन्त गुणों को बताते...

क्वाण्टम थ्योरी सूक्ष्म जीव विज्ञान से लेकर...

सापेक्ष सिद्धान्त सर्व रहस्य बताते...

महादार्शनिक...महावैज्ञानिक...महाआध्यात्मज्ञानी...कनकनन्दी...(2)....

न्याय-राजनीति-कानून व सम्विधान...

विश्व इतिहास से लेकर दर्शनशास्त्र...

मन्त्र-शकुन-ज्योतिष सामुद्रिक शास्त्र...

विज्ञान से लेकर अलौकिक गणित....

महा गणितज्ञ...महालेखक...महाकवीश्वर...कनकनन्दी...(3)...

बड़े-बड़े वैज्ञानिक कुलपति शिक्षाविद्....

न्यायाधीश राजनेता से ले धर्माचार्य....

आपके प्रश्नों से वे होते हैं अनुत्तर...

आपके अभूतपूर्व ज्ञान/(अनुभव) से पाते उत्तर...

देश-विदेश के जिज्ञासुजन...पाते समाधान शान्ति...कनकनन्दी...(4)

देश-विदेशों के जैन-अजैन अध्ययन करके...

पृथ्वी के (5) महादेशों में ज्ञान प्रभावना करते...

तन-मन-धन से स्वप्रेरित योगदान करते...

बिना ख्याति-प्रसिद्धि-प्रलोभन रहित करते...

बोली चन्दा आडम्बर रिक्त निस्पृहता से करते..कनकनन्दी...(5)...

स्व-मत-पर-मत तात्कालीन ज्ञान-विज्ञान...

सब विषयों में पुरोगामी आचार्य प्रवर/(सारस्वत)...

विदेशी वैज्ञानिक चैनलों से प्राप्त ज्ञान....

अद्भुत आश्चर्यकारी साहचर्य ज्ञान...

नवाचार है...नवदृष्टि है...नवोन्मेषी ज्ञानी...कनकनन्दी...(6)

प्रकृतिवादी पर्यावरण सुरक्षाभावी...

जीव दया अभयदान की साकार मूर्ति...

विश्व समस्या के हैं समाधानकर्त्ता...

ज्ञान लाभ लेते पुण्यशाली शोध कर्त्ता....

सम्वेदनशील अन्त्योदय से सर्वोदयकारी...कनकनन्दी...(7)...

विश्व धरा के सबसे जीनियस गुरुवर...

पृथ्वी के अरबों जनों में हैं पुरोधर...

वैश्विक ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न श्रमण....

प्रत्युत्पन्न मति वाग्मिता में यशोधर...

कलिकाल के अकलङ्क देव समन्तभद्र स्वामी...कनकनन्दी...(8)

कनक सूरी का वैश्विक गुरुकुल सबसे न्यारा...

आनन्ददायी शिक्षा से हो ज्ञान उजियारा...

दुनिया का श्रेष्ठतम है शान्ति निकेतन...

तन-मन-आत्मा के स्वास्थ्य प्राप्ति का साधन...

रोग शोक सन्ताप हरण से मिले सब सुख साता...कनकनन्दी..(9)

आओ हम सब “कनक गुरु” से ज्ञान है पाएँ...

सत्य-साम्य-सुख अमृत का लाभ है पाएँ...

आओ कोई भी धर्मी या कोई पन्थी...

एकीकृत हो साम्यवादी भावना भाएँ...

‘सुविज्ञ सागर’ की लहरें गुरुवर के चरण पखारे...कनकनन्दी...(10)

नन्दौड़, दि. 1.10.2019 व दि. 2.10.2018, रात्रि 8.02

अध्यात्म के बीजांकुर, निस्पृही साधक

आचार्य कनकनन्दी जी गुरुराज

प्रस्तुति-दीपिका नगिन शाह, ग.पु.काँ. सागवाड़ा

आध्यात्मिक गुरु आप हो, श्रुत के हो भंडार माँ वीणा मुख में बसी,

करते नव्य विचार । गुरूवः पान्तु नो नित्यं, ज्ञानदर्शन नायकाः।

चारित्रार्णव-गम्भीरा, मोक्ष मार्गोपदेशकाः।।

ये कहानी उस महापुरुष की है जिसने अनेक साधु-संत को अरिहन्त बनाने का मार्ग बताया। श्रावकों को आगमनिष्ठ बनाया है। ऐसे हमारे पूज्य आराध्य गुरुदेव, जिनकी वाणी में माँ सरस्वती बैठी है। श्रुतदेवी माँ जिनकी लेखनी बन कर कमलों में बसी है। अरिहन्त भगवान की वाणी जिनके मुख से निकलती है वो हैं वंदनीय, पूजनीय, वैज्ञानिक, धर्माचार्य, आचार्यराज श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव। किस प्रकार आचार्यश्री ने धर्म के पथ पर कदम बढ़ाया? कहाँ से गुरुदेव ने यह यात्रा प्रारम्भ की? किस प्रकार जैन धर्म को एक वैज्ञानिक धर्म सिद्ध किया है? साहित्य सृजन करते-करते कैसे महाकवि बने? अपनी बौद्धिक क्षमता को कैसे बढ़ाया? सत्य, समता और सुख को पाने का लक्ष्य क्यों बनाया? समता ही आत्मा का स्वभाव है। ऐसा क्यों बताया?

विलक्षण ज्ञानी गुरु की जीवनी—जब कोई बालक विशेष लक्षणों को लेकर धरती पर आता है तो सबके लिए विलक्षण हो जाता है।

एक अद्वितीय बालक का जन्म 1954 में ब्रह्मपुरी उड़ीसा प्रान्त में हुआ। इस बालक का नाम माता रूकमणी बाई और पिता मोहनचंदजी ने 'गंगाधर' रखा। जैसे-जैसे उम्र बढ़ी, इस बालक में प्रतिभाएँ भी बढ़ती गईं। आपकी प्रवृत्ति सब बच्चों से अलग थी। 4-5 वर्ष की अल्पायु में ही मस्तिष्क में नई-नई योजनायें आती रहती थीं। स्वयं पढ़ते थे, अपने सहपाठी मित्रों को भी पढ़ाते थे। आपका पढ़ना रहस्यमय था। हर विषय को तन्मयता से पढ़ते थे व चिंतवन भी करते थे।

बचपन से विशेष जिज्ञासु—आपकी बचपन से ही विशेष जिज्ञासु प्रवृत्ति थी। 6 वर्ष की उम्र से ही हर तरह के साहित्य का अध्ययन करना आपने प्रारम्भ कर दिया था। ज्ञानार्जन करने के लिये आप एकांत स्थान में रहते थे एवं निडर होकर वन में भ्रमण करते थे।

सादा जीवन उच्च विचार—सादगी पूर्वक आपका जीवन था। आप ढोंग, दिखावा, फैशन, छल-कपट, मायाचारी, लड़ाई-झगड़ा, क्रोध आदि से हमेशा दूर रहते थे। किंचित मात्र भी दुष्प्रवृत्ति आपमें नहीं थी। नये-नये साहित्य व धार्मिक वैज्ञानिक पुस्तक पढ़ने का आपको एक मात्र शौक था। वह आज भी है।

मनोरंजन से दूर—जिन कारणों से नैतिक आचरण का पतन हो ऐसी भौतिक सामग्री से कोसों दूर रहते। आप बचपन से ही जिस संगीत में सत्य हो, ऐसे सुमधुर एवं कर्णप्रिय गीत ही पसन्द करते थे।

प्रकृति प्रेम—पेड़-पौधे लगाना, उनकी सुरक्षा करना, अपने हाथ से पानी डालना, सफाई करना आदि। जैसे-जैसे पेड़ में पत्ते आते उनकी लंबाई बढ़ती वैसे-वैसे आपकी कल्पना शक्ति भी बढ़ने लगी। जैसे-जैसे यह पेड़ बड़ा होकर भारी मात्रा में ऑक्सीजन देगा, छाया देगा, इसके फल हमें मधुर पानी पिलायेंगे। इत्यादि सोचते हुये आपने अपने घर के चारों तरफ पेड़ ही पेड़ लगा दिये।

अनेक देश-विदेशों के विश्वविद्यालय में आपके ग्रंथ-साहित्यों का एक लाइब्रेरी कक्ष है। जहाँ पर बड़े-बड़े विद्वान्, प्रोफेसर, वैज्ञानिक आदि अध्ययन करते हैं, आप जहाँ भी जाते हैं शांति और समता का संदेश देते हैं।

क्रोध पर समता का जल—आपने अपने आंगन में नारियल का पेड़ लगाया।

एक दिन जब आप स्कूल से आये तो आपकी नजर सबसे पहले नारियल के पेड़ पर पड़ी, आपने देखा कि नारियल के पेड़ पर किसी ने मिट्टी डाल दी है। आप जोर-जोर से चिल्लाने लगे। मेरे नारियल के पेड़ पर किसने मिट्टी डाली है? जब कुछ जवाब नहीं मिला तो आप चुप हो गये, पीछे मुड़े तो देखा आपके पिताजी खड़े थे, पिताजी शांति से आपकी सब बातें सुन रहे थे। पिताजी को शांत देख आपको बड़ा दुःख हुआ। थोड़ी देर आप अपने पिताजी को देखते रहे। आपके शांत होने पर पिताजी ने बड़े प्यार से सिर पर हाथ फेरते हुये कहा कि बेटा पेड़ पर मैंने मिट्टी डाली है। मन में आपको बड़ा खेद हुआ कि मैं बिना सोचे समझे क्यों चिल्लाया? आधी रात तक एक ही बात दिमाग में रही, आज मैंने पिताजी का अपमान कर दिया। पिताजी के शांत स्वभाव ने आपको शांति का संदेश दिया। उसी रात से आपने संकल्प लिया कि आज के बाद बिना सोचे-समझे क्रोध नहीं करूंगा। आदर्श पुत्र का आपने कर्तव्य निभाया। आप बचपन से ही गंभीर थे। पिताजी के शांत स्वभाव ने आपके जीवन को ही बदल दिया। राष्ट्रभक्ति, देशभक्ति से ओतप्रोत विश्व का कल्याण मेरे द्वारा हो। जन-जन की सेवा करूं। सुभाषचंद्र बोस की तरह आपके विचार थे। जो क्रांति नेताजी ने की है, वैसे क्रांति में भी करूं।

अन्याय नहीं सहना—एक बार पैतृक भूमि के लिये सरकारी नोटिस आया। माता-पिता घबरायें। आपने नोटिस पढ़ा व सबको आश्चस्त किया। पिता को कहा घबराने की कोई बात नहीं है। पुनः नोटिस आने पर आपने दृढ़ता से कहा यह जमीन हमारी है, इस पर हमारा अधिकार है। हमारे यहाँ से कोई कोर्ट में नहीं आयेगा, न ही कोई आदेश का पालन करेंगे। केस यहीं पर बन्द कर दीजिये। आपकी निडरता को देखकर और लिखित दस्तावेज पढ़कर कर्मचारी चुपचाप क्षमा माँग कर चला गया। आप घर में छोटे होकर भी घर वालों के लिये सुरक्षा कवच बन जाते थे।

विज्ञापन का विरोध—जब आप 11वीं कक्षा में थे तब राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के एक विशाल स्तर पर शिविर में आपने भाग लिया। एक दिन शिविर में एक पत्रिका छप कर आई, उसमें बीड़ी का विज्ञापन देखकर आपने वहाँ के प्रचारकों से पूछा इस पत्रिका में बीड़ी का विज्ञापन क्यों? प्रचारक ने कहा—इस कार्य के लिये धन की आवश्यकता है। बिना विज्ञापन के पैसे नहीं आयेंगे। आपने कहा - फिर आप

संस्कार और शिक्षा कैसे देंगे? इस तरह तो आप लोग ही व्यसन का प्रचार कर रहे हो। आप बिना विज्ञापन के कैसे एकत्रित करेंगे तो भी आपको पैसा मिल जायेगा। इस शिविर से व्यसन मुक्ति का संदेश जाना चाहिये। आपकी बात मान्य हुई और बीड़ी का विज्ञापन हटा दिया गया।

राजनीति में असत्य-आपने अपने जीवन में तीन लक्ष्य बनाये थे। नेता, वैज्ञानिक या साधु बनूँगा। सबसे पहले राजनीति की ओर अग्रसर हुये। आप देश की सेवा करना चाहते थे। परन्तु राजनीति में नेताओं के साथ रहने से आपको पता चला कि यहाँ केवल असत्य है। जबकि सत्य से बड़ा कोई नहीं है। यहाँ भ्रष्टाचार, अन्याय, अनीति है। पग-पग पर मायाचारी है। मुझे ऐसा नेता नहीं बनना है। जहाँ सत्य होगा वहीं मैं जाऊँगा। जीवन का सत्य क्या है? बस सत्य को पाना ही आपका परम लक्ष्य है। सत्य की खोज में आपने अनेक संतों से भेंट की। आपकी उम्र के साथ-साथ जिज्ञासा और अनेक प्रश्न बढ़ते गये। आप एक नहीं, बहुत सारे प्रश्न पूछ लेते थे। इसलिये सामान्य विद्वान् आपको उत्तर नहीं दे पाते थे। आपकी भावना सत्य जानने की थी, इसलिये आगे-आगे आपको समाधान देने वाले वैसे ही मिलते गये।

सत्य का अवलोकन-एक बार आप सम्मेल शिखर जी गये। वहाँ आपको इस युग के महान् आचार्य वात्सल्य रत्नाकर श्री विमल सागर जी गुरुदेव, गणाधिपति, गणधराचार्य श्री कुन्थुसागरजी गुरुदेव एवं गणिनी आर्यिका विजयमति जी के दर्शन हुये। आप जिज्ञासु बनकर आचार्य श्री विमल सागरजी के पास पहुँचे, उन्हें प्रणाम किया और उनसे अपने प्रश्न पूछे तब आचार्यश्री ने कहा कि आपके प्रश्नों का उत्तर तो हमारी शिष्या गणिनी आर्यिका विजयमति माताजी ही देंगी। विजयमति माताजी इस युग की प्रथम गणिनी आर्यिका हैं। उन्होंने आपके सभी प्रश्नों का उत्तर बड़ी सहजता से दिया। माताजी के समाधान से प्रभावित होकर आपने जिनधर्म की शरण स्वीकार की। आपने जब अपने आपको गुरु के चरणों में समर्पित कर दिया, उनके समान सादगी को स्वीकार कर, रंगीन वस्त्र त्याग दिये। सफेद वस्त्र धारण कर आप आचार्य श्री कुन्थुसागरजी के चरणों में ब्रह्मचारी बन गये। आपके पढ़ने की लगन और परिश्रम को देखकर आचार्यश्री बड़े खुश हुये। वे स्वयं आपको पढ़ाने लगे।

दीक्षा गुरु के हीरा-जब कोई उनके (आचार्यश्री) सामने आपकी तारीफ

करते थे तब आचार्यश्री कहते थे, ये मेरा सुयोग्य शिष्य है। मुझे इस शिष्य पर गौरव है। यह मेरा हीरा है। आपने जब गुरुदेव के मुख से ऐसा सुना तो मन में प्रतिज्ञा कर ली कि मैं अपने गुरु की बात कभी असत्य नहीं होने दूँगा आज आप हीरे के रूप में पूरे विश्व में अपनी चमक-दमक से आगे ज्ञान की रोशनी फैलाने लगे।

हर धर्म का ज्ञान—आपका ज्ञान विशेष है। आपने सब धर्म का अध्ययन किया है। अन्य धर्म के ग्रंथ में प्रमुख रूप से गीता, मुस्लिम ग्रंथों का, सिक्ख के गुरु ग्रंथ साहब, बौद्धों के धम्मपद का, आयुर्वेद, वेद-पुराण आदि ग्रंथों का अलौकिक गणित, विज्ञान से संबंधित हर विषय का, शोधकर्ता वैज्ञानिकों का आपको बेजोड़ ज्ञान है आपका नारा है—अज्ञानता ही महापाप है।

गौरवान्वित शिष्य—उस समय जो भी साधु आपसे पढ़े वे गौरवान्वित होते हुये कहते कि हम मुनि श्री कनकनन्दीजी से पढ़ रहे हैं। उस समय 200 साधुओं में आपकी अलग पहचान थी। बड़े-बड़े आचार्य, साधु आपका ज्ञान देखकर नतमस्तक हो जाते। आपने अपने नाम 'कनक' (जंदां) को पूर्ण रूप से सार्थक किया। आपके पास छोटे-बड़े सभी साधु पढ़ते व कहते कि ज्ञानी साधु के पास पढ़कर हम अपने भव भव के मिथ्यात्व को नष्ट कर सकते हैं। विनय से पढ़ा हुआ एक अक्षर भी अगले भव में केवलज्ञान का कारण बन सकता है। आपके सामने जब साधु पढ़ने आते हैं तो वो आपको भगवान् मानकर आते हैं। आपके मुख से निकलने वाला हर वाक्य आगम सम्मत होता है। आप प्रत्येक साधु साध्वियों को प्रथम भाग से लेकर बड़े-बड़े ग्रंथ धवला, जय धवला आदि का अध्ययन कराते हैं, आप हर विषय का ज्ञान देते हैं।

पूरे सात साल तक एकान्त पंथियों से लोहा लिया। उनको परास्त किया एवं एक विशेष क्रांति पूरे भारत में लाये। लोगों को सत्य से अवगत (दिग्दर्शन) कराया।

निर्माही—आपको किसी से रागद्वेष नहीं है। आप सभी साधुओं के प्रति निष्पक्ष भाव रखते हैं। अंगोपांग से आप सब कुछ बता देते हैं। ये व्यक्ति कैसा है? यह मोक्षमार्ग में चलने लायक है या नहीं? सामुद्रिक लक्षण, स्वप्न विज्ञान, अंग स्फुरण आदि का आपको अच्छा ज्ञान है। आपकी 100 प्रतिशत भविष्यवाणी अभी तक सत्य सिद्ध हो चुकी है।

आपकी वाणी का चमत्कार—आपकी वाणी का साक्षात् चमत्कार सागवाड़ा के हर भक्त ने देखा। वैसे आप कभी भविष्यवाणी नहीं करते हैं परन्तु नारियल को देखकर आप रोज बोलते थे। आपकी वाणी का चमत्कार एक साल में आ गया। अगले साल सागवाड़ा में बालाचार्य योगीन्द्र सागर जी का चातुर्मास हुआ। उस चातुर्मास में सेठो के मन्दिर से एक दिन 72 सफेद पाषाण (मार्बल) की प्रतिमायें भू-गर्भ से निकलीं। सभी मन्दिर बड़े ही सुन्दर बन गये।

आपका वास्तविक परिचय—आपकी माता जिनवाणी है, पिता सिद्ध भगवान् हैं, भाई बांधव पंच परमेष्ठी हैं। मोक्ष ही आपका घर है। आपका महान लक्ष्य मोक्ष पाना ही है। सत्य, साम्य और सुख को पाने हर पल प्रयासरत् हैं। आपकी समतामयी साधना को मैं (आ. आस्थाश्री) प्रणाम करती हूँ।

ग्रंथों की रचना—आपको ग्रंथ लिखने की प्रेरणा सबसे पहले आचार्यश्री विमलसागरजी, आचार्यश्री भरत सागरजी और क्षुल्लक श्री सन्मति सागर जी, ज्ञानानंद (आचार्यश्री सन्मतिसागर जी समाधिस्थ) ने ही दी। सबने कहा—आप ग्रंथ लिखो, आप ही यह कार्य कर सकते हो। तब आपने कहा—मैं अभी छोटा हूँ। अभी तो मुझे बहुत अध्ययन करना है, लेकिन बार-बार साधुओं के आग्रह पर आपने पुस्तकें (ग्रंथ) लिखना प्रारम्भ किया। एक दिन में चार-चार (4) पुस्तकों का मैटर तैयार करवाते थे। हर पुस्तक का विषय अलग-अलग रहता था। उन सबका डिक्टेसन आप एक साथ बताते जाते थे। फिर भी एक पुस्तक का विषय दूसरी पुस्तक में मिक्स नहीं होता था। जिनवाणी का विनय और गुरु का विनय करने से आपका ज्ञान बढ़ता ही गया। आप जो भी विषय पढ़ाते हैं वह विज्ञान से सिद्ध करके बताते हैं। आपके पास वैज्ञानिक लोग विशेष रूप से विज्ञान का और धर्म का लाभ उठा रहे हैं। आपके साहित्य अनेक देशों में विविध भाषाओं में छप चुके हैं।

विशेष धर्म प्रभावना—धर्म प्रभावना पहले तो स्वयं के आचरण से होती है और फिर बाहरी प्रभावना होती है। अभी भारत देश में ही नहीं अपितु 5 महादेशों में भी धर्म की महती प्रभावना आपके अनेक वैज्ञानिक शिष्यों, विद्वानों द्वारा हो रही है। देश-विदेशों के विश्वविद्यालयों में आपके ग्रंथ-साहित्यों का एक लाइब्रेरी कक्ष है। जहाँ पर बड़े-बड़े विद्वान, प्रोफेसर, वैज्ञानिक आदि अध्ययन करते हैं, आप जहाँ भी जाते

हैं शांति और समता का संदेश देते हैं।

महासभा एवं जैन गजट परिवार की ओर से शत् शत् वंदन, शत् शत् नमन।

साभार-जैनगट 28-01-2019

जीनियसों के जीनियस

(श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव द्वारा

सृजित शोधपूर्ण ग्रन्थों के बहुआयामी विषय!)

प्रस्तुति-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : वृन्दावन का कृष्ण-कन्हैया...)

जीनियसों के जीनियस...कनकनन्दी गुरुराया...

महावैज्ञानिक-गणितज्ञ...बहुआयामी प्रतिभा वाला...(स्थायी)....

सारी दुनिया में अलौकिक...अद्भुत प्रतिभाशाली हैं...

महाकवि वैज्ञानिक लेखक...शान्त-सन्त-महन्त हैं...

जीनियस हैं महाविभूति...अध्यापक परमेष्ठी आला...(1)...

नग्न दिगम्बर सहजभावी...आधुनिक अकलङ्क हैं...

समन्तभद्र जैसी प्रतिभा...तार्किक सारस्वत हैं...

ज्ञानी होकर सरल स्वभावी...अतिशय है भावों का न्यारा...(2)....

धर्म-दर्शन-विज्ञान-गणित...अलौकिक हैं विज्ञाता....

विश्व इतिहास कानून न्याय...आगम-पुराण के ज्ञाता....

सामुद्रिक-ज्योतिष-मन्त्र...विज्ञान का बोध निराला...(3)

माइक्रोबायोलॉजी-मेडीकल साइंस...आयुर्वेद शास्त्र के ज्ञाता...

स्वास्थ्य विज्ञान के विविध आयामी...साहित्य के भी सृजेता...

क्वाण्टम से ले एटम थ्योरी...मास्टर थ्योरी सबसे आला...(4)...

विविध विषयक शोधपूर्ण...(प्रायः) तीन सौ पचास (350) ग्रन्थ हैं....

प्रायः सात हजार (7000) काव्य...गीताञ्जली शतक नव (109) हैं....

इन गीतों ने जन-गण-मन में...ज्ञान चेतना को जगाया...(5)...

ऐसे विलक्षण ज्ञानी होकर...निस्पृही-निराडम्बर हैं...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रिक्त...अयाचक-निर्द्वन्द्व हैं...

सब जीवों में समताधारी...वात्सल्य व प्रेम निराला...(6)...

तथापि स्वयं को बालक सम...विद्यार्थी/(शोधार्थी) ही मानते हैं...

देश-विदेशों के साहित्य व...वैज्ञानिक चैनल पढ़ते हैं...

गुणी-दुर्गुणी-स्वदोष व...प्रकृति से भी सतत सीखते...(7)...

जिज्ञासु-गुणग्राही-उदारता...सनम्र सत्यग्राहिता से सीखे...

स्व-पर-विश्व उपकार हेतु...शोध-बोध-नवाचार भी करे...

उक्त गुणों से पृथ्वी भर में...अग्रणी रहने का लक्ष्य धारा...(8)...

इसके कारण आचार्यश्री से...देश-विदेश के विज्ञानी...

आचार्य-मुनिगण-साध्वी...जिज्ञासु जन पढ़ते हैं...

‘सुविज्ञ’ जन ज्ञानी बनकर...देश-विदेश में ज्ञान प्रसारे...(9)....

नन्दौड़, दि. 19.11.2019 व दि. 20.11.2019 प्रातः 10.00

अच्छे काम की प्रशंसा से बढ़ता है नया करने का हौसला

खगोल वैज्ञानिक डॉ. जयंत नार्लीकर

कोल्हापुर के एक मध्यम वर्गीय परिवार में 1938 में मेरा जन्म हुआ। मेरे दादाजी वासुदेव शास्त्री संस्कृत के विद्वान थे। मेरे पिता गणितज्ञ थे वे हायर एजुकेशन के लिए 1928 से 32 तक कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़े थे। ब्रिटिश काल में रॉयल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस के ‘रोल ऑफ ऑनर’ पर आज भी उनका नाम लिखा हुआ है। उन्हें देश से बहुत प्यार था, इसलिए सभी प्रलोभन छोड़कर वे लौट आए और बनारस विवि. में गणितज्ञ हो गए। तब वे 24 वर्ष के थे। कैम्ब्रिज जाने के लिए कोल्हापुर में पिताजी ने जो कर्ज लिया था, बीएचयू के संस्थापक पं. मदन मोहन मालवीय ने वह सब चुका दिया। पिता बाद में बीएचयू में वाइस चांसलर और फिर राजस्थान लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष रहे। यह मेरा सौभाग्य था कि मैं विद्वान लोगों के घर में पैदा हुआ, शायद इसलिए साधारण सा स्टूडेंट होकर भी मैं कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी तक पहुंच गया। मेरा पूरा बचपन बनारस

में बीता, वही हिंदू विवि. से स्नातक होकर जब शिक्षा और अनुसंधान के लिए कैम्ब्रिज रवाना हुआ, तब मैं 19 वर्ष का था। वहीं पर सैद्धांतिक खगोल भौतिकी में मेरी दिलचस्पी बढ़ी। मैं सोचता हूँ कि मेरी मां सुमति और दादी भी उच्च शिक्षित थीं, इसलिए मुझे अच्छे संस्कार मिले। परिवार के सभी सदस्य, रिश्तेदार पढ़े-लिखे थे और मेरे बेहतरीन दोस्त साबित हुए। शायद इसलिए मेरी जीवनयात्रा आसान हो गई। जिस घर में शिक्षा का माहौल होता है, उस घर के बच्चों को पढ़ने के लिए बार-बार टोकना नहीं पड़ता। इतना सब बताने का मेरा उद्देश्य यही है कि शिक्षा हर किसी के लिए कितनी जरूरी है। आपके उच्च शिक्षित और संस्कारी होने का असर यह होता है कि आपके परिवार में उसकी चैन बनती चली जाती है। ऐसे ही समाज में जब चैन बनने लगेगी तो देश की उन्नति में बाधा नहीं आएगी।

मैंने इंटर में टॉप किया था, इसलिए सभी विकल्प खुले थे। अधिकांश छात्र इंजीनियरिंग में चले गए। मैंने गणित और भौतिक शास्त्र चुना और खगोल विज्ञान में अनुसंधान करने का मन बनाया। स्कूली जीवन का एक वाक्या बताना चाहता हूँ-उस समय बनारस हिंदू विश्वविद्यालय में मैट्रिक परीक्षा को प्रवेश परीक्षा कहा जाता था। तब हिंदी में किसी को भी डिस्टिंग्शन देने का चलन नहीं था। 100 में 25 अंक बाजू में रखकर ही परीक्षक पेपर जाँचता था। सभी को मुझसे हाईस्कोर की उम्मीद थी। मैं 1000 में से 805 अंक हासिल कर प्रथम आया। मुझे हिंदी, संस्कृत और गणित में विशेष योग्यता मिली, वह रिकॉर्ड अभी तक किसी ने नहीं तोड़ा है, जबकि मैं अहिंदी भाषी छात्र था। जब सभी ओर मेरी तारीफ होने लगी तो हौसला बहुत बढ़ गया। अपने 80 वर्ष से ज्यादा के अनुभव से यह कहना चाहता हूँ कि कोई अच्छा काम कर रहा है तो उसकी तारीफ करने में आप संकोच न करें। आपके द्वारा दी गई तारीफ ही सामने वाले को और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है। मुझे शुरू से गणित पसंद था, बाद में मुझे विज्ञान भी पसंद आने लगा। हमारे घर में दो दीवारों पर ब्लैकबोर्ड टंगे होते थे, जिन पर पिता व भाई मनोरंजक तरीके से गणित और विज्ञान के बारे में लिखते रहते थे। हमें बोर्ड पर तब तक लिखते रहना होता था, जब तक हम कोई सूत्र या सवाल नए तरीके से

हल नहीं कर लेते थे। मेरा अनुभव कहता है कि हर घर में बच्चों के बड़े होने तक ब्लैकबोर्ड रखना चाहिए। यह जरूरी बातें नोट करने में, पढ़ाई में बहुत मदद करता है।

फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांत: मैंने कैम्ब्रिज में विश्वविद्यालय नक्षत्र विज्ञानी प्रो. फ्रेड होयल के निर्देशन में गुरुत्वाकर्षण एवं कॉस्मोलोजी पर नए अनुसंधान किए। इसे आगे चलकर फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांत कहा जाने लगा। इसमें हमने बताया कि पृथ्वी और ब्रह्मांड की उत्पत्ति कैसे हुई। कई नए अनुसंधानों पर शोध करके मैंने डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। लोग मुझे ब्रह्मांड की स्थिर अवस्था में सिद्धांत का विशेषज्ञ बुलाने लगे। साथ ही भौतिकी के फ्रेड होयल-नार्लीकर सिद्धांत का जनक भी कहने लगे। विज्ञान को आम जीवन में उपयोगी बनाने के लिए विज्ञान के अलग-अलग सिद्धांतों पर आधारित कई भाषाओं में अनेक पुस्तके लिखीं।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि हमने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत और मानक सिद्धांत को मिलाते हुए होयल-नार्लीकर सिद्धांत बनाया। मेरे द्वारा प्रतिपादित गुरुत्वाकर्षण के नए सिद्धांत एवं कॉस्मोलोजी संबंधी अनुसंधान के लिए कैम्ब्रिज विवि. ने मुझे एडम पुरस्कार से सम्मानित किया। 30 वर्ष की आयु में यह पुरस्कार पाने वाला मैं चौथा भारतीय था। किसी भारतीय के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि कही जा सकती है। मुझसे पहले डॉ. होमी जहांगीर भाभा, डॉ. एस. चंद्रशेखर व डॉ. बी.एस. हुजुबार यह पुरस्कार पा चुके हैं। जब 1964 में मुझे पद्मभूषण से अलंकृत किया गया तो लगा पूरे देश का प्यार मुझे मिल गया है। देश-विदेश में मेरे छात्रों के रूप में बहुत बड़ा परिवार है, जो नए-नए विषयों पर अनुसंधान करके के लिए मुझसे संपर्क करते रहते हैं। यकीन मानिए मैं आज भी इन बच्चों से कुछ न कुछ सीखता रहता हूं। मुझे एक ही कमी लगती है कि एक जीवन अनुसंधान करके के लिए यह कम है।

नार्लीकर, इंटर-यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिजिक्स के संस्थापक-निदेशक रहे। कॉस्मोनोलॉजी कमीशन ऑफ़ इंटरनेशनल एस्ट्रोनॉमिकल

यूनियन के पूर्व अध्यक्ष नालींकर ब्रह्मांड विज्ञान में अपने काम के लिए जाने जाते हैं। वर्तमान में अन्तर्विश्वविद्यालयीन खगोलशास्त्र तथा खगोल-भौतिक केंद्र, पुणे के संचालक हैं।

(जैसा उन्होंने दिव्य मराठी की जयश्री बोकिल को बताया)

**स्मृति शेषः नासा के कैलकुलेशन को मात देने वाले गणितज्ञ का
मानसिक संतुलन गड़बड़ा गया था
आइंस्टीन के सिद्धांत को चुनौती देने वाले वशिष्ठ को
बर्कले यूनिवर्सिटी ने जीनियसों का जीनियस कहा था**

गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह का 73 साल की उम्र में निधन
जन्म-2 अप्रैल 1946 मृत्यु-14 नवंबर 2019

पटना। ख्याति प्राप्त गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह नहीं रहे। वह 73 साल के थे। गुरुवार सुबह पटना में उनका निधन हुआ। उन्होंने हर परीक्षा में पहला स्थान पाया। बर्कले यूनिवर्सिटी (कैलिफोर्निया) ने उन्हें 'जीनियसों का जीनियस' कहा था। उन्होंने आइंस्टीन के सापेक्षता के सिद्धांत को भी चुनौती दी थी। उनके बारे में मशहूर है कि नासा में अपोलो की लॉन्चिंग से पहले जब 31 कम्प्यूटर कुछ समय के लिए बंद हो गए तो ठीक होने पर उनका और कम्प्यूटरों का कैलकुलेशन एक था। 1973 में उनका मानसिक संतुलन बिगड़ा। वह अंततः हम सबको अलविदा कह गए।

श्रद्धांजलि तो सभी ने दी पर एंबुलेंस नहीं, शव डेढ़ घंटे अस्पताल के बाहर पड़ा रहा

40 साल से सिजोफ्रेनिया नामक मानसिक बीमारी से पीड़ित वशिष्ठ नारायण सिंह पटना के एक अपार्टमेंट में गुमनामी का जीवन रहे थे। किताब, कॉपी और एक पेंसिल उनकी सबसे अच्छी दोस्त थी। पटना में उनके साथ रह रहे भाई अयोध्या सिंह ने बताया कि अमेरिका से वो अपने साथ 10 बक्से किताबें लाए थे, जिन्हें वो पढ़ा करते थे।

वशिष्ठ नारायण के नाम पर बनाया जाएगा शोध केंद्र

पटना। पटना विश्वविद्यालय में दिवंगत गणितज्ञ वशिष्ठ नारायण सिंह के नाम पर शोध केंद्र बनाया जाएगा। वशिष्ठ नारायण सिंह इसी विश्वविद्यालय के छात्र थे। निधन के बाद विश्वविद्यालय भी जगा है। इसके पहले इसे भी अपने छात्र के बारे में जानकारी नहीं थी। कुलपति रासबिहारी सिंह के अनुसार, वशिष्ठ नारायण की आदमकद प्रतिमा साइंस कॉलेज में लगाई जाएगी।

जीनियसों के जीनियस

वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी गुरुराज

गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह जिन्होंने आइन्स्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त की समीक्षा की, जिससे बर्कले यूनिवर्सिटी कैलिफोर्निया ने उन्हें जीनियसों का जीनियस कहा, तब वैज्ञानिक आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव वर्ष 1982 से ही “विश्व विज्ञान रहस्य” “वैज्ञानिक आइन्स्टीन के सिद्धान्तों को पुनर्परीक्षण की आवश्यकता” “डार्विन आदि जीव वैज्ञानिकों के सिद्धान्त आंशिक सत्य, अधिक असत्य” “ब्रह्माण्डीय जैविक रासायनिक विज्ञान” “अनन्तशक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा तक” आदि प्रायः अर्द्धशतक ग्रन्थ लिख लिए हैं व लिख रहे हैं जो “आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परे जैन तथ्य” आदि 50 ग्रन्थ सृजित हैं और देश-विदेश के वैज्ञानिक शिष्यों को पढ़ा रहे हैं तो फिर वैज्ञानिक आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुराज क्यों जीनियसों के जीनियस नहीं होंगे?! अर्थात् अवश्य हैं। इतना ही नहीं शिक्षा, इतिहास, कानून, राजनीति, धर्म, दर्शन आदि बहुआयामी ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी शोधपूर्ण अभी तक गद्य-पद्यमय प्रायः 350 ग्रन्थ सृजित किये व कर रहे हैं।

दीर्घ इतिहास साक्षी है, भारतीय लोग “घर का जोगी जोगना अनदेश का सिद्ध” जैसा व्यवहार करते हैं। इन कमियों को त्यागकर प्रतिभाओं का सम्मान, सहयोग, सदुपयोग करना चाहिए। “जीते बाप से लट्टमलट्टा, मरे हुए को पहुँचाए गंगा” की उक्ति को भाव-व्यवहार से त्यागना चाहिए।

जिज्ञासु-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर
संघस्थ-आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव

लेसन्स फ्रॉम ग्रेट थिंकर्स

लिओनार्दो दा विंची

जन्म - 15 अप्रैल, 1452 । निधन - 2 मई, 1519

छोटी उम्र से ही विविध विषयों का नियमित अध्ययन प्रारंभ किया, जिनमें संगीत, चित्रकारी और मूर्तिरचना प्रधान थे।

1. जीवन बहुत आसान है: आप कुछ काम करते हैं। ज्यादातर में असफल हो जाते हैं, कुछ काम कर जाते हैं। जो काम कर जाता है उसे आप और अधिक करते हैं। अगर वो बड़े स्तर पर काम कर जाता है, तो बाकी लोग तेजी से उसकी नकल कर लेते हैं। तब आप कुछ और करते हैं। ट्रिप कुछ और करते रहने में है।
2. अच्छी तरह बिताया हुआ दिन सुखद नीन्द लेकर आता है।
3. कला कभी खत्म नहीं होती, उसे बस त्याग दिया जाता है।
4. तीन तरह के लोग होते हैं : वो जो खुद देखते हैं, वो जो दिखाने पर देखते हैं, वो जो नहीं देखते हैं।
5. सबसे बड़ी खुशी समझने की खुशी है।
6. मैं किसी काम को करने की तत्परता से प्रभावित हूँ। सिर्फ जानना पर्याप्त नहीं है, हमें लागू करना चाहिए। इच्छा रखना काफी नहीं है; हमें करना चाहिए।
7. अनुपयोग से लोहा जंग खा जाता है, स्थिरता से पानी अपनी शुद्धता खो देता है...इसी तरह निष्क्रियता भी मस्तिष्क की ताकत सोख लेती है।

माइकल एंजेलो

जन्म - 6 मार्च 1475 । निधन - 18 फरवरी 1564

इतालवी मूर्तिकार, चित्रकार, वास्तुकार और उच्च पुनर्जागरण युग के कवि थे। पश्चिमी कला के विकास में इनकी अहम भूमिका रही है।

1. निरर्थक बिताए समय से ज्यादा दुःखदायी कुछ नहीं।
2. महान कार्य के लिए लंबे समय तक धैर्य रखना जरूरी है।

3. बड़े लक्ष्य निर्धारित कर उन्हें नहीं हासिल करना बुरा है, लेकिन इससे भी बुरा है छोटे लक्ष्य हासिल कर संतुष्ट होना।
4. मनुष्य अपने हाथों से नहीं मस्तिष्क से रंग भरता है।
5. पत्थर के हर टुकड़े में एक खूबसूरत प्रतिमा छिपी है। इसकी खोज करना मूर्तिकार का काम है।
6. अपनी सोच के अलावा किसी चीज़ पर हमारा पूरा नियंत्रण नहीं होता।
7. छोटी-छोटी चीज़ें मिलकर महान बनाती हैं, लेकिन महानता कभी छोटी नहीं हो सकती।
8. खुद पर भरोसा ही सबसे सर्वश्रेष्ठ और सबसे सुरक्षित रास्ता है।
9. शब्दों की बजाय मन को पढ़ने की कोशिश की जाए क्योंकि कलम दिल की भावनाओं को व्यक्त नहीं कर सकता।

संदर्भ-

यद्यपि बहु नाधीषे पठ पुत्र तथापि व्याकरणम्।

स्वजनः श्वजनो माऽभूत् सकलः शकलः सकृच्छकृत्॥ (5)

हे पुत्र! यदि तू अधिक नहीं पढ़ता है तो व्याकरण अवश्य पढ़ ले जिससे स्वजन (आत्मीय जन) श्वजन (कुक्कुर समूह), सकल (सम्पूर्ण) शकल (खण्ड) और सकृत् (एक बार) शकृत् (विष्टा) न हो जाय।

जन्मान्धोऽवैयाकरणो मूकस्तर्कविवर्जितः।

साहित्यविधुरः पङ्गुनिर्धनः कोषवर्जितः॥ (6)

जिसने व्याकरण नहीं पढ़ा है वह जन्मान्ध है, जो न्यायशास्त्र से रहित है वह गूंगा है, जो साहित्य से रहित है वह लंगड़ा है और कोषरहित है वह निर्धन है।

शब्दैतिह्यैर्नगीः शुद्धा यस्य शुद्धा न धीर्नयैः।

स परप्रत्ययात् क्लिश्यन् भवेदन्धसमः पुमान्॥ (7)

जिसकी वाणी व्याकरण से शुद्ध नहीं है और जिसकी बुद्धि नयों से शुद्ध नहीं है वह पुरुष दूसरे के भरोसे से क्लेश उठाता हुआ अन्धे के समान है।

ज्ञानीप्रशंसा

तत्त्वातत्त्वविदो लोके धन्याः सुज्ञानिनो नराः।

सर्वदा हृदये येषामुदितो ज्ञानभास्करः॥(1) स.सं.

जिनके हृदय में सदा ज्ञानरूपी सूर्य उदित रहता है वे तत्त्व-अतत्त्व के ज्ञात ज्ञानी पुरुष लोक में धन्य हैं-प्रशंसनीय हैं।

अलौकिक-महोवृत्तं ज्ञानिनः केन वर्ण्यते।

अज्ञानी बध्यते यत्र ज्ञानी तत्रैवमुच्यते॥(2)

अहा, ज्ञानी मनुष्य का लोकोत्तर आचार किसके द्वारा कहा जा सकता है? जहाँ अज्ञानी बन्ध को प्राप्त होता है वहीं ज्ञानी बन्धन से छूटता है।

स पश्यति मुनिः साक्षाद्विश्वमध्यक्षमञ्जसा।

यः स्फोटयति मोहाख्यं पटलं ज्ञानचक्षुषा॥(3)

वे मुनिराज विश्व को साक्षात् यथार्थ जानते हैं जो मोहरूपी पटल को ज्ञान रूपी चक्षु के द्वारा भेदते हैं-खण्डित करते हैं।

प्रिये गते विषादं न कुर्वन्ति नागतेमुदम्।

सन्तो महापुराणज्ञा इदं हि धिषणाफलम्॥(4)

महापुराणों के ज्ञाता सत्पुरुष प्रिय पदार्थ के चले जाने पर विषाद नहीं करते हैं और आ जाने पर हर्ष नहीं करते। बुद्धि का यही फल है।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

गृहेषु सक्तं बन्धाय मोक्षाय तपसि स्थितम्॥(5)

मनुष्यों का मन ही बन्ध और मोक्ष का कारण है। गृहों में आसक्त मन बन्ध के लिये और तप में स्थित मन मोक्ष के लिये होता है।

ज्ञानवन्तो नरा लोके तरन्ति तारयन्ति वै।

जलयानसमा ज्ञेया भवाब्धौ जनतारकाः॥(6)

लोक में ज्ञानी पुरुष स्वयं तरते हैं और दूसरों को भी तारते हैं। निश्चय से, अन्य मनुष्यों को तारने वाले मनुष्य संसार-सागर में जलयान-जहाज के समान हैं।

कषायान् शत्रुवत् पश्येत् विषयान् विषवत्तथा।

मोहं च परमं व्याधिमेव मर्त्यो विचक्षणः॥(7)

ज्ञानी पुरुष कषायों को शत्रु के समान, विषयों को विष के समान और मोह को उत्कृष्ट-भारी बीमारी के समान देखता है।

तत्त्वज्ञानजलेनाथ शोकाग्निं निरवापयत्।

शैत्ये जाग्रति किन्तु स्यादातपार्तिः कदाचन॥(8)

तदनन्तर उसने तत्त्वज्ञान रूपी जल के द्वारा शोक रूपी अग्नि को बुझा दिया सो उचित ही है क्योंकि ठण्ड के प्रगट रहते हुए क्या कभी घाम की पीड़ा होती है?

यथानादिः स जीवात्मा तथाऽनादिश्च पुद्गलः।

द्वयोर्बन्धोऽप्यनादिः स्यात्सम्बन्धो जीवकर्मणोः॥(9)

जिस प्रकार जीवात्मा अनादि है उसी प्रकार पुद्गल भी अनादि है तथा जीव और कर्म रूप पुद्गल के सम्बन्ध से होने वाला बन्ध भी अनादि है।

द्वयोरनादि-सम्बन्धः कनकोपलसन्निभः।

अन्यथा दोष एवं स्यादितरेतरसंश्रयः॥(10)

जीव और कर्म का सम्बन्ध सुवर्ण और पाषाण के समान अनादि है अन्यथा अन्योन्याश्रय दोष आता है। भावार्थ-अनादि वस्तु में कौन पहले कौन पीछे, इसका विचार नहीं होता अतः द्रव्यकर्म पहले या भावकर्म पहले, यह विचार कर्मबन्ध में नहीं होता है।

करोति संसारशरीरभोगविरागभावं विदधाति रागम्।

शीलव्रतध्यानतपः कृपासु ज्ञानी विमोक्षाय कृतप्रयासः॥(11)

मोक्ष के लिये प्रयास करने वाला ज्ञानी जीव संसार, शरीर और भोगों में विरक्ति रूप भाव करता है और शील, व्रत, ध्यान, तप तथा दया में राग भाव करता है।

देवागमगुरुतत्त्वं परीक्षितं पण्डितैरुपादेयम्।

तापाद्यैरिव काञ्चनमिह वञ्चनभीतचेतोभिः॥(12)

जिस प्रकार ठगाई से भयभीत चित्त वाले मनुष्य सुवर्ण को तपाना आदि के द्वारा परीक्षित कर ग्रहण करते हैं उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्यों को देव-शास्त्र-गुरु और तत्त्व को परीक्षित कर ग्रहण करना चाहिये।

बोधयन्त्यमलबोधशालिनो ये जनं जिनमतं महामतिम्।

सत्त्वसार्थमखिले महीतले लीलयैव परिपालयन्ति ते॥(13)

निर्मल ज्ञान से सुशोभित जो मनुष्य बुद्धिमान् मनुष्य को जैनधर्म का ज्ञान कराते हैं वे समस्त पृथ्वीतल पर अनायास ही जीवसमूह की रक्षा करते हैं।

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।

स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥(14)

विद्वत् और नृपत्व कभी तुल्य नहीं होते क्योंकि राजा अपने देश में ही पूजा जाता है, पर विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

वैदुष्येण हि वश्यत्वं वैभवं सदुपास्यता।

सदस्यताऽलमुक्तेन विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥(15)

वैदुष्य-विद्वत्ता से वशीकरण, वैभव, सत्पुरुषों से उपासनीयता और सभाओं में बैठने की योग्यता प्राप्त होती है अथवा अधिक कहने से क्या, विद्वान् सर्वत्र पूजा जाता है।

सत्यं तपोज्ञानमहिंसता च विद्वत्प्रणामश्च सुशीलता च।

एतानि यो धारयते स विद्वान् न केवलं यः पठते स विद्वान्॥(16)

जो सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा, विद्वद्विनय और सुशीलता को धारण करता है वह विद्वान् है न कि केवल जो पढ़ता है वह विद्वान् है।

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।

वञ्चनं चापमानं च मतिमान् न प्रकाशयेत्॥(17)

बुद्धिमान् को धन की हानि, मन का संताप, घर का दुश्चरित्र, ठगया जाना और अपना अपमान प्रकट नहीं करना चाहिये।

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया सहभाषणैः।

नेत्रवक्त्रविकारेण गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः॥(18)

आकार से, इङ्गित से, गति से, चेष्टा से, साथ-साथ बात करने से, नेत्र तथा मुख के विकार से अन्तर्गत मन जाना जाता है। भावार्थ-इतनी बातों से मनुष्य के मन की बात का अनुमान हो जाता है।

इदं वाच्यमिदं वाच्यमिति किम् शिक्षयते भवान्।

उत्पन्नः प्रज्ञया साकं प्रभयेव महामणि॥(19)

यह कहना चाहिये, यह कहना चाहिये। इस प्रकार क्या शिक्षित किया जाय क्योंकि प्रभा से महामणि के समान आप प्रज्ञा-विचारशक्ति के साथ ही उत्पन्न हुए हैं।

सर्पान् व्याघ्रान् गजान् सिंहान् दृष्ट्वोपायैर्वशीकृतान्।

राजेति कियती मात्रा धीमतामप्रमादिनाम्॥(20)

उपायों से वश किये गये सर्प, व्याघ्र, हाथी और सिंहों को देखकर प्रमादरहित बुद्धिमान् मनुष्यों के लिए राजा को वश करना कितनी बड़ी बात है।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ।

कश्चाहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥(21)

समय कौन है? मित्र कौन है? देश कौन है? व्यय और आय क्या है? मैं क्या हूँ? और मेरी शक्ति क्या है? इस प्रकार बार-बार विचार करना चाहिये।

अथ विज्ञाः प्रकुर्वन्ति येऽन्येषां प्रतिबोधनम्।

सर्वज्ञास्ते परे मूर्खा यत्तेस्युर्घटदीपवत्॥(22)

जो विद्वान् दूसरों को संबोधित करते हैं, यथार्थ में वे ही सब को जानने वाले हैं अन्य लोग जो घट में रखे हुए दीपक के समान किसी के काम नहीं आते, वे मूर्ख हैं।

कवीश्वराणां वचसां विनोदैर्नन्दन्ति विद्यानिधयो न चान्ये।

चन्द्रोपला एव करैर्हिमांशोर्मध्ये शिलानां सरसा भवन्ति॥(23)

कवियों के वचनसम्बन्धी विनोदों से विद्या के भण्डार-विद्वान् ही हर्षित होते हैं अन्य नहीं, क्योंकि चन्द्रमा की किरणों से पाषाणों के मध्य में स्थित चन्द्रकान्त मणि ही सरस-सजल होते हैं अन्य पाषाण नहीं।

आत्मज्ञानं भवेद्येषां त एव ज्ञानिनो मताः।

त एव जन्मसिन्धोश्च पारं यान्ति न चेतरे॥(24)

जिन्हें आत्मज्ञान होता है वे ही ज्ञानी माने गये हैं और वे ही संसार-सागर के पार को प्राप्त होते हैं, अन्य नहीं।

पृष्ठोपरिस्थितां गावो न विदन्ति सितां यथा।

तथा मूर्खं न जानन्ति स्वात्मानं वपुषि स्थितम्॥(25)

जिस प्रकार बैल पीठ पर लदी मिश्री को नहीं जानते हैं, उसी प्रकार मूर्ख मनुष्य शरीर में स्थित स्वकीय आत्मा को नहीं जानते हैं।

शास्त्रज्ञानस्य संशोभा भवेदात्म-सुबोधनः।

तदभावे वृथाभारः पुंसां पाषाणसंनिभः॥(26)

शास्त्रज्ञान की शोभा आत्मज्ञान से होती है, उसके अभाव में पुरुषों को पाषाण के समान व्यर्थ का भार ही माना गया है।

सिलिकॉन वैली में लेटेस्ट ट्रेंड: डोपामाइनिंग से खोज रहे हैं खुशी और स्वास्थ्य दिमाग को री-बूट करने के लिए कर रहे हैं डोपामीन फास्टिंग

सेंट फ्रांसिस्को। आपने डोपामीन का नाम तो सुना ही होगा, लेकिन अब सिलिकॉन वैली में डोपामीन फास्टिंग का चलन जोरों पर है। दरअसल, डोपामाइन फास्टिंग के तहत जीवन की हर उस चीज से खुद को बचाना, जो आपको उत्तेजित करती है। यह ध्यान से संभव है।

दरअसल, डोपामीन फास्टिंग मस्तिष्क को रिबूट करने में मदद करता है। इसके तहत उपवास तकनीक, कत्रिम प्रकाश, भोजन, पेग, वार्तालाप, आँखों के संपर्क से संयम में प्रवेश किया जा सकता है। खासतौर से कुछ भी वह चीज जो एक व्यक्ति को उत्तेजक लगती है। लेकिन क्या सनक का कोई मतलब है? सवाल यह भी उठता है कि ऐसा करना क्या किसी के स्वास्थ्य के लिए अच्छा हो सकता है?

इसका अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है कि उन्होंने बायोहाकिंग किया। अच्छी नीन्द ली। कीटो आहार लिया। यह एक तरह से नई स्वास्थ्य प्रवृत्ति है, जिसने डोपामीन उपवास को गढ़ा है। माना जाता है कि मस्तिष्क के कई हिस्सों में न्यूरोट्रांसमीटर एक श्रृंखला के रिलीज से प्रेरित होती है।

पीछे हटने से अधिक दिलचस्प होता है जीवन

इम्पीरियल कॉलेज लंदन में न्यूरो साइको फार्माकोलॉजी यूनिट के निदेशक कहते हैं कि पीछे हटना शायद जीवन को अधिक दिलचस्प बनाता है, जब आप

वापस आते हैं, तब नई स्फूर्ति के साथ काम को अंजाम देते हैं। डोपामीन फास्टिंग से दिमाग स्वस्थ रहता है।

ध्यान के रूप में बेहतर है डोपामीन

डोपामीन फास्ट व कास्टिंग की बजाय ध्यान के रूप में बेहतर देखा जा रहा है। न्यूट ने अध्ययन के बाद कहा कि यदि आप ध्यान में डूब जाते हैं, तो आपको उत्तेजित करने वाली चीजों से छुटकारा मिलता है, जब वापस लौटते हैं, तो तरोताजा पाते हैं।

डोपामीन क्या है?

डोपामीन फास्टिंग को मस्तिष्क का “आनन्द रसायन” कहा जा सकता है, जिसे सिलीकॉन वैली में स्वास्थ्य से जोड़कर देखा जा रहा है। मस्तिष्क का “रिवार्ड सर्किट” डोपामाइन को उन चीजों की प्रतिक्रिया के रूप में जारी करता है, जो आनंददायक है, ताजगी से भरपूर है। उदाहरणार्थ, अच्छा व्यवहार करना, दोस्तों के साथ हँसना या आकर्षक गीत सुनना। डोपामीन फास्टिंग से मस्तिष्क प्रणाली को नियंत्रित किया जा सकता है।

‘जयन्ति तिमत्सराः परिहितार्थमभ्युद्यताः।

स्वयं विगतदोषकाः परविपत्तिखेदाकुलाः।’

महापुरुषसंकथा - श्रवणजातरोमोद्गमाः,

समस्त-दुरितार्णवे प्रकटसेतवः साधवः॥(39) स.श्लो.

जिन्होंने मात्सर्य को जीत लिया है, जो परहित के प्रति तत्पर रहते हैं, स्वयं दोषों से रहित हैं, दूसरों की विपत्ति में खेदखिन्न होते हैं, महान् पुरुषों की कथा सुनकर जो रोमाञ्चित होते हैं और समस्त पापरूपी समुद्र में सेतु-पुल के समान हैं, वे साधु जयवन्त प्रवर्तते हैं-सर्वोत्कृष्ट रहते हैं।

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया।

चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता॥(40)

जैसा मन होता है, वैसे वचन हैं और जैसे वचन हैं वैसे क्रिया है, साधुओं के मन, वचन और क्रिया में एकरूपता होती है।

देहे निर्ममता गुरौ विनयता नित्यं श्रुताभ्यासता,
 चारित्रेऽस्खलिता च मोहशमता संसारनिर्वेगता।
 अन्तर्बाह्य-परिग्रहत्यजनता धर्मज्ञता साधुता,
 साधो! साधुजनस्य लक्षणमिदं संसारविक्षेपणम्॥(41)

शरीर में निर्ममता, गुरु में विनयता, निरन्तर शास्त्र का अभ्यास, चारित्र में अस्खलितता, मोह का शमन, संसार से विरक्ति, अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह का त्याग, धर्म का ध्यान और परिणामों की सरलता, हे साधो! यह साधुजनों का लक्षण है, जो कि संसार का नाश करने वाला है-भवभ्रमण से छुड़ाने वाला है।

प्रथमवयसि पीतं तोयमल्पं स्मरन्तः,
 शिरसि निहितभारा नालिकेरा नराणाम्।
 उदकममृततुल्यं दद्युराजीवितान्तं,
 न हि कुतमुपकारं साधवो विस्मरन्ति॥(42)

प्रथम अवस्था में पिये हुए थोड़े से पानी का स्मरण करते हुए नारियल के वृक्ष अपने सिर पर फलों का भार धारण किये हुए मनुष्यों के लिए जीवनपर्यन्त अमृत के तुल्य पानी देते रहते हैं अतः ठीक ही कहा है कि साधु-सज्जन पुरुष किये हुए उपकार को नहीं भूलते हैं।

विदूयमानोऽपि खलेन साधुः, सदोपकारं कुरुते गुणैः स्वैः।
 निपीड्यमानोऽपि तुषाररश्मी, राहुं न किं प्रीणयति सुधाभिः॥(43)

दुर्जन के द्वारा पीड़ित होने पर भी साधु अपने गुणों के द्वारा सदा उपकार ही करता है क्योंकि पीड़ित होने पर भी चन्द्रमा क्या अमृत से राहु को संतुष्ट नहीं करता? अवश्य करता है।

नहि संसर्गदोषेण विक्रियां यान्ति साधवः।
 भुजङ्गैर्वैष्ट्यमानोऽपि चन्दनो न विषायते॥(44)

संसर्ग के दोष से साधु विकार को प्राप्त नहीं होते जैसे कि सर्पों से वेष्टित होने पर भी चन्दन का वृक्ष विष रूप नहीं होता।

एकैश्वर्यमिहैकतामभिमता वाप्ति शरीरच्युतिं,
 दुःखं दुष्कृतनिष्कृतिं सुखमलं संसारसौख्यासनम्।

सर्वत्यागमहोत्सव व्यतिकरं प्राणव्ययं पश्यतां,

किं तद्व्यन्न सुखाय तेन सुखिनः सत्यं सदा साधवः॥(45)

जो एकाकीपन को अद्वितीय ऐश्वर्य, शरीर के नाश को इष्टप्राप्ति, दुःख को पाप का निराकरण, सांसारिक सुख के त्याग को पर्याप्त सुख और मरण को सर्वत्याग-महोत्सव का कार्य समझते हैं उन साधुओं के लिये वह कौन कार्य है जो सुख के लिये न हो। इसलिए साधु सदा सुखी रहते हैं।

साधवो जङ्गमं तीर्थं स्वात्मज्ञानं च साधवः।

साधवो देवता मूर्ता साधुभ्यः साधु नापरम्॥(46)

साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं, साधु स्वात्मज्ञान हैं, साधु मूर्तिधारी देवता हैं और साधु से बढ़कर कोई दूसरी वस्तु साधु-ठीक नहीं है।

विसृष्टसर्वसङ्गानां श्रमणानां महात्मनाम्।

कीर्त्यामि समाचारं दुरितक्षोदनक्षमम्॥(47)

जिन्होंने सर्व प्रकार का परिग्रह छोड़ दिया है उन मुनिराज महात्माओं के उस समाचार को कहता हूँ जो पाप नष्ट करने में समर्थ है।

सम्यग्दर्शनमूलोऽयं महर्द्धिकसुरश्रियम्।

ददाति यतिधर्मस्तु पुष्टो मोक्षसुखप्रदः॥(48)

सम्यग्दर्शन जिसका मूल है यह मुनियों का धर्म महान् ऋद्धियों से युक्त स्वर्ग की लक्ष्मी को देता है तथा पुष्टता को प्राप्त यतिधर्म मोक्षसुख का दायक है।

यतिधर्म जगत्सारं विश्वतत्त्वादिगर्भितम्।

निष्पापं मुक्तिदातारं विरक्तश्चिन्तयेदिति॥(49)

यतिधर्म जगत् में सारभूत है, समस्त तत्त्वों से सहित है, पापरहित है तथा मुक्ति का दाता है, इस प्रकार विरक्त मनुष्य को चिन्तन करना चाहिये।

आत्मारामो भवेद्यस्तु विद्यासेवनतत्परः।

संसारतरणार्थाय योगभाग् यतिरुच्यते॥(50)

जो संसार से पार होने के लिये आत्मा में रमण करता है, विद्यासेवन में तत्पर रहता है और योग-ध्यान करता है वह यति कहलाता है।

यतिभ्यो दीयते शिक्षा पूर्वं संयमपालने।

चिद्रूपचिन्तने पश्चादयमुक्तो बुधैः क्रमः॥ (51)

यतियों के लिये पहले संयम पालने की शिक्षा दी जाती है पश्चात् चैतन्य रूप आत्मा के चिन्तन की शिक्षा दी जाती है। विद्वानों ने यह क्रम उपयुक्त कहा है।

उन्मुच्यालयबन्धनादपि हठात्कायेऽपि वीतस्पृहा-

श्रित्ते मोहविकल्पजालमपि यत् दुर्भेद्यमन्तस्तमः।

भेदायास्य हि साधयन्ति तदहो ज्योतिर्जितार्कप्रभं,

ये सद्बोधमयं भवन्तु भवतां ते साधवः श्रेयसे॥ (53)

जो गृह रूपी बन्धन से भी हठपूर्वक छूटकर शरीर में भी निःस्पृह हैं, चित्त में विद्यमान मोहजन्य विकल्पों का समूह रूप जो दुर्भेद्य आन्तरिक तिमिर था उसके नाश के लिये सूर्य की प्रभा को जीतने वाली सम्यग्ज्ञानरूपी ज्योति को जो सिद्ध करते हैं, वे साधु आप के कल्याण के लिये हों।

सम्यक्त्वबोधचरणानि शस्ता-न्यशेषदुःखाहित-कारणानि।

ये साधयन्त्यन्वहमत्र सिद्धयै, ते साधवो मे वितरन्तु सिद्धिम्॥(54)

समस्त दुःखों के नाश के कारण प्रशस्त सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को जो इस लोक में सिद्धि प्राप्त करने के लिये निरन्तर सिद्ध करते हैं, वे साधु सिद्धि मुक्ति को सिद्ध करें।

स्मरपि हृदि येषां ध्यावह्निप्रदीप्यते, सकलभुवनमल्लं दह्यमानं विलोक्य।

कृतभिय इन नष्टस्ते कषाया न तस्मिन् पुनरपि हि समीयुः साधवस्ते जयन्ति॥ (56)

ध्यानरूपी अग्नि से प्रदीप्त जिनके हृदय में समस्त जगत् के मल्ल कामदेव को भी जलता हुआ देख भयभीत हुए के समान कषाय इस प्रकार नष्ट हो जाती हैं कि पुनः उसमें नहीं आती। वे साधु जयवन्त प्रवर्तते हैं।

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।

ताभ्यां चन्दनचन्द्राभ्यां शीतलः साधुसङ्गमः॥ (57)

लोक में चन्दन शीतल है, चन्दन से चन्द्रमा शीतल है और उन दोनों से साधु समागम शीतल है।

धिनोति दवथुं स्वान्तात् तनोत्यानन्दथुं परम्।

धिनोति च मनोवृत्तिमहो साधुसमागमः॥ (58)

अहा, साधुसमागम मन में संताप को दूर करता है, अत्यधिक आनन्द को विस्तृत करता है और मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करता है।

मुष्णाति दुरितं दूरात्परां पुष्णाति योग्यताम्।

भूयः श्रेयोऽनुबध्नाति प्रायः साधुसमागमः॥ (59)

साधुओं का समागम पाप को दूर से नष्ट करता है, सातिशय योग्यता को पुष्ट करता है और अत्यधिक कल्याण को अनुबद्ध करता है।

हन्ति पापं सतां दूराद् विधत्ते पुण्यमूर्जितम्।

तनोति सन्मतिं लक्ष्मीं प्रायः साधुसमागमः॥ (60)

साधुसमागम सत्पुरुषों के पाप को दूर से नष्ट करता है, पुण्य को बलिष्ठ करता है और सद्बुद्धि तथा लक्ष्मी को प्रायः विस्तृत करता है।

अतिधन्योऽहमप्यद्य मुक्तः पापेन कर्मणा।

यदेतं त्रिजगद्द्वन्द्वं प्राप्तः साधुसमागम्॥ (61)

आज मैं भी अत्यन्त धन्य हो गया तथा पापकर्म से मुक्त हो गया क्योंकि तीनों जगत् के वन्दनीय इस साधुसमागम को प्राप्त हुआ हूँ।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।

तीर्थं फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः॥ (62)

साधुओं का दर्शन पुण्य है क्योंकि साधु तीर्थस्वरूप हैं। अथवा तीर्थ तो समय पाकर फल देता है पर साधुसमागम शीघ्र ही फल देता है।

गङ्गापापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा

पापं तापं च दैन्यं च हन्ति साधुसमागमः॥ (63)

गङ्गा पाप को, चन्द्रमा संताप को और कल्पवृक्ष दीनता को नष्ट करता है परन्तु साधुसमागम पाप, संताप और दैन्य-तीनों को नष्ट करता है।

साधोः समागमाल्लोके न किञ्चिद् दुर्लभं भवेत्।

बहुजन्मसु न प्राप्ता बोधिर्यनाधिगम्यते॥ (64)

साधुसमागम से लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता क्योंकि इसके द्वारा अनेक जन्मों में न प्राप्त हुई बोधि प्राप्त हो जाती है।

साधुसङ्गमनासाद्य यो मुक्तरालयं व्रजेत।

स चान्धः प्रस्खलन्मार्गे कथं मेरु समारुहेत्॥ (65)

साधुसमागम को प्राप्त किये बिना जो मोक्ष जाना चाहता है, मार्ग में ही स्वलित होता हुआ वह अन्ध पुरुष मेरु पर्वत पर कैसे चढ़ सकता है?

पापकूपे निमग्रानां धर्महस्तावलम्बनम्।

ददता कः समोलोके संसारोत्तारिणा नृणाम्॥ (66)

पापरूपी कुए में निमग्न मनुष्यों को हस्तावलम्बन देने वाले जगदुत्तारक साधु के समान मनुष्यों में दूसरा कौन है?

गुरुणां यदि संसर्गो न स्यान् न स्याद् गुणार्जनम्।

विना गुणार्जनात् क्वास्य जन्तोः सफलजन्मता॥ (67)

यदि गुरुओं का समागम न हो तो गुणों का उपार्जन नहीं हो सकता और गुणोपार्जन के बिना इस जीव के जन्म की सफलता कहाँ हो सकती है।

रसोपविद्धः सन् धातुर्यथा याति सुवर्णताम्।

तथा गुरुगुणाश्लिष्टो भव्यात्मा शुद्धिमृच्छति॥ (68)

जिस प्रकार रस से संपृक्त धातु सुवर्णता को प्राप्त हो जाती है उसी प्रकार गुरु के गुणों से आश्लिष्ट-सम्बद्ध भव्यात्मा शुद्धि को प्राप्त होता है।

परस्य तुच्छेऽपि परोऽनुरागो, महत्यपि स्वस्य गुणे न तोषः।

एवंविधो यस्य मनोविवेकः, किं प्रार्थ्यते सोऽत्र हिताय साधुः॥ (70)

दूसरे के तुच्छ गुण में भी परम अनुराग और अपने महान् गुण में भी संतोष नहीं, ऐसा जिनके मन का विवेक है उस साधु से यहाँ हित के लिये क्या प्रार्थना करना है, वह तो प्रार्थना के बिना हित में तत्पर रहता है।

श्रमणप्रशंसा

**ना दुष्कर्मप्रवृत्तिर्न कुयुवतिसुतस्वामिदुर्वाक्यदुखं,
राजादौ न प्रणामोऽशनवसनधनस्थानचिन्ता च नैव।**

ज्ञानाप्तिर्लोकपूजाप्रशमसुखरतिः प्रेत्य मोक्षाद्यवाप्तिः,

श्रामण्येऽमी गुणाः स्युस्तदहि सुमतयस्तत्र यत्नं कुरुध्वम्॥ (1)

श्रमण-साधु होने पर खोटे कार्यों में प्रवृत्ति नहीं होती; खोटी स्त्री, पुत्र तथा स्वामी आदि के दुर्वचन सुनने का दुःख नहीं होता, राजादिक को प्रणाम नहीं करना पड़ता; भोजन, वस्त्र, धन तथा स्थान की चिन्ता नहीं होती; ज्ञान की प्राप्ति होती है, लोक में प्रतिष्ठा बढ़ती है, शान्ति-सुख में प्रीति होती है और मृत्यु के बाद मोक्ष आदि की प्राप्ति होती है, इस प्रकार श्रामण्य पद के ये गुण हैं अतः हे बुद्धिमान पुरुषों! उस श्रामण्य पद को प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

एरण्डसदृशं ज्ञात्वा मनुष्यत्वमसारकम्।

सङ्गेन रहित धन्याः श्रमणत्वमुपाश्रिताः॥ (2)

मनुष्य पर्याय को एरण्ड वृक्ष के समान सारहीन जानकर जो परिग्रह से रहित हो श्रमण-साधु पद को प्राप्त हुए हैं वे धन्य हैं।

भवाङ्गभोगनिर्विण्णः सर्वशास्त्रविशारदः।

सौम्यः क्रौर्यविनिर्मुक्तो घृणावान् सद्व्रतान्वितः॥ (3)

अविरुद्धो यथा वायुर्मृगेन्द्र इव निर्भयः।

अकूपार इवाक्षोभ्यो निष्कम्पो मन्दरो यथा॥ (4)

जातरूपधरः सत्यकवचः क्षान्ति-सायकः।

परीषहजयोद्युक्तः तपः संयमवर्धकः॥ (5)

समः शत्रौ च मित्रे च समानः सुखदुःखयोः।

उत्तमः श्रमणः स स्यात्समधीस्तृणरत्नयोः॥ (6)

जो संसार, शरीर और भागों से विरक्त है, समस्त शास्त्रों में निपुण है, सौम्य है, क्रूरता से रहित है, दयावान् है, समीचीन व्रतों से सहित है, वायु के समान प्रतिबन्ध से रहित है, सिंह के समान निर्भय है, समुद्र के समान क्षोभरहित है, मेरु के समान निश्चल है, दिगम्बर मुद्राधारी है, सत्य ही जिसका कवच है और क्षमा ही जिसका बाण है, जो परीषहों के जीतने में तत्पर रहता है, तप और संयम को बढ़ाता है, शत्रु-मित्र में समभाव रखता है, सुख-दुःख में समान है और तृण तथा रत्न में समान बुद्धि रखता है वही उत्तम श्रमण हो सकता है।

न च राजभयं न च चोरभयं, इहलोकसुखं परलोकहितम्।
वरकीर्तिकरं नरदेवनृतं, श्रमणत्वमिदं रमणीयतरम्॥ (7)

श्रमणत्व में न राजा का भय है न चोर का भय है, श्रमणत्व इस लोक में सुख देने वाला है, परलोक में हितकारी है, उत्तम कीर्ति को करने वाला है और मनुष्य तथा देवों के द्वारा स्तुत्य है। वास्तव में, यह श्रमणत्व अत्यन्त रमणीय है।

समसत्तुबंधवग्गो समसुहदुक्खे पसंसणिंदसमो।

समलोहकंचणो वि य जीविय मरणे समो समणो॥ (8)

शत्रु और बन्धु वर्ग में, सुख और दुःख में, प्रशंसा और निन्दा में, लोहा और सुवर्ण में तथा जीवन और मरण में जिसका समान भाव हो वह श्रमण है।

साधुपर्यायनामावली

मानमायामदामर्षक्षपणात् क्षपणः स्मृतः।

यो न श्रान्तो भ्रान्तेस्तं श्रमणं विदुर्बुधाः॥ (1)

मान माया मद और क्रोध का क्षय करने से मुनि क्षपण कहलाते हैं। भ्रान्ति से जो कभी श्रान्त नहीं होते हैं उन्हें विद्वान् लोग श्रमण जानते हैं।

यो हताशः प्रशान्ताशस्तमाशाम्बरमूचिरे।

यः सर्वसङ्गसंत्यक्तः न नग्नः परिकीर्तितः॥ (2)

जिसने आशाओं को नष्ट कर दिया है अथवा जिसकी आशाएँ शांत हो चुकी हैं उसे आशाम्बर-दिगम्बर कहते हैं। जो सर्व परिग्रह को छोड़ चुका है, वह नग्न कहा गया है।

रेषणात् क्लेशराशीनामृषिमाहुर्मनीषिणः।

मान्यत्वादात्मविद्यानां महद्भिः कीर्त्यते मुनिः॥ (3)

जिसने क्लेश समूह को नष्ट कर दिया है उसे विद्वान् ऋषि कहते हैं और जो आत्मविद्याओं से मान्य है उसे महापुरुष मुनि कहते हैं।

आत्माऽशुद्धिकरैर्यस्य न सङ्गः कर्मदुर्जनैः।

स पुमान् शुचिराख्यातो नाम्बुसंप्लुतमस्तकः॥ (4)

आत्मा की विशुद्धि करने वाले कर्मरूपी दुर्जनों के साथ जिसका समागम नहीं है वही पुरुष शुचि कहा जाता है, न केवल जल में मस्तक डुबोने वाला।

धर्मकर्मफलेऽनीहो निवृत्तोऽधर्मकर्मणः।

तं निर्मममुशन्तीह केवलात्मपरिच्छदम्॥ (5)

जो धार्मिक क्रियाओं के फल की इच्छा नहीं करता, अधर्म के कार्यों से दूर रहता है तथा मात्र आत्मज्ञान से सहित है उसे निर्मम कहते हैं।

यः कर्मद्वितयातीतस्तं मुमुक्षुं प्रचक्षते।

पाशैर्लोहस्य हेम्नो वा यो बद्धो बद्ध एव सः॥ (6)

जो शुभ अशुभ दोनों कर्मों से रहित है उसे मुमुक्षु कहते हैं। लोहे अथवा सोने सांकल से जो बद्ध है वह बद्ध ही है।

निर्ममो निरहंकारो निर्मानमदमत्सरः।

निन्दायां संस्तवे चैव समधीः शंसितव्रतः॥ (7)

जो ममता से रहित है, अहंकार से रहित है, मान-मद और मात्सर्य से रहित है तथा निन्दा और स्तुति में साम्यभाव रखता है वही प्रशंसनीय व्रत का धारक है।

योऽवगम्य यथाप्रायं तत्त्वं तत्त्वैकभावनः।

वाचंयमः स विज्ञेयो न मौनी पशुवन्नरः॥ (8)

जो आप्राय के अनुसार तत्त्व को जान कर तत्त्व में ही एक प्रमुख भावना रखता है उसे वाचंयम जानना चाहिये न कि पशु के समान मौन रखने वाला मनुष्य वाचंयम है।

श्रुते व्रते प्रसंख्याने संयमे नियमे यमे।

यस्याच्चैः सर्वदा चेतः सोऽनूचानः प्रकीर्तितः॥ (9)

जिसका चित्त सदा उत्कृष्ट श्रुत, व्रत, ध्यान, संयम, नियम और यम में रहता है वह अनूचान कहा गया है।

योऽक्षस्तेनेष्वविश्वस्तः शाश्वते पथि निष्ठितः।

समस्तसत्त्वविश्वास्यः सोऽनाश्वानिह गीयते॥ (10)

जो इन्द्रिय रूपी चोरों में विश्वास नहीं रखता, शाश्वत-सनातन मार्ग में निष्ठा रखता है और समस्त जीवों का विश्वसनीय है-वह इस जगत् में अनाश्वान कहा जाता है।

तत्त्वे पुमान् मनः पुंसि मनस्यक्षकदम्बकम्।

यस्य युक्तं स योगी स्यान्नपरेच्छा दुरीहितः॥ (11)

जिसका मन आत्मतत्त्व में संलग्न और इन्द्रियसमूह मन में संलग्न नहीं रहता है वह योगी है, पर की इच्छा से दुष्ट चेष्टा करने वाला योगी नहीं है।

भ्राम्यर्थं बहिश्चान्तर्यः परित्यज्य संयमी।

वानप्रस्थः स विज्ञेयो न वनस्थः कुटुम्बवान्॥ (12)

जो अन्तरङ्ग बहिरङ्ग परिग्रह छोड़कर संयमी हुआ है उसे वानप्रस्थ जानना चाहिये, न कि जो कुटुम्बवान् होकर वन में रह रहा है वह वानप्रस्थ है।

संसाराग्निशिखाच्छेदो येन ज्ञानासिना कृतः।

तं शिखाच्छेदिनं प्राहुर्न तु मुण्डितमस्तकम्॥ (13)

जिसने ज्ञान रूपी खड्ग के द्वारा संसार रूपी अग्नि की शिखा-ज्वाला का छेद किया है उसे शिखाच्छेदी कहते हैं न कि मस्तक मुंडाने वाले को।

कर्मात्मनोर्विवेक्ता यः क्षीरनीरसमानयोः।

भवेत्परमहंसोऽसौ नागिवत् सर्वभक्षकः॥ (14)

जो दूध और पानी के समान मिले हुए कर्म और आत्मा को पृथक् करता है वह परमहंस है, न कि अग्नि के समान सबको भक्षण करने वाला।

ज्ञानैर्मनो वपुर्वृतैर्नियममैरिन्द्रियाणि च।

नित्यं यस्य प्रदीप्तानि स तपस्वी न वेषवान्॥ (15)

जिसका मन ज्ञान से, शरीर चारित्र से और इन्द्रियाँ नियमों से निरन्तर प्रदीप्त रहती हैं वही तपस्वी है न कि वेष रखने वाला।

पञ्चेन्द्रियप्रवृत्त्याख्यास्तिथयः पञ्चकीर्तिताः।

संसाराश्रयहेतुत्वात् ताभिर्मुक्तोऽतिथिर्भवेत्॥ (16)

संसाराश्रय का कारण होने से पञ्चेन्द्रियों की प्रवृत्ति नामक पाँच तिथियाँ हैं। जो इन से मुक्त होता है वह अतिथि है।

अद्रोहः सर्वसत्त्वेषु यज्ञो यस्य दिने-दिने।

स पुमान् दीक्षितात्मा स्यान्नत्वजादियमाशयः॥ (17)

जिसका प्रतिदिन समस्त प्राणियों से अद्रोह रूप यज्ञ चलता रहता है वह दीक्षितात्मा है न कि बकरा आदि जन्तुओं पर यम के समान क्रूर परिणाम वाला।

काम क्रोधो मदो माया लोभश्चेत्यग्निपञ्चकम्।

येनेदं साधितं स स्यात् कृती पञ्चाग्निसाधकः॥ (18)

काम, क्रोध, मद, माया और लोभ ये पाँच अग्नियाँ जिसने साध ली हैं वह कुशल साधु पञ्चाग्नि का साधक कहलाता है।

दुष्कर्मदुर्जनाऽस्पर्शी सर्वसत्त्व-हिताशयः।

य श्रोत्रियो भवेत्सत्यं न तु यो बाह्यशोचवान्॥ (19)

जो पापकर्मरूप दुर्जन के स्पर्श से रहित है तथा समस्त जीवों के हित का विचार करने वाला है, वह सचमुच ही श्रोत्रिय है न कि बाह्य पवित्रता से युक्त।

अध्यात्ममग्नो दयामन्त्रैः सम्यक् कर्मसमिच्चयम्।

यो जुहोति स होता स्यान्न बाह्याग्निसमेधनः॥ (20)

आत्मा में लीन रहने वाला जो पुरुष दया रूप मन्त्रों के द्वारा कर्मरूप समिधाओं के समूह को होम करता है, वह होता कहलाता है न केवल बाह्य अग्नि में होम करने वाला।

साधवो दुःषमाकाले कुशीलवकुशादयः।

प्रायः शबलचारित्राः सातिचाराः प्रमादिनः॥ (21)

पञ्चमकाल में कुशील और वकुश आदि मुनि होते हैं। वे प्रायः मलिन चारित्र, सातिचार और प्रमादी होते हैं।

लिटरेचर इफेक्ट

शेक्सपियर और वड्सवर्थ को पढ़ने से होता है दिमाग तेज

विलियम शेक्सपियर और विलियम वड्सवर्थ की कृतियाँ हमारे दिमाग के लिए रॉकेट बुस्टर का काम करती हैं। लिवरपूल यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों का कहना है कि क्लासिकल राइटर्स की कृतियाँ पढ़ना किसी भी सेल्फ हैल्प बुक से ज्यादा कारगर है। इससे दिमाग में एकाग्रता बढ़ती है। वैज्ञानिकों ने इसके लिए उन लोगों के दिमाग को स्कैन किया जो शेक्सपियर और वड्सवर्थ को पढ़ते हैं। उसके बाद उन लेखों की भाषा का अनुवाद करके वॉलेंटियर्स को पढ़ने दिया। कविताओं और छंदों की मूल भाषा मुश्किल होती है। उनमें नए शब्द और वाक्य कवि के भाव लिए होते हैं।

वैज्ञानिकों ने हर शब्द पढ़ने के दौरान दिमाग में हुई हलचल को मॉनिटर किया था। शोध में पाया गया कि मूल कृतियां पढ़ने पर दिमाग में इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी एकदम बढ़ गई थी। इस दौरान इलेक्ट्रिकल स्पार्क से दिमाग में और पढ़ने की इच्छा जागृत हुई थी। यह भी पाया गया कि कविताएं पढ़ने पर दिमाग के दायें हिस्से में प्रतिक्रिया होती है। यह हिस्सा ऑटोबायोग्राफिकल मैमोरी और भावनाओं से संबंधित होता है। इससे दिमाग उन चीजों को अपने अनुभवों से जोड़ना सीखता है।

यह किसी भी सेल्फ हैल्प बुक से ज्यादा कारगर है। प्रोफेसर फिलिप डेविस का कहना है कि साहित्य पढ़ने पर हमारे दिमाग में नए विचार जन्म लेते हैं। यह एक तरह से दिमाग का व्यायाम है। दिमाग के इस हिस्से में तेज हलचल का मतलब है कि कविताएं लोगों के दिमाग में एक ऐसा तंत्र विकसित करती हैं कि वे उससे खुद को जोड़ लेते हैं। दिमाग की उस रोशनी और ऊर्जा में अपने अनुभवों को सोचते हैं। इसी शोध के अगले चरण में शोधकर्ता जॉन डन, मिल्टन, इलियट व एलिजाबेथ ब्राउनिंग जैसे साहित्यकार और कवियों की रचनाओं के प्रभाव को भी देखेंगे।

मौत से पहले इसका अनुभव

वॉशिंगटन। वैज्ञानिकों ने शोध में पाया है कि इंसान को ब्रेन डेथ से पहले ही इसका आभास हो जाता है। साइंटिस्ट इसे ब्रेन का संभवतः अंतिम कार्य भी करार देते हैं। एक्सपर्ट्स इसे प्राणी शास्त्र के तथ्यों के सहारे धार्मिक आधारों की पुष्टि भी मानते हैं। मरीजों पर इस बाबत शोध करनेवाले वैज्ञानिकों ने इस ब्रेन में इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी के जरिए रिकार्ड किया है।

वॉशिंगटन में हुई स्टडी: अमेरिका के जॉर्ज वॉशिंगटन यूनिवर्सिटी मेडिकल सेंटर में मरीजों ने मौत के बिलकुल करीब होने पर महसूस किया कि वे चमकीले प्रकाश की ओर बढ़ रहे हैं।

किसी-किसी मरीज ने यह भी महसूस किया कि उसके शरीर से कुछ निकल रहा है। इसे डॉक्टरों ने ब्रेन में डेथ से ठीक पहले इलेक्ट्रिकल एक्टिविटी के रूप में

ईईजी के जरिए रिकार्ड किया। कई मरीजों ने इसे धार्मिक विश्वास से जोड़कर देखा और उसने अगले जन्म के बारे में भी सोचना शुरू कर दिया।

मां से बेहतर रिश्ता भावी रोमांटिक जीवन का आधार

जो किशोर मां से बेहतर रिश्ते रखते हैं उनके वयस्क होने पर सफल रोमांटिक जीवन का आनंद लेने की ज्यादा संभावना होती है। मॉंटक्लेयर स्टेट यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं द्वारा किए गए एक नए अध्ययन में यह दावा किया गया है। इस अध्ययन की नेतृत्व करने वाली कोस्टेंस गेगर के मुताबिक, 'अपने बच्चों के साथ माता-पिता के रिश्ते काफी अहम होते हैं। हमारे माता-पिता हमारे मॉडल हैं।' गेगर को 'लाइव साइंस' ने यह कहते हुए उद्धृत किया है 'यदि बच्चे अपने माता-पिता से निकटता महसूस नहीं करते हैं तो संभव है कि वे वयस्क होने पर उन्हें अपना मॉडल नहीं मानें।' शोधकर्ताओं के मुताबिक ये निष्कर्ष बाद में रिश्ते बनाने के लिहाज से माता-पिता और बच्चों के संबंधों की मजबूती को रेखांकित करते हैं। अपने अध्ययन के लिए गेगर तथा उनके साथियों ने राष्ट्रीय सर्वेक्षण के नतीजों का विश्लेषण किया।

दो भाषा जानते हैं तो दिमाग नहीं होगा बूढ़ा

बचपन से ही अगर हम एक से ज्यादा भाषाएं बोलना सीख लेते हैं, तो इसका फायदा हमारे दिमाग को अधिक उम्र में मिलता है। यही कारण है कि भारतीय लोग इतने बुद्धिमान होते हैं। यहां अधिकांश लोग एक से ज्यादा भाषाएं जानते हैं। इनमें हिंदी या अंग्रेजी के अलावा उनकी क्षेत्रीय भाषाएं शामिल हैं।

सारी जिंदगी दो से ज्यादा भाषा बोलने से हमारा दिमाग जल्दी बूढ़ा नहीं होता। यूनिवर्सिटी ऑफ कैटकी ने न्यूरोसाइंटिस्ट ब्रायन गोल्ड का कहना है दो या दो से अधिक भाषा जानने वाले लोग मल्टीस्कलड होते हैं। जब भी सीनियर्स से कोई टास्क मिलता है, तो एक भाषा के जानने वालों की तुलना में द्विभाषी लोग जल्दी प्रतिक्रिया करते हैं। लगातार सक्रिय होते रहने से दिमाग जवां बना रहता है। शोधकर्ताओं ने 80 लोगों के दिमाग में ऑक्सीजन पलो पैटर्न देखने के लिए उन्हें एमआरआई

मशीन में रखा। उनसे कुछ आकार और रंग दिखाकर सवाल पूछे गए। शोधकर्ताओं ने पाया कि वह अधिक उम्र के लोग, जो दो या दो से ज्यादा भाषाएं जानते हैं, उनका दिमाग एक भाषा जानने वाले लोगों की तुलना में ज्यादा सक्रिय था। उनके प्री फ्रंटल कॉर्टेक्स और एंटीरियर सिंगुलर कॉर्टेक्स में ज्यादा हलचल थी। यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया के वैज्ञानिकों का कहना है कम उम्र में हम जितना दिमाग को एफीशिएंट बनाएंगे, अधिक उम्र तक वह उतना ही तेज बना रहेगा।

बागड़वासियों के दोष दूर से हो रही-क्रान्ति-शान्ति! (बागड़ अञ्चल के कुछ ग्रामों के गुण-दोष व वर्तमान में हो रही है आध्यात्मिक क्रान्ति)

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल: 1.देख तेरे संसार ही हालत...)

बागड़ के गुण-दोषों का...कनक गुरु ने किया बखान...

चलाया आध्यात्मिक/(ऐतिहासिक) अभियान...

ज्ञान क्रान्ति (स्वाध्याय) से जन-गण-मन में...हुआ अपूर्व प्रभाव/(प्रभात)

चलाया आध्यात्मिक अभियान...(स्थायी)...

यहाँ के लोग भद्र (सरल) स्वभावी...गुरुभक्त हैं आहारदानी...

अतिथि सत्कार में अग्रणी...मान-मनुहार-आदरभावी...

सेवा-सहयोग संस्कृति से...यह भूमि है महान्...चलाया...(1)...

अनेक गुण सह होने पर भी...स्व-दोष को न जान पाते...

हिन्दी शुद्ध इन्हें न आती...ग्रामीण उर्दू बोली बोले...

सुना सुनी शब्द बोलते...नहीं व्याकरण का ज्ञान...चलाया...(2)...

भाषा बोध नहीं था फिर भी...स्वयं को समझते थे ज्ञानी...

गुरुवर को मान बैठे थे...हिन्दी के अल्प भाषा ज्ञानी...

स्वयं को मान रहे थे हमको...हिन्दी का है स्पेशल ज्ञान...चलाया...(3)...

आत्मस्वरूप (मैं) की विपरीत मान्यता...देहात्म बुद्धि के कारण...

घमण्ड, भूत-प्रेत, भटकती आत्मा...मरणोपरान्त होता है आत्मा...

भाषा-भाव न जाने अल्पज्ञ...लौकिक मैं में ही रममाण...चलाया...(4)...

गुण-गुणी की प्रशंसा करना...गलत मानते थे ये अज्ञ प्राणी...

प्रशंसा कर्ता कनक गुरु को...विपरीत माने थे ये कुज्ञानी...

बान्धते रहते थे कर्मघाती...करके निन्दा रस पान...चलाया...(5)...

धार्मिक ग्रन्थ लिखना छपाना...रखना भी ये पाप मानते...

स्वाध्याय में रूचि नहीं थी...ज्ञानदान को गलत माने थे...

ज्ञानी गुरु की ज्ञान चेतना से...सब जन थे अज्ञान...चलाया...(6)...

अन्य अनेक विषय भावों में...इनमें व्याप्त थी अनेक भ्रान्ति...

ज्ञान-विज्ञान अनुभव शून्य थे...वञ्चित बोध से दीर्घकालिन...

गुरुदेव के प्रति प्रश्नों से...परिवर्तन हुआ महान्...चलाया...(7)...

बोली आडम्बर युक्त बाह्य क्रिया...मन्दिर दर्शन पूजा मात्र धर्म...

रूढि-परम्परा स्वार्थ युक्त...श्रावक समाधि से अनभिज्ञ...

आत्म/(भाव) विशुद्धि गुण वृद्धि से...सबका हुआ सुधार...चलाया...(8)...

नन्दौड़ ग्राम बड़ा बड़भागी/(पुण्यशाली)...यहाँ से प्रारम्भ हुई क्रान्ति...

कलिकाल श्रेयांस प्रवीण...नन्दा देवी का महा योगदान...

चक्रवर्ती सम सातिशय...इनका पुण्य महान्...चलाया...(9)...

आबाल वृद्ध बन रहे ज्ञानी...लेखक कवि समीक्षाकारी...

भाव अभिव्यक्ति में अग्रणी...ज्ञानदान में पुरोगामी...

इनके भाव-व्यवहार-लक्ष्य का...श्री संघ करे सम्मान...चलाया...(10)...

इस क्रान्ति के कारण से ही...‘सुविज्ञ’ जनों में गुण ज्ञान वृद्धि...

आहार औषध ज्ञान दानादि...सेवा सहयोग भक्ति प्रवासादि...

एक एक परिवार द्वारा चौमासा...कर रहा बड़ा कमाल...चलाया...(11)...

नन्दौड़, दि-02/11/2019 व दि-03/11/2019, मध्याह्न 3.36

बागड़ अञ्चल के गुण-दोष-उपलब्धियाँ-ज्ञान क्रान्ति

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल: क्या मौसम आया है...)

गुण कीर्तन करते हैं, गुणस्तवन करते हैं/(ज्ञानानन्द पाते हैं)...

स्वाध्याय से ज्ञान की लहर है चली...

स्वयं के बोध की मन में ज्योति जली...

कनकनन्दी गुरुवर ज्ञान क्रान्ति कर्ता

मुक्ति पथ के राही हैं भव्यों के त्राता...गुणकीर्तन (स्थायी)

बागड़वासी भ्रद स्वभावी गुरु सेवा में है तत्पर

अतिथि सत्कार में अग्रणी शालीन, नम्र, उदार

सेवा, सहयोग, दान मान-मनुहार सह

ज्ञान दान करके अभी बन रहे ज्ञानवान्।। कनकनन्दी...(1)

अनेक गुण होने पर भी स्व गुण-दोष न जाने

शुद्ध हिन्दी नहीं आती न है व्याकरण ज्ञान

कुज्ञानी/(अज्ञानी) थे सभी पर, स्वयं को माने थे ज्ञानी

कनकनन्दी को भाषा में माने थे अल्पज्ञानी।। कनकनन्दी...(2)

इस अञ्चल के बहुजन स्व-आत्मा को न जाने।

मरने पर ही आत्मा होता भूत-प्रेत ही जाने।।

“मैं” बोलने से घमण्ड होता ऐसी घुट्टी पी सबने

देहात्म बुद्धि, भटकती आत्मा विपरीत भाव धारे।। कनकनन्दी...(3)

गुण-गुणी प्रशंसा करना इन्हें विपरीत लगता

अनिन्दक प्रशंसाभावी कनक गुरु को गलत माने

घाती कर्म बान्ध रहे थे निगोद की तैयारी

करूणा हृदयी गुरुवर के सदुपदेश से जागे।। कनकनन्दी...(4)

ग्रन्थ लिखना इन्हें न सुहाता क्यों लिखते हो कहते थे

स्वाध्याय में रूचि नहीं थी संसार में ही रमते थे
ज्ञानानन्द को न जाने दूर थे आत्मानन्द से
सांसारिक तनाव लेकर दुःखों को वरते हैं।। कनकनन्दी...(5)

कौन क्या कहेगा? यह महामारी इस अञ्चल में बहुत थी।
अपक्व फल के समान ज्ञान विकास न हुआ था
ज्ञानदानी गुरुवर की कृपादृष्टि मिली
अधोगति में न जाएँ ऐसी दृष्टि मिली।। कनकनन्दी...(6)

कनकनन्दी गुरुवर श्री हम तुम्हारे साथ चले
मन ये मगन है स्व की लगन हैं आत्मा का ही ध्यान करे
कवि हृदय है गुरुवर विज्ञानी वाग्मी
शिवपथ के अनुगामी शिष्यों के त्राता।। कनकनन्दी...(7)

गुरु जो कहे है आगमवाणी हम आज्ञा पालक अनुगामी
श्रद्धा उन्हीं की भक्ति उन्हीं की ध्यान उन्हीं का नित्य करे
वैज्ञानिक हैं गुरुवर विधि नियम ज्ञाता

विनम्रता से निश्रा में आत्म बोध पाता।। कनकनन्दी...(8) / (वात्सल्य पाता)

नन्दौड़ दि. 6/11/2019 प्रातः 8.35

**आध्यात्मिक सन्तप्रवर आचार्य श्री कनकनन्दी श्रीसंघ
के निस्पृह निराडम्बर चातुर्मास प्रवासादि के प्रभाव!**

(ऐतिहासिक अद्वितीय नन्दौड़ ग्राम में एक परिवार द्वारा तीन चातुर्मास
का अपूर्व लाभ व बागड़-मेवाड़ अञ्चल से ले अन्य प्रदेशों से प्रायः

400 चातुर्मासों हेतु निवेदन!)

अनुमोदक-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चालः ऐ वतन ऐ वतन हमको तेरी कसम...)

अलौकिक श्रमण...कनकनन्दी गुरु...

आपकी राह/(निश्रा) में आत्मशान्ति/(वैभव) बढ़े...

धन मान प्रसिद्धि को क्यों चाहे हम?...

तेरी सेवा/(निश्चा) से सातिशय पुण्य/(ज्ञान, गुण) मिले/

(बढ़े)...आलौकिक श्रमण...(ध्रुव)

निराडम्बर गुरु...निस्पृही सन्त हैं...वीतरागी गुरु...अपरिग्रही हैं...

अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा न करे...ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि से परे /

(धन जन मान भीड़ बोली परे)...

जो भी भव्य आता...भाग्य उसका जगे...सुख साता समाधान शान्ति मिले...

अलौकिक श्रमण...(1)...

निस्पृह भाव से नन्दौड़ ग्राम में...ऐतिहासिक त्रय चातुर्मास करे...

कलिकाल श्रेयासं प्रवीणचन्द्र...नन्दादेवी परिवार पुण्य करे...

/(ऋषभकुमार सहयोग विशेष करे)...

जन-गण-मन में उत्साह बढ़े...इनकी प्रायोगिक प्रेरक क्रान्ति से...

अलौकिक श्रमण...(2)...

संघ में गाड़ी नहीं...साथ चौका नहीं...नौकर आडम्बर तामझाम नहीं...

निरपेक्ष स्वावलम्बी सहज सरल...स्व प्रेरक भक्ति से भक्त सेवा करे...

/(आहार औषधि ज्ञान दान करे)...

ज्ञान प्रभावना देश-विदेशों में...वैज्ञानिक शिष्य भावना से करे अलौकिक श्रमण...(3)...

कोई तन से करे...कोई मन से करे...धन जन श्रम शक्तिभक्ति से करे...

व्यक्तिगत से ले समूह चौमासा करे...स्वतन्त्र एक-एक परिवार के...

/(ग्राम जंगल शहर एकान्त शान्त में)...

आनन्द दायी सरल जीवन जी रहे...ज्ञान गुण कला भक्ति बढ़ा रहे...

अलौकिक श्रमण...(4)...

कोई बागड़ के हैं...कोई मेवाड़ के...राजस्थान कर्नाटक प्रान्त से हैं...

मध्य-उत्तर प्रदेश व दिल्ली से हैं...गुजरात महाराष्ट्र आदि राज्य भी हैं...

/(श्वेताम्बर दिगम्बर हिन्दू आदि भी हैं)...

प्रायः चार शतक (400) चातुर्मास हेतु...‘सुविज्ञ’ जन निवेदन करे भक्ति से...

अलौकिक श्रमण...(5)...

नन्दौड़, दि-18/10/2019, रात्रि प्रायः 9.00

आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव की निस्पृहता

निराडम्बरता, बिना बोली से प्रभावित हो 400 चातुर्मास हेतु निवेदन

-आर्यिका सुवत्सलमती

(चाल: ये देश है वीर जवानों का...)

कनकनन्दी श्री गुरुवर जी, ज्ञानी ध्यानी व विज्ञानी

इन गुरु के विषय में क्या कहना? निस्पृहता इनका है गहना। धृ.

धन-जन व मान परे एकान्त मौन से वास करे।

जंगल में भी मंगल करे समता शान्ति को ही वरे।। हो हो ॐ

नंदा प्रवीण शहा परिवार ने युगान्त इतिहास रचा।

इनसे प्रेरणा पा करके विश्व भी प्रेरित हो रहा।।

अनेक प्रान्तों के भक्तगण चातुर्मास हेतु आतुर हैं।

जैसे चातक पक्षी स्वाती की बूंद को तरसता है।।

महाराष्ट्र प्रांत में धर्मतीर्थ पर (आचार्य) गुप्तिनंदी गुरु श्री संघ।

आजीवन चातुर्मास व सतत निवास भी चाहे।।

देऊलगांव राजा के गुरुभक्त, गुरुवर का सानिध्य चाहे।

नागपुर, मुम्बई, औरंगाबाद, नासिक में चौमासा चाहे।।

प्रसन्न ऋषी मुनिवर श्री गुरुवर के पोता शिष्य है।

इन्दौर के ऋषी तीर्थ पर आजीवन गुरु का संग चाहे।।

नितिन भैया का आजीवन चातुर्मास हेतु निवेदन है।

प्रायः तीन सो (300) बार हरा श्री फल उन्होंने चढ़ाया है।।

सागवाडा समाज का कहना है गुरुदेव हमारे विधाता हैं।

आजीवन या जब भी चाहो चातुर्मास, निवास करना है।।

खोड़नीया परिवार की गुरुवर पर निश्चल भक्ति है।

योगेन्द्र गीरि पर चौमासे पाँच (5) से दस (10) तक चाहते है।

राजस्थान के चौमासों के मैं नाम तुम्हें सुनाती हूँ।
 बिजोलिया निवाई लावा कोटा जयपुर के भक्तों को मानती हूँ।।
 सलूमबर (छगनलाल) उदयपुर से कृष्णावत जी का निवदेन है।
 गरीयावास (मुकेश) देबारी (टया पखार) समवशरण मन्दिर (काँखा पखार) है।
 परसाद, केशरीयाजी कानपूर, सेक्टर ग्यारह गुरुदेव (हमेशा) तुम्हारा है।
 देवपूरा (विमल) गनोड़ा बनकोडा (महीपाल सिंह) खरका गींगला परतापूर है।।
भीलूड़ा का भरड़ा परिवार, ओबरी के आबाल वनीता श्रावक गण।
 पुनर्वास कॉलोनी के प्रत्येक शिष्य, टीना मनीष चौमासा चाहते है।
 (चीतरी) मणिभद्र दीपेश भूपेश मयंक मधोक आजीवन गुरु सेवा चाहे।
 पारडाइटीवार के जैन हिन्दू गुरुवर का चौमासा चाहे।।
 बांसवाड़ा (अनेक कॉलोनी) के श्रावक गण गुरुवर का चातुर्मास चाहे।
 अदेश्वर अतिशयक्षेत्र पर कुशलगढ़ वासी वर्षायोग चाहे।।
 गुजरात प्रांत के निवासी गुरुवर का चातुर्मास चाहे।
 कोबा (आश्रम) शहापूर ईडर तारंगा सिद्ध क्षेत्र वाले चाहे।।
 कर्नाटक के शमनेवाड़ी में ब्र. पल्लवी गुरुवर का वर्षायोग चाहे।
 सादा जीवन उच्च विचार (वाले) ग्रामीण गुरुवर को भाये।।
 दिगम्बर हो या श्वेताम्बर, या हो हिन्दु राजपूत/(कोई धर्मी)।
 गुरुभक्ति से आकर्षित हो एकान्त ग्रामों में भी आते हैं।।
 बिना बोली मंच माईक, बाह्य आडम्बरों से रिक्त।
 आत्म प्रभावना कर रहे, ज्ञानानन्द पा रहे हैं।।
 अन्त्योदय की भावना लेकर, गुरुदेव सर्वोदय करते है।
 सत्वेषु मैत्री का भाव धरे, आनन्द मंगल करते हैं/(वात्सल्य भाव धरते हैं) ।।

नन्दौड़ दि. 19/10/2019 मध्याह्न 1.15

वर्तमान के जैन धर्म की विकृतियाँ

-अखिल बंसल

चहुं और घना अधियारा है जैनत्व स्वयं से हारा है।
सत्य अहिंसा अपरिग्रह का कोरा रह गया नारा है।
जो समता साधना में रत हों वे विरले साधु दिखते हैं।
जिन शासन की मत बात करो सब अपने पंथ की कहते हैं।
यहां-शीर्ण मंदिर दिखते जो करुण कहानी कहते हैं।
उनकी तो नहीं सुरक्षा है नित नये यहां पर बनते हैं।
हर साधु का आभा मण्डल विकसित होते तो देखा है।
चंदा-चिट्ठा भी खूब करें आगम की यहां उपेक्षा है।
सबकी गिरियां बनती देखी कलशों की बिक्री खूब हुई।
चातुर्मासों में व्यय होता पर धरम की पेटी रीती है।
हम जैनी अपना धरम जैन कहने में लज्जा आती है।
विद्वानों की पैनी नजरें अब नहीं दिखाई देती हैं।
कैसे जिनधर्म चलेगा यह “अखिल” को चिंता होती है।
बिन बोली के कुछ न होवे सुन-सुन कर आंखे रोती है।

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृ. स.
1.	वर्तमान युग के जीनियस-पुरोगामी आत्मवैज्ञानिक	2
2.	जीनियसों के जीनियस	10
3.	बागड़वासियों के दोष दूर से हो रही-क्रान्ति-शान्ति	36
4.	बागड़ अञ्चल के गुण-दोष-उपलब्धियाँ-ज्ञान क्रान्ति	38
5.	आध्यात्मिक...आचार्य श्री कनकनन्दी श्रीसंघ के निस्पृह चातुर्मास...के प्रभाव!	39
6.	आचार्य श्री कनकनन्दी...निराडम्बरता, बिना बोली से प्रभावित हो 400 चातुर्मास हेतु निवेदन	41

आध्यात्मिक सुपर थिंकिंग

1.	शुद्धात्मा गुणगण कीर्तन/शुद्धात्मा धर्म कीर्तन	45
2.	नमन (जय, लक्ष्य, प्राप्त) हे! आत्मानन्द	45
3.	परम विकास हेतु मेरी आध्यात्मिक सकारात्मकता-एफर्मेंशन	47
4.	शुभ से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनूँ	70
5.	भौतिक परम विकास व सुख से परे आध्यात्मिक	87
6.	स्व-तन के निवासी को मोही-कुज्ञानी न जाने!	117
7.	स्व की उपलब्धि हेतु स्वयोग्यता ही प्रमुख	138
8.	विश्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हेतु करूँ पुरुषार्थ	147
9.	पर व विभाव परे स्वभाव में लीन	174
10.	परपरिणति से परे स्वपरिणति में रमण	175
11.	सूक्ष्म जीव रक्षक V/S मानव घातक भी	194
12.	पूज्य के गुण प्राप्ति हेतु पूजा अन्यथा याचना	219
13.	न्याय V/S अन्याय	231
14.	ब्रायन की दृष्टि में भारतीयों के अन्धकार पक्ष	238
15.	मुझे वह प्रभावना-ज्ञान-तप-धर्म आदि नहीं चाहिए	245
16.	न देऊँ सबके प्रश्नों के उत्तर, न मानूँ सब के उत्तर!?	252
17.	क्या है परम सत्य...लक्ष्य!?	270
18.	आध्यात्मिक सुपर पंचविध व्यक्तित्व (पंचपरमेष्ठी)	272

आध्यात्मिक सुपर थिंकिंग

शुद्धात्मा गुणगण कीर्तन/ शुद्धात्मा धर्म कीर्तन

(चाल: 1.जय जय जगदीश हरे हरे... 2.कुहू कुहू बोले कोयलिया... 3.क्या मिलिए...)

आत्म गुण सह...विभाव रिक्त...होता धर्म सुखकारी...

मोह क्षोभ रिक्त...समता सह...होता धर्म दुःखहारी...

आत्म श्रद्धा सह...आत्म प्रज्ञा युक्त...आचरण होता साम्यकारी...

मोह मद रिक्त...शुद्धभाव युक्त...अनन्त ज्ञान सुख वीर्यकारी...

परभाव रिक्त...स्वभाव सहित...द्रव्य भाव नोकर्म नाशकारी...

शुद्ध बुद्ध आनन्द...निर्मल निरामय...आत्मरस में ही लीनकारी...

संकल्प विकल्प संक्लेश रिक्त...चैतन्य चमत्कार शिवकारी...

संसार भ्रमण विरहित...सत्य शिव सुन्दर हितकारी...

निश्चल निच्छल निर्भय युक्त...जन्म जरा मृत्यु दुःखहारी...

उत्पाद व्यय ध्रौव्य शुद्ध रूप...अचिन्त्य अनुपम गुणधारी...

भौतिक रहित आत्मिक सहित...अभिन्न षट्कारक अविकारी...

स्वयं कर्ता धर्ता स्वयं ही भोक्ता...त्रैलोक्य विभु आत्मविहारी...

विश्व स्थित...विश्व से महत्...विश्वव्यापी स्व स्वभाव विहारी...

स्व चिन्तन ध्यान अनुभव द्वारा...स्वरूप प्राप्ति लक्ष्य 'कनकसूरी'...

नन्दौड़, दि-3/11/2019, प्रातः 8.47

नमन/(जय, लक्ष्य, प्राप्य) हे! आत्मानन्द

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) आत्म-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) शुद्ध-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) नित्य-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) सत्य-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) निज-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) बुद्ध-आनन्दम्।

आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) श्रद्धा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) प्रज्ञा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) चर्या-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(प्राप्य) शान्ति-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) ज्ञान-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) ध्यान-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) तप-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) त्याग-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) धैर्य-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) दम-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) क्षमा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) मौन-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) दान-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) दया-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) पूजा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) सेवा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) रक्षा-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) शिक्षा/(दीक्षा)-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) साम्य-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) शौच-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(प्राप्य) ब्रह्म-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(लक्ष्य) परं-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(लक्ष्य) अहं-आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(प्राप्य) सिद्ध आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(लक्ष्य) मोक्ष आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) वीर्य आनन्दम्।
 आनन्दं आनन्दं जय/(नमः) चित् आनन्दम्।

(चाल:-भातुकली...)

आनन्द ही आनन्द आत्मा ही है आनन्दम्।

आत्मा के अतिरिक्त अन्य में न आनन्दम्।।

तन न आनन्द मन न आनन्द, आत्मा से रहित दोनों निर्जीव।

इन्द्रिय न आनन्द मस्तिष्क न आनन्द, आत्मा से रहित दोनों निर्जीव।।

सत्ता न आनन्द सम्पत्ति न आनन्द, आत्मा से रहित दोनों निर्जीव।

ख्यति न आनन्द वर्चस्व न आनन्द, आत्मा से रहित दोनों निर्जीव।

राग न आनन्द द्वेष न आनन्द, दोनों ही कर्मज अतः वे विभाव/(दुःखद)।

मोह न आनन्द मद न आनन्द, दोनों ही कर्मज अतः वे विभाव/(दुःखद)।

भोग न आनन्द रोग न आनन्द, दोनों ही कर्मज अतः वे विभाव/(दुःखद)।

ईर्ष्या न आनन्द तृष्णा न आनन्द, दोनों ही कर्मज अतः वे विभाव/(दुःखद)।

पाप न आनन्द ताप न आनन्द, दोनों ही कर्मज अतः वे विभाव/(दुःखद)।

सच्चिदानन्द ही है सत्यशिवसुन्दरम्, विभाव व पर सभी होते हैं दुःखदम्।

आनन्द ही ध्येय-आनन्द ही श्रेय, आनन्द स्वरूप लक्ष्य 'कनक'।

नन्दौड़, दि-30-11-2019, रात्रि-8.30

आधुनिक पॉजिटिव मोटिवेशन-एफर्मेंशन-थिंकर से भी परे

परम विकास हेतु मेरी आध्यात्मिक सकारात्मकता-एफर्मेंशन

(स्व-आत्म विकास हेतु मेरे आत्मविश्वास-आत्मज्ञान-आत्मचिन्तन-

आत्मकथन-आत्मशोधन-आत्मध्यान...)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल:1. मन रे! तू काहे... 2. सायोनारा...)

जिया रे! तू आत्मविश्वास/(आत्मश्रद्धान, आत्मगौरव) बढ़ाओ SSS

इससे आत्मज्ञान होगा सुदृढ़...तथाहि आत्मानुचरण SSS (ध्रुव)...

सर्वज्ञ उपदिष्ट आत्मश्रद्धान से...प्राप्त हुआ तुझे आज्ञा सम्यक्त्व...SSS

इसे बढ़ाते हुए तुझे पाना है...परमावगाढ सम्यक् दर्शन तक SSS

सर्वज्ञ बनने से होगा यह सम्यक्त्व SSS...(1)...

इस हेतु तुझे पूर्ण करना है...मार्ग, उपदेश, सूत्र, बीज सम्यग्दर्शन SSS
संक्षेप विस्तार, अर्थ, अवगाढ़...परमावगाढ़ सम्यक् दर्शनम् SSS
इस हेतु कर तू ज्ञान-आचरण SSS...(2)...

इसके योग्य ही तुझे सोचना-करना...ये ही परम सकारात्मक भाव-काम SSS
आत्मविश्लेषण व आत्मशोधन...आत्मसम्बोधन-आत्मप्रोत्साहन SSS
स्व-प्रतिस्पर्द्धा से आत्म उन्नयन SSS...(3)...

इस हेतु ही करो ध्यान-अध्ययन...मनन-चिन्तन-अनुसन्धान SSS
दीन-हीन-दम्भ-भय-शङ्का परे...दृढ़ता विनम्रता युक्त प्रयत्न SSS
धैर्य व आत्मानुशासन पूर्ण SSS...(4)...

इस हेतु ही बनो दृढ़ प्रतिज्ञ...त्यागो हे ! संकल्प-विकल्प-संक्लेश SSS
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतिक्षा से परे...स्व लक्ष्य प्राप्ति में सदालीन SSS
ख्याति-पूजा-लाभ-वर्चस्व शून्य SSS...(5)...

स्व लक्ष्य प्राप्ति में परम बाधक...राग-द्वेष-मोह-काम व क्रोध SSS
ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-मद-मत्सर...पर निन्दा अपमान-वैर-विरोध SSS
इसे सदा सर्वदा करो विनाश SSS...(6)...

ये ही स्व आध्यात्मिक विकास उपाय...इससे अनन्त बने परमात्मा SSS
परमात्म अवस्था ही परम विकास...यह ही सत्य शिव सुन्दर दशा SSS
'कनक' शीघ्र प्राप्त करो स्व-अवस्था SSS...(7)...

मोटिवेशनल स्पीकर व थिंकर तक...न जानते यह सुपर पॉजिटिव थिंकिंग SSS
उनकी सीमा तो तन मन धन पोस्ट...जो कि भौतिक-अशाश्वतिक SSS
तो भी इण्डियन न जानते यह भी SSS...(8)...

इसलिए तो विश्व गुरु भारत भी...अनेक समस्याओं से संत्रस्त SSS
शिक्षा-राजनीति-कानून-व्यापार...तन-मन-धन से ले धर्म तक SSS
भो भारतीय! अभी करो आत्मविकास SSS...(9)...

संदर्भ-

श्रद्धानं द्विविधं त्रिधा दशविधं मौढ्याद्यपोढं सदा
संवेगादिविवर्धितं भवहरं त्र्यज्ञानशुद्धिप्रदम्।

निश्चिन्वन् नव सप्ततत्त्वमचलप्रासादमारोहतां

सोपानं प्रथमं विनेयविदुषामाद्येयमाराधना।। (10)

तत्त्वार्थश्रद्धान का नाम सम्यग्दर्शन है। वह निसर्गज और अधिगमज के भेद से दो प्रकार का; औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक के भेद से तीन प्रकार का; तथा आगे कहे जानेवाले आज्ञासम्यक्त्व आदि के भेद से दस प्रकार का भी है। मूढता आदि (3 मूढता, 8 मद, 6 अनायतन और 8 शंका-कांक्षा आदि) दोषों से रहित होकर संवेग आदि गुणों से वृद्धि को प्राप्त हुआ वह श्रद्धान (सम्यग्दर्शन) निरन्तर संसार का नाशक; कुमति, कुश्रुत एवं विभंग इन तीन मिथ्याज्ञानों की शुद्धि (समीचीनता) का कारण; तथा जीवाजीवादि सात अथवा इनके साथ पुण्य और पाप को लेकर नौ तत्त्वों का निश्चय करानेवाला है। वह सम्यग्दर्शन स्थिर मोक्षरूप भवन के ऊपर चढ़नेवाले बुद्धिमान् शिष्यों के लिये प्रथम सीढ़ी के समान है। इसीलिये इसे चार आराधनाओं में प्रथम आराधनास्वरूप कहा जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ सम्यग्दर्शन के जो दो भेद निर्दिष्ट किये गये हैं वे हैं निसर्गज और अधिगमज सम्यग्दर्शन। इनमें जो तत्त्वार्थश्रद्धान साक्षात् बाह्य उपदेश आदि की अपेक्षा न करके स्वभाव से ही उत्पन्न होता है उसे निसर्गज तथा जो बाह्य उपदेश की अपेक्षा से उत्पन्न होता है उसे अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। प्रत्येक कार्य अन्तरङ्ग और बाह्य इन दो कारणों से उत्पन्न होता है। तदनुसार यहाँ सम्यग्दर्शन का अन्तरङ्ग कारण जो दर्शनमोहनीय का उपशम, क्षय अथवा क्षयोपशम है वह तो इन दोनों ही सम्यग्दर्शनों में समान है। विशेषता उन दोनों में इतनी ही है कि निसर्गज सम्यग्दर्शन साक्षात् बाह्य उपदेश की अपेक्षा न करके जिन महिमा आदि देखने से प्रगट हो जाता है, परन्तु अधिगमज सम्यग्दर्शन बाह्य उपदेश के बिना नहीं प्रगट होता है। इसके आगे जो उसके तीन भेद निर्दिष्ट किये हैं वे अन्तरङ्ग कारण की अपेक्षा से हैं। यथा—जो मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन सात प्रकृतियों के उपशम से उत्पन्न होता है उसे औपशमिक तथा जो इन्हीं सात प्रकृतियों के क्षय से उत्पन्न होता है उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनके उदयाभावी क्षय व सदवस्थारूप उपशम से तथा देशघाती स्पर्धकस्वरूप सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उसे

क्षायोपशमिक कहा जाता है। आगे जो यहां सम्यग्दर्शन के दस भेदों का निर्देश किया है उनका वर्णन ग्रन्थकार स्वयं ही आगे करेंगे, अतएव उनके सम्बन्ध में यहां कुछ नहीं कहा जा रहा है। जिन दोषों के कारण यह सम्यग्दर्शन मलिनता को प्राप्त होता है वे पच्चीस दोष निम्न प्रकार हैं-3 मूढ़ता, 8 मद, 6 अनायतन और 8 शंका आदि। मूढ़ता का अर्थ अज्ञानता है। वह मूढ़ता तीन प्रकार की है। (1) लोकमूढ़ता-कल्याणकारी समझकर गंगा आदि नदियों अथवा समुद्र में स्नान करना, वालु या पत्थरों का स्तूप बनाना, पर्वत से गिरना, तथा अग्नि में जलकर सती होना आदि। (2) देवमूढ़ता-अभीष्ट फल प्राप्त करने की इच्छा से इसी भव में आशायुक्त होकर राग-द्वेष से दूषित देवताओं की आराधना करना। (3) गुरुमूढ़ता-जो परिग्रह, आरम्भ एवं हिंसा से सहित तथा संसारपरिभ्रमण के कारणीभूत विवाहादि कार्यों में रत हैं ऐसे मिथ्यादृष्टि साधुओं की प्रशंसा आदि करना। कहीं कहीं इस गुरुमूढ़ता के स्थान में समयमूढ़ता पायी जाती है जिसका अभिप्राय है समीचीन और मिथ्या शास्त्रों की परीक्षा न कर कुमार्ग में प्रवृत्त करनेवाले शास्त्रों का अभ्यास करना। ज्ञान, प्रतिष्ठा, कुल (पितृवंश), जाति (मातृवंश), शारीरिक बल, धन-सम्पत्ति, अनशनादिस्वरूप तप और शरीरसौन्दर्य इन आठ विषय में अभिमान प्रगट करने से आठ मद होते हैं। अनायतन का अर्थ है धर्म का अस्थान। वे अनायतन छह हैं-कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरुभक्ति, कुदेवभक्त और कुधर्मभक्त। निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव राजा आदि के भय से, आशा से, स्नेह से तथा लोभ से भी कभी इनकी प्रशंसा आदि नहीं करता है। 8 शंका आदि-(1) शंका-सर्वज्ञ देव के द्वारा उपदिष्ट तत्त्व के विषय में ऐसी आशंका रखना कि जिस प्रकार यहां अमुक तत्त्व का स्वरूप बतलाया गया है क्या वास्तव में ऐसा ही है अथवा अन्य प्रकार है। (2) कांक्षा-पाप एवं दुख के कारणीभूत कर्माधीन सांसारिक सुख को स्थिर समझकर उसकी अभिलाषा रखना। (3) विचिकित्सा-मुनि आदि के मलिन शरीर को देखकर उससे घृणा करना। यद्यपि यह मनुष्यशरीर स्वभावतः अपवित्र है, फिर भी चूंकि सम्यग्दर्शन आदिरूप रत्नत्रय का लाभ एक मात्र इसी मनुष्यशरीर से हो सकता है अतएव वह घृणा के योग्य नहीं है। यदि वह घृणा के योग्य है तो केवल विषयभोग की दृष्टि से ही है, न कि आत्मस्वरूपलाभकी दृष्टि से। (4) मूढ़दृष्टि-कुमार्ग अथवा कुमार्गगामी जीवों की मन, वचन अथवा काय से प्रशंसा करना। (5)

अनुपगूहन-अज्ञानी अथवा अशक्त (व्रतादिके परिपालन में असमर्थ) जनों के कारण पवित्र मोक्षमार्ग के विषय में यदि किसी प्रकार की निन्दा होती हो तो उसके निराकरण का प्रयत्न न करके उसमें सहायक होना। (6) अस्थितिकरण-मोक्षमार्ग से डिगते हुए भव्य जीवों को देख करके भी उन्हें उसमें दृढ़ करने का प्रयत्न न करना। (7) अवात्सल्य-धर्मात्मा जीवों का अनुरागपूर्वक आदर सत्कार आदि न करना, अथवा उसे कपटभाव से करना। (8) अप्रभावना-जैनधर्म के विषय में यदि किन्हीं को अज्ञान अथवा विपरीत ज्ञान है तो उसे दूर करके उसकी महिमा को प्रकाशित करने का उद्योग न करना। इस प्रकार ये सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष हैं जो उसे मलिन करते हैं। इतना यहां विशेष समझना चाहिये कि इन दोषों की सम्भावना केवल क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के विषय में ही हो सकती है, कारण कि वहां सम्यक्त्वप्रकृति का उदय रहता है। औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दर्शन के विषय में उक्त दोषों की सम्भावना नहीं है। श्लोक में जिन संवेग आदि गुणों से इस सम्यग्दर्शन को वृद्धिगत बतलाया है वे ये हैं- (1) संवेग अर्थात् संसार के दुःखों से निरन्तर भयभीत रहना, अथवा धर्म में अनुराग रखना। (2) निर्वेद-संसार, शरीर एवं भोगों से विरक्ति। (3) निन्दा-अपने दोषों के विषय में पश्चात्ताप करना। (4) गर्हा-किये गये दोषों को गुरु के आगे प्रकट करके निन्दा करना। (5) उपशम-क्रोधादि विकारों को शान्त करना। (6) भक्ति-सम्यग्दर्शन आदि के विषय में अनुराग रखना। (7) वात्सल्य-धर्मात्मा जनसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना। (8) अनुकम्पा-प्राणियों के विषय में दयाभाव रखना। इस प्रकार इन गुणों से सहित और उपर्युक्त पच्चीस दोषों से रहित वह सम्यग्दर्शन मोक्षरूपी प्रासाद की प्रथम सीढ़ी के समान है। इसीलिये उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप इन चार आराधनाओं में प्रथम स्थान प्राप्त है।

आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्

विस्तारार्थाभ्यां भवमवपरमावादिगाढं च॥ (11)

वह सम्यग्दर्शन आज्ञासमुद्भव, मार्गसमुद्भव, उपदेशसमुद्भव, सूत्रसमुद्भव, बीजसमुद्भव, संक्षेपसमुद्भव, विस्तारसमुद्भव, अर्थसमुद्भव, अवगाढ और परमावगाढ; इस प्रकार से दस प्रकार का है।

आज्ञासम्यक्त्वमुक्तं यदुत विरुचितं वीतरागाज्ञयैव।

त्यक्तग्रन्थप्रपञ्चं शिवममृत पंथं श्रद्धन्मोहशान्तेः॥

मार्गश्रद्धानमाहुः पुरुषवरपुराणोपदेशोप ज्ञाता

या सज्ञानागमाब्धिप्रसृतिभिरुपदेशादिरादेशि दृष्टिः॥ (12)

दर्शनमोह के उपशान्त होने ग्रन्थश्रवण के बिना केवल वीतराग भगवान् की आज्ञा से ही जो तत्त्वश्रद्धान उत्पन्न होता है उसे आज्ञासम्यक्त्व कहा गया है। दर्शनमोह का उपशम होने से ग्रन्थ श्रवण के बिना जो कल्याणकारी मोक्षमार्ग का श्रद्धान होता है उसे मार्गसम्यग्दर्शन कहते हैं। त्रेसठ शलाकापुरुषों के पुराण (वृत्तान्त) के उपदेश से जो सम्यग्दर्शन (तत्त्वश्रद्धान) उत्पन्न होता है उसे सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करनेवाले आगमरूप समुद्र में प्रवीण गणधर देवादि ने उपदेशसम्यग्दर्शन कहा है।

आकर्ण्यचारसूत्रं मुनिचरणविधेः सूचनं श्रद्धानः।

सूक्तासौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य बीजैः।

कैश्चिज्जातोपलब्धेरसमशमशब्दीजदृष्टिः पदार्थान्

संक्षेपणैव बुद्ध्वा रुचिमुपगतवान् साधु संक्षेपदृष्टिः॥ (13)

मुनि के चरित्र (सकलचरित्र) के अनुष्ठान को सूचित करनेवाले आचार सूत्र को सुनकर जो तत्त्वश्रद्धान होता है उसे उत्तम सूत्रसम्यग्दर्शन कहा गया है। जिन जीवादि पदार्थों के समूह का अथवा गणितादि विषयों का ज्ञान दुर्लभ है उनका किन्हीं बीजपदों के द्वारा ज्ञान प्राप्त करनेवाले भव्य जीव के जो दर्शनमोहनीय के असाधारण उपशमवश तत्त्वश्रद्धान होता है उसे बीजसम्यग्दर्शन कहते हैं। जो भव्य जीव पदार्थों के स्वरूप को संक्षेप से ही जान करके तत्त्वश्रद्धान (सम्यग्दर्शन) को प्राप्त हुआ है उसके उस सम्यग्दर्शन को संक्षेपसम्यग्दर्शन कहा जाता है।

यः श्रुत्वा द्वादशाङ्गी कृतिरुचिरथं त विद्धि विस्तारदृष्टि

संजातार्थात्कुतश्चित्प्रवचनवचनान्यन्तरेणाथदृष्टिः॥

दृष्टि साङ्गाङ्गबाह्यप्रवचनमवगाह्येत्थिता यावगाढा

कैवल्यालोकितार्थं रुचिरिह परमावादिसगाढेति रूढा॥ (14)

जो भव्य जीव बारह अंगों को सुनकर तत्त्वश्रद्धानी हो जाता है उसे विस्तारसम्यग्दर्शन से युक्त जानो, अर्थात् द्वादशांग के सुनने से जो तत्त्वश्रद्धान होता है उसे विस्तारसम्यग्दर्शन कहते हैं। अंगबाह्य आगमों के पढ़ने के बिना भी उनमें प्रतिपादित किसी पदार्थ के निमित्त से जो अर्थश्रद्धान होता है अर्थसम्यग्दर्शन कहलाता है। अंगों के साथ अंगबाह्य श्रुत का अवगाहन करके जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है उस अवगाहसम्यग्दर्शन कहते हैं। केवलज्ञान के द्वारा देखे गये पदार्थों के विषय में रुचि होती है वह यहां परमावगाहसम्यग्दर्शन इस नाम से प्रसिद्ध है। **विशेषार्थ**-श्लोक 12, 13 और 14 में सम्यग्दर्शन के जिन दस भेदों का स्वरूप निर्दिष्ट किया गया है वे प्रायः उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त हुए हैं। यथा-प्रथम आज्ञा-सम्यक्त्व में जीव शास्त्राभ्यास के बिना केवल सर्वज्ञ वीतराग देव की आज्ञापर ही विश्वास करता है। उसे यह निश्चल श्रद्धान होता है कि जिनेन्द्र देव चूंकि सर्वज्ञ और वीतराग (राग-द्वेषरहित) हैं अतएव वे अन्यथा उपदेश नहीं दे सकते हैं, उन्होंने जो तत्त्व का स्वरूप बतलाया है वह सर्वथा ठीक है। दूसरे मार्गसम्यग्दर्शन में भी जीव के आगम का अभ्यास नहीं होता। वह केवल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग को कल्याणकारी समझकर उस पर श्रद्धान करता है।

तीसरे उपदेशसम्यग्दर्शन में प्राणी प्रथमानुयोग में वर्णित तीर्थंकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण एवं बलभद्र आदि महापुरुषों के चारित्र को सुनकर और उससे पुण्य-पाप के फल को विचारकर तत्त्वश्रद्धान करता है। चौथे सूत्रसम्यग्दर्शन में जीव चरणानुयोग में वर्णित मुनियों के चारित्र को सुनकर तत्त्वरुचि को उत्पन्न करता है। पांचवे बीजसम्यग्दर्शन में करणानुयोग से सम्बद्ध गणित आदि की प्रधानता से वर्णित जिन दुर्गम तत्त्वों का ज्ञान सर्वसाधारण के लिये दुर्लभ होता है उसे जीव किन्हीं बीज पदों के निमित्त से प्राप्त करके तत्त्वश्रद्धान करता है। छठे संक्षेपसम्यग्दर्शन में द्रव्यानुयोग में तर्क की प्रधानता से वर्णित जीवा-जीवादि पदार्थों को संक्षेप से जानकर प्राणी तत्त्वरुचि को प्राप्त होता है।

सातवें विस्तारसम्यग्दर्शन में जीव द्वादशांगश्रुत को सुनकर तत्त्वश्रद्धानी बनता है। आठवें अर्थसम्यग्दर्शन में विशिष्ट क्षयोपशम से सम्पन्न जीव श्रुत के सुनने के बिना ही उसमें प्ररूपित किसी अर्थविशेष से तत्त्वश्रद्धानी होता है। नौवें अवगाहसम्यग्दर्शन

में अंगप्रविष्ट और अंगबाह्य दोनों ही प्रकार के श्रुत को ज्ञात करके जीव दृढश्रद्धानी बनता है। यह सम्यग्दर्शन श्रुतकेवली के होता है। अन्तिम परमावगाढसम्यग्दर्शन सचराचर विश्व को प्रत्यक्ष देखनेवाले केवली भगवान् के होता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान ही पारमार्थिक सुख है-

जाद सयं समत्तं णाणमणंत्थवित्थडं विमलं।

रहीदं तु ओग्गहादिहिं सुहं ति एगंतियं भणियं।।(59) प्रवचन.

(णाणं) यह केवलज्ञान (सयंजादं) स्वयमेव ही उत्पन्न हुआ है, (समत्तं) परिपूर्ण है (अणंत्थवित्थदं) अनन्त पदार्थों में व्यापक है (विमलं) संशय आदि मलों से रहित है, (ओग्गहादिहिं तु रहियं) अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा आदि के क्रम से रहित है, इस प्रकार पाँच विशेषणों से गर्भित जो केवलज्ञान है वही (एगंतियं) नियम करके (सुहं ति भणियं) सुख है, ऐसा कहा है। भाव यह है कि यह केवल ज्ञान पर-पदार्थों की अपेक्षा न करके चिदानन्दमयी एक स्वभाव रूप अपने से शुद्धात्मा के एक उपादान के कारण से उत्पन्न हुआ है इसलिये स्वयं पैदा हुआ है, सर्व शुद्ध आत्मा के प्रदेशों में प्रगटा है इसलिये सम्पूर्ण है, अथवा सर्वज्ञान के अविभाग-प्रतिच्छेद अर्थात् शक्ति के अंश उनसे परिपूर्ण हैं, सर्व आवरण के क्षय होने से पैदा होकर सर्व ज्ञेय पदार्थों को जानता है इससे अनन्त पदार्थ व्यापक है, संशय, विमोह, विभ्रम से रहित होकर व सूक्ष्म आदि पदार्थों के जानने में अत्यन्त विशद होने से निर्मल है तथा क्रमरूप इन्द्रियजनित ज्ञान के खेद के अभाव से अवग्रहादि-रहित अक्रम है। ऐसा यह पाँच विशेषण सहित क्षायिकज्ञान अनाकुलता लक्षण को रखने वाला परमानन्दमयी एक रूप पारमार्थिक सुख से संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा से भेदरूप होने पर भी निश्चयनय से अभिन्न होने से पारमार्थिक या सच्चा स्वाभाविक सुख कहा जाता है, यह अभिप्राय है।

समीक्षा-सुख आत्मा का स्वाभाविक शुद्ध आत्म स्वभाव है, और सुख का वेदन जीव ज्ञान के माध्यम से करता है, परन्तु जब जीव समस्त कर्मों से रहित होकर पूर्ण ज्ञानानन्द स्वरूप बन जाता है तब ज्ञान एवं आनन्द में अभेद विवक्षा से भेद नहीं रहता है तथा उसका वेदन भी अभेद हो जाता है। इसलिये अभेद विवक्षा से ज्ञान

एवं सुख को एकरूप स्वीकार किया गया है तथापि भेद विविक्षा से ज्ञान एवं सुख पृथक्-पृथक् हैं, क्योंकि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से केवलज्ञान होता है, दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व होता है एवं चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से क्षायिक चारित्र होता है और इसे ही सुख कहा है। इसलिये चार घातिकर्म के क्षय से अनंत चतुष्टय प्रकट होता है, परन्तु प्रवचनसार आध्यात्मिक ग्रंथ है। इस आध्यात्मिक ग्रन्थ में ज्ञान को मुख्यता दी गई है।

जादसयं - इस गाथा में “जादं सयं” अर्थात् स्वयं से उत्पन्न हुआ विशेष ज्ञान (सुख) के लिये दिया गया है, क्योंकि यह सुख जीव का स्वभाव होने से बाहर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु स्वयं में ही अभेद रूप से निहित है। जैसे सूर्य में सूर्य किरणें रहती हैं, किन्तु बादलों के कारण छिप जाती है और बादल छटते हटते ही सूर्य किरण प्रकट हो जाती है उसी प्रकार स्वयं में निहित सुख (ज्ञान) ही कर्म के कारण तिरोहित/गुप्त/सुप्त हो गया था, परन्तु विरोध कारण रूप कर्म-क्षय के कारण स्वयं प्रकट हो गया।

समस्तं (समस्त)-सुख आत्मा का गुण होने के कारण पूर्ण आत्मा के समस्त प्रदेशों में सुख का वेदन होता है। जिस प्रकार अग्नि की उष्णता अग्नि के प्रत्येक कण में, स्वर्ण का पीतपना स्वर्ण के प्रत्येक प्रदेश में, शक्कर का मीठापन उसके प्रत्येक कण-कण में होता है उसी प्रकार सुख वेदन आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में होता है।

णाणमणंतत्थवित्थंडं (अनन्त अर्थ में विस्तृत ज्ञान) - ज्ञान ज्ञेय प्रमाण होने के कारण और केवलज्ञान में सबसे अधिक अनंतानंत अनुभाग प्रतिच्छेद शक्ति होने के कारण यह ज्ञान समस्त ज्ञेयों में विस्तृत है इसलिये इस ज्ञान में जानने के लिये कुछ अवशेष नहीं रहता है। इस ज्ञान में जानने की इच्छा का अभाव होने के कारण यह ज्ञान सुख स्वरूप है।

विमल (मल रहित, निर्मल) - छद्मस्थ का ज्ञान एवं सुख कर्म सापेक्ष होने के कारण मलयुक्त होने के कारण आकुलता उत्पन्न करने वाला है परन्तु केवलज्ञान कर्म निरपेक्ष एवं अव्याबाध होने के कारण यह सुख परम आल्हाद रूप सुख है।

रहिदं तु ओग्गहादीहिं (अवग्रहादि से रहित) - केवल ज्ञान क्षायिक होने के कारण यह युगपत् प्रवृत्त होता है। इसलिये अवग्रहादि क्रम नहीं है और तज्जनित

खेद व आकुलता नहीं है। इसलिये प्रत्यक्षज्ञान ही पारमार्थिक या एकान्तिक सुख है। समयसार की टीका में जयसेनाचार्य ने कहा भी है -

यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसंभवम्।
विविशन्ति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमम्।।
सर्वेणातीत-कालेन यच्च मुक्त महर्द्धिकम्।
भाविनो ये च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्टं स्वान्तरज्जकम्।।
अनन्तगुणानं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम्।
एकस्मिन् समये भुक्त तत्सुखं परमेश्वरः।।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि हे प्रभो! आपने अनेक बार अतीन्द्रिय सुख की बात कही है किन्तु वह अतीन्द्रिय सुख कैसा है ऐसा लोग नहीं जानते? आचार्य देव उसका उत्तर देते हैं - देखो कोई व्यक्ति स्त्री प्रसंग आदि पंचेन्द्रिय के विषय सुख व्यापार रहित अवस्था में सभी प्रकार की आकुल व्याकुलता से दूर होकर बैठा हुआ है उसको किसी ने आकर पूछा कि कहो भाई देवदत्त! सुख से तो हो? इस पर वह उत्तर देता है कि सुख से हूँ तो यह सुख अतीन्द्रिय है क्योंकि सांसारिक सुख विषयों के सेवन से पैदा होता है और यहाँ पंचेन्द्रिय के विषय व्यापार का अभाव होते हुए भी सुख दिख रहा है वह अतीन्द्रिय है, किन्तु जो पाँचों इन्द्रियों और मन से होने वाले सभी प्रकार के विकल्प जालों से रहित ऐसे जो समाधिस्थ परम योगीराज को स्वसंवेदात्मक अतीन्द्रिय सुख होता है वह विशेष रूप से होता है अर्थात् इससे भी और अपूर्व विशेषता लिये हुए होता है। जो मुक्तात्माओं को अतीन्द्रिय सुख है, वह हम तुम सरीखे लोगों के या तो अनुमानगम्य है या आगम गम्य है। देखो, मुक्तात्माओं को इन्द्रिय विषयों के व्यापार के न होने पर भी अतीन्द्रिय सुख होता है यह पक्ष हुआ क्योंकि वर्तमान में होने वाला विषय व्यापार से रहित निर्विकल्प समाधि में रत होकर रहने वाले परम मुनिश्वरों को स्वयंवेद्यात्मक सुख की उपलब्धि होती है, यह हेतु हुआ। यह पक्ष और हेतु रूप दो अंगवाला अनुमान हुआ ऐसा जानना चाहिए। आगम में तो जैसा ऊपर “आत्मोपादान सिद्ध” इत्यादि वचन के ऊपर कह आये हैं यह वचन अतीन्द्रिय सुख का वर्णन करने वाला प्रसिद्ध ही है। इसलिये अतीन्द्रिय सुख के विषय में सन्देह नहीं करना चाहिये-यही बात और स्थान पर भी कही है।

यद्देव मनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थं संभवं, निर्विशान्ति निराबाध सर्वाक्षप्रणीनक्षमं।
 सर्वणातीतकालेन यच्च भुक्तं महर्द्धिकं, भाविनो ये च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्टं स्वांतरंजकं।
 अनंतगुणिनं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजं। एकस्मिन् समय भुक्तं तत्सुखं परमेश्वर
 अर्थात् - वर्तमान में जो पुण्याधिकारी देव और मनुष्य हैं वे सब निर्गल रूप से अपनी
 सभी इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले इन्द्रियजन्य और ऋद्धि आदि से प्राप्त हुए सुख भोग
 रहे हैं। और जो सुख पहले भूतकाल में पुण्याधिकारी देव मनुष्यों ने महर्द्धिक सुख भोगा
 है तथा आगे आने वाले पुण्याधिकारी देव और मनुष्य इन्द्रियजन्य स्वादिष्ट और मनोरंजक
 सुख को भोगेंगे उस समस्त सुख से भी अनन्तगुना अतीन्द्रियजन्य अपने स्वभाव से
 उत्पन्न होने वाला सुख परमेश्वर सिद्ध भगवान् को एक समय में होता है। (समयसार)

जं सिव-दंसणि परम-सुहु पावहि झाणु करंतु।

तं सुहु भुवणि वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणंतु।। (116)

आगे शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा के ध्यान करने पर जो सुख
 होता है, उस सुख का तीन दोहा-सूत्रों में वर्णन करते हैं-जो ध्यान करता हुआ निज
 शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यन्त सुख हे प्रभाकर! तू पा सकता है, वह सुख तीन
 लोक में भी परमात्म द्रव्य के सिवाय नहीं है।

जं मुणि लहई अणंत सुहु णिय-अप्पा झायंतु।

तं सुहु इंदु वि णवि लहइ देविहिं कोडि रमंतु।।(117) (प.प्र.)

आगे कहते हैं कि जो सुख आत्मा को ध्यावने से महामुनि पाते हैं वह सुख
 इन्द्रादि देवों को दुर्लभ है अपनी आत्मा को ध्यावता परम तपोधन मुनि जो अनन्त
 सुख पाता है, उस सुख को इन्द्र भी करोड़ देवियों के साथ रमता हुआ भी नहीं पाता।

अप्पा-दंसणि जिणवरहं जं सुहु कोई अणंतु।

तं सुहु लहई विराउ जाणंतउ सिउ संतु।। (118)

आगे ऐसा कहते हैं कि वैरागी मुनि ही निज आत्मा को जानते हुए
 निर्विकल्प सुख को पाते हैं - निज शुद्धात्मा के दर्शन में जो अनन्त अद्भुत सुख
 मुनि-अवस्था में जिनेश्वर देवों को होता है, वह सुख वीतरागभावना को परिणत
 हुआ मुनिराज निज शुद्धात्मास्वभाव को तथा रागादि रहित शांत भाव को
 जानता हुआ पाता है।

केवलज्ञान में खेद या दुःख नहीं

जं केवलत्ति णाणं तं सोक्खं परिणामं च सो येव।

खेदो तस्स ण भणिदो, जम्हा घादी क्षयं जादा।।(60)

(जं केवलत्ति णाणं) जो केवलज्ञान है (तं सोक्खं) वही सुख है (सोचेव परिणमं च) तथा केवलज्ञान सम्बन्धी परिणाम आत्मा का स्वाभाविक परिणमन है। (जम्हा) क्योंकि (घादी खयं जादा) मोहनीय आदि घातिया कर्म नष्ट हो गए (तस्स खेदो ण भणिदो) इसलिये उस अनन्त पदार्थों को जानने वाले केवलज्ञान के भीतर दुःख का कारण खेद नहीं कहा गया है।

इसका विस्तार यह है कि जहाँ ज्ञानावरण दर्शनावरण के उदय से एक साथ पदार्थों को जानने की शक्ति नहीं होती है किन्तु क्रम-क्रम से पदार्थ जानने में आते हैं वहाँ खेद होता है। दोनों दर्शन ज्ञान आवरण के अभाव होने के एक साथ पदार्थों को जानते हुए केवलज्ञान में कोई खेद नहीं है, किन्तु सुख ही है। तैसे ही उन केवली भगवान् के भीतर तीन जगत् और तीन कालवर्ती सर्व पदार्थों को एक समय में जानने को समर्थ अखंड एक रूप प्रत्यक्ष ज्ञानमय स्वरूप से परिणमन करते हुए केवलज्ञान ही परिणाम में रहता है। कोई केवलज्ञान से भिन्न परिणाम नहीं होता है जिससे कि खेद होगा। अथवा परिणाम के सम्बन्ध में दूसरा व्याख्यान करते हैं—एक समय में अनन्त पदार्थों के ज्ञान के परिणाम में भी वीर्यान्तराय के पूर्ण क्षय होने से अनन्तवीर्य के सद्भाव से खेद का कोई कारण नहीं है। वैसे ही शुद्ध आत्म प्रदेशों में समतारस के भाव से परिणमन करने वाले तथा सहज शुद्ध आनन्दमई एक लक्षण को रखने वाली, सुखरस के आस्वादन में रमने वाले आत्मा से अभिन्न निराकुलता के होते हुए खेद नहीं होता है। ज्ञान और सुख संज्ञा, लक्षण, प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी निश्चय से अभेदरूप से परिणमन करता हुआ केवलज्ञान ही सुख कहा जाता है। इससे यह ठहरा कि केवलज्ञान से भिन्न सुख नहीं है, इस कारण से ही केवलज्ञान में खेद का होना सम्भव नहीं है।

समीक्षा—जो आत्मा के अनुजीवी गुण को घातते हैं उसे घाति कर्म कहते हैं। घातिकर्म के कारण ही जीव के सर्व विशिष्ट अनन्त चतुष्टय गुण तथा अनन्त ज्ञान,

अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य गुण विपरीत हो जाते हैं, मलिन हो जाते हैं या कुंठित हो जाते हैं। परन्तु घातिकर्म के सम्पूर्ण घात से अनंत चतुष्टय पूर्णरूप से प्रगत हो जाते हैं। खेद उत्पादक घाति कर्म के अभाव से खेद उत्पन्न होना असम्भव है क्योंकि कारण के बिना कार्य होना असम्भव है। यदि कारण के बिना कार्य होने लगे तब विश्व में अनेक अनर्थ, अनेक अव्यवस्थायें एवं असंभव कार्य भी होने लगेंगे। यहाँ पर प्रश्न होना स्वाभाविक है कि घाति कर्म का नाश होने पर भी 13वें 14वें गुणस्थान में अघातिकर्म विद्यमान होने से खेद होना स्वाभाविक है? इन दोनों में कुछ जीवों के साता वेदनीय का उदय रहता है और कुछ जीवों के असाता वेदनीय का उदय रहता है। परन्तु वेदनीय कर्म तब सुख एवं दुःख देने में समर्थ होता है जब मोहनीय कर्म का सद्भाव हो, मोहनीय कर्म के अभाव होने पर वेदनीय कर्म फल देने में असमर्थ हो जाता है। जिस प्रकार सड़ा हुआ, गला हुआ, जला हुआ या योनिभूत-शक्ति से रहित बीज अंकुरित होने में असमर्थ है और उसी प्रकार घाति कर्म से रहित अघाति कर्म दुःख उत्पन्न कराने में असमर्थ है। कुछ केवलियों में जो असाता कर्म का उदय होता वह साता रूप परिणमन हो जाता है। इसलिये असाता कर्म वहाँ पर दुःख देने में असमर्थ है। वहाँ साता जनित आकुलोत्पादक इन्द्रिय जनित सुख भी नहीं है, क्योंकि स्वाभाविक अनन्त-सुख भोगने वाले केवली के साता भी इन्द्रिय जनित सुख देने में अकिञ्चित्कर है। जैसे मध्याह्न के सूर्य प्रकाश में नक्षत्रों का प्रकाश दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार आध्यात्मिक अनन्त सुख के सामने साता जनित सुख निष्प्रभ है।

णट्टा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।

तेण दु सादासादजसहदुक्खं णत्थि इंदियजं।।(273) गो.क.

केवली भगवान् के घातिया कर्म के नाश हो जाने से मोहनीय के भेद से जो राग द्वेष वे नष्ट हो गये। और ज्ञानावरण का क्षय हो जाने से, ज्ञानावरण के क्षयोपशम से जायमान इन्द्रिय जन्य ज्ञान भी नष्ट हो गया। इस कारण केवली के साता तथा असाताजन्य इन्द्रिय विषयक सुख-दुःख लेश मात्र भी नहीं होते। क्योंकि सातादि वेदनीय कर्म मोहनीय कर्म की सहायता से ही सुख-दुःख देता हुआ जीव के गुण को घातता है, यह बात पहले भी कह आए हैं। अतः उस सहायक का अभाव हो जाने से वह जली जेवडीवत् (रस्सीवत्) अपना कुछ कार्य नहीं कर सकता।

अब वेदनीय कर्म केवली के इन्द्रिय जन्य सुख-दुःख का कारण नहीं है, इस बात को (स्पष्ट) सिद्ध करने के लिये युक्ति कहते हैं-

समयद्विदगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।

तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि।।(274)

जिस कारण केवली भगवान् के एक साता वेदनीय का ही बंध भी एक समय की स्थिति वाला ही होता है, इस प्रकार वह उदय स्वरूप ही है। और इसी कारण असाता का उदय भी साता स्वरूप से ही परिणमता है। क्योंकि असातावेदनीय सहाय रहित होने से तथा बहुत हीन होने से मीठा जल में खारे जल की बूंद (एक बूंद) की तरह अपना कुछ कार्य नहीं कर सकता।

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।

तेणासादणिमित्ता परीसहा जिनवरे णत्थि।।(275)

इस पूर्वगाथा कथित कारण से केवली के हमेशा साता वेदनीय का ही उदय रहता है। इसी कारण असाता के निमित्त से होने वाली क्षुधा आदिक जो 11 परीषह हैं वे जिनवर देव के कार्य रूप नहीं हुआ करते हैं।

संसारविषयातीतं सिद्धानामव्ययं सुखम्।

अव्याबाधमिति प्रोक्तं परमं परमर्षिभिः।।(23) (रा.वा.)

परम ऋषियों ने सिद्धों का सुख संसार के विषयों से अतीत, अव्यय और अव्याबाध कहा है।

स्यादेतदसशरीरस्य जन्तोर्नष्टाष्ट कर्मणः।

कथं भवति मुक्तस्य सुखमित्यत्र में श्रृणु।।(24)

लोके चतुर्ष्विहार्थेषु सुखशब्दः प्रयुज्यते।

विषये वेदनाभावे विपाके मोक्ष एव च।।(25)

सुखो वह्निः सुखो वायुर्विष्येष्विह कथ्यते।

दुःखाभावे च पुरुषः सुखितोऽस्मीति भाषते।।(26)

पुण्यकर्म विपाकाच्च सुखमिष्टेन्द्रियार्थजम्।

कर्मक्लेशविमोक्षाच्च मोक्षे सुखमनुत्तमम्।।(27)

“अशरीरी, नष्ट-अष्ट कर्मा, मुक्त जीवों के कैसे, क्या सुख होता है? इसका समाधान सुनिये-इस लोक में चार अर्थों में सुख शब्द का प्रयोग होता है। विषय वेदना का अभाव, विपाक, कर्मफल और मोक्ष। ‘अग्नि सुखकर है’, ‘वायु सुखकारी है’ इत्यादिक में सुख शब्द विषयार्थक है। रोगादि दुःखों के अभाव में पुरुष ‘मैं सुखी हूँ’ ऐसा समझता है वह वेदनाभाव सुख है, पुण्य कर्म के विपाक से जो इष्ट इन्द्रिय विषयों से सुखानुभूति होती है वह विपाकज सुख है और कर्म और क्लेश के विमोक्ष होने से मोक्ष का अनुपम सुख प्राप्त होता है-वह मोक्ष सुख है।

सुषुप्तावस्थया तुल्याँ केचिदिच्छन्ति निर्वृतिम्।

यद्युक्तं क्रियावत्त्वात् सुखानुशयतस्तथा॥(28)

श्रमक्लममदव्याधिमदनेभ्यश्च संभवात्।

मोहोत्पत्तिर्विपाकाच्च दर्शनघ्नस्य कर्मणः॥(29)

कोई मोक्ष सुख को सुप्तावस्था के समान मानते हैं, किन्तु सुप्तावस्था के समान सुख मानना ठीक नहीं क्योंकि मोक्ष सुख में सुखानुभव रूप क्रिया होती रहती है और सुप्तावस्था तो दर्शनावरणीय कर्म के उदय से श्रम, क्लम, मद, भय, व्याधि, काम आदि निमित्तों से उत्पन्न होती है और मोहोत्पत्ति का विकार है।

लोको तत्सदृशो ह्यर्थ कृत्स्नेऽप्यन्यो न विद्यते।

उपमीयेत तद्येन तस्मान्निरुपमं स्मृतम्॥(30)

लिङ्गप्रसिद्धेः प्रामाण्यमनुमानोपमानयोः।

अलिङ्ग चाऽप्रसिद्धं च तत्तेनानुपमं स्मृतम्॥(31)

सारे संसार में कोई ऐसा पदार्थ ही नहीं है जिससे उसे मोक्ष सुख की उपमा दी जाय। अतः मोक्ष सुख परम निरुपम है। लिंग और प्रसिद्धि में अनुमान और उपमान में प्रामाण्य उत्पन्न होता है परन्तु यह सिद्धों का सुख न तो लिङ्ग से अनुमानित होता है और न किसी पदार्थ से उपमित होता है अतः यह सिद्धों का सुख अलिङ्ग एवं अप्रसिद्ध होने से निरुपम कहा है।

प्रत्यक्षं तद्भगवतामर्हतां तैश्च भाषितम्।

गृह्येतेऽस्तीत्यतः प्राज्ञैर्न छद्मस्थपरीक्षया॥(32)

वह सिद्धों का सुख भगवान् अरहन्त के प्रत्यक्ष है और सर्वज्ञ के द्वारा कथित है अतः हम छद्मस्थ जन उन्हीं के वचन प्रामाण्य से उनके अस्तित्व को जानते हैं उनका अखण्ड स्वरूप सुख अल्पज्ञानी की परीक्षा का सर्वथा विषय नहीं हो सकता है।

निराकुलं सुखं जीवशक्तिर्द्रव्योपजीविनी।

तद्विरुद्धाकुलत्वं वै शक्तिस्तद्घातिकर्मणः॥(327) श्री. पंचा.

आकुलता रहित जीव की एक शक्ति का नाम सुख है वह सुख नाम की शक्ति द्रव्योपजीवी है। उसी की विरोधिनी आकुलता है, और वह व्याकुलता घातिया कर्मों की शक्ति है।

तत्राभिव्यज्जको भावो वाच्यं दुःखमनीहितम्।

घातिकर्मोदयाघाताज्जीवदेशवधात्मकम्॥(339)

घातिया कर्मों के उदय के आघात से आत्मा के प्रदेशों का घात करने वाला जो कर्म है वही दुःख का सूचक है, अर्थात् घाति कर्म का उदय ही दुःखावह है।

अव्याप्तिः कार्मणावस्थावस्थितेषु तथा सति।

देहेन्द्रियादिनोकर्मशून्यस्थ तस्य दर्शनात्॥(343)

यदि शारीरिक और इन्द्रियजन्य ही दुःख माना जावे, और कोई दुःख (कर्मजन्य) न माना जावे तो जो जीव विग्रह गति में हैं, जहाँ केवल कार्मण अवस्था है; शरीर, इन्द्रियादि (के कारण) नो कर्म नहीं हैं, वहाँ दुःख है या नहीं?

अस्ति चेत्कार्मणो देहस्तत्र कर्मकदम्बकः।

दुःखं तद्धे तुरित्यस्तु सिद्धं दुःखमनीहितम्॥(344)

यदि यह कहा जाय कि विग्रहगति में भी कर्म का समूह रूप कार्मण शरीर है। इसलिये शरीरजन्य दुःख वहाँ भी है? तो इस कथन से कर्मजन्य दुःख ही सिद्ध हुआ। इसलिए कर्म ही दुःख देने वाला है यह बात भली भाँति सिद्ध हो गयी।

असिद्धा न तथा शक्तिः कर्मणः फलदर्शनात्।

अन्यथाऽत्मतया शक्तर्वाधकं कर्म तत्कथम्॥(328)

सुख गुण के अभाव में होने वाली जो आकुलता है, वह घातिया कर्मों की शक्ति है और यह सब असिद्ध नहीं है, क्योंकि कर्मों का फल दिखता है। यदि वह कर्म शक्ति नहीं है तो आत्मा की शक्ति का बाधक कर्म कैसे होता है?

नयात्सिद्धं ततो दुःखं दुःखं सर्वदेशप्रकम्पवत्।

आत्मनः कर्मबद्धस्य यावत्कर्मरसोदयात्॥(329)

इसलिये यह बात न्याय से सिद्ध हो चुकी है कि कर्म के बंधे हुए आत्मा के जब तक कर्मों का उदय हो रहा है तब तक उसके सम्पूर्ण प्रदेशों में कम्प (कंपाने वाला) करने वाला दुःख है।

देशतोस्त्यत्र दृष्टान्तो वारिधिर्वायुना हतः।

व्याकुलोऽव्याकुलः स्वस्थः स्वाधिकारप्रमत्तवान्॥(330)

यहाँ पर एक देश दृष्टान्त भी है - वायु से ताड़ित (प्रेरित) समुद्र व्याकुल होता है। जब वायु से रहित स्वाधिकारी समुद्र है तब व्याकुलता रहित है, स्वस्थ है।

अपि सिद्धं सुखं नाम यदनाकुललक्षणम्।

सिद्धत्वादपि नोकर्मविप्रमुक्तो चिदात्मनः॥(345)

तथा यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि सुख वही है जो अनाकुल लक्षण वाला है और वह निराकुल सुख इस जीवात्मा के कर्म और नोकर्म के छूट जाने पर (सिद्धावस्था में) होता है। (यहाँ पर नोकर्म शब्द में कर्म और नोकर्म दोनों का ग्रहण है।)

केवलज्ञान सुख सम्पन्न है

णाणं अत्थतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।

णट्टमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं हि तं लद्धं॥(61)

(णाणं) केवलज्ञान (अत्थंतगदं) सर्वज्ञेयों के अन्त को प्राप्त हो गया है अर्थात् केवलज्ञान ने सब जान लिया (दिट्ठी) केवलदर्शन (लोयालोगेसु वित्थडा) लोक और अलोक में फैल गया (सव्वअणिट्ठं) सर्व अनिष्ट अर्थात् अज्ञान और दुःख (णट्ट) नष्ट हो गया। (पुण) तथा (जं तु इट्ठं तं तु लद्धं) जो कुछ इष्ट है अर्थात् पूर्ण ज्ञान तथा सुख सो सब प्राप्त हो गया।

इसका विस्तार यह है कि आत्मा के स्वभाव के घात का अभाव है सो सुख है। आत्मा का स्वभाव केवलज्ञान और केवलदर्शन है। इनके घातक केवल ज्ञानावरण तथा केवल दर्शनावरण हैं सो इन दोनों आवरणों का अभाव केवलज्ञानियों के होता

है, इसलिये स्वभाव के घात के अभाव से होने वाला सुख होता है। क्योंकि परमानन्दमई एक लक्षण रूप सुख से उल्टे आकुलता से पैदा करने वाले सर्व-अनिष्ट अर्थात् दुःख और अज्ञान नष्ट हो गये तथा पूर्व में कहे हुए लक्षण को रखने वाले सुख के साथ अविनाभूत-अवश्य होने वाले सर्व पदार्थों को एक समय में प्रकाशने वाला इष्ट ज्ञान प्राप्त हो गया, इसलिये यह माना जाता है कि केवलियों के ज्ञान ही सुख है ऐसा अभिप्राय है।

सुख का कारण स्वभाव के प्रतिघात का अभाव है। आत्मा का स्वभाव वास्तव में दर्शन ज्ञान है। (दर्शन) लोक-अलोक में फैला होने से (दर्शनज्ञान के) स्वच्छन्दतापूर्वक (स्वतन्त्रतापूर्वक) विकसितपना होने के कारण से प्रतिघात का अभाव है। इसलिये स्वभाव से प्रतिघात का अभाव जिसका कारण है ऐसा सुख अभेद विवक्षा में केवलज्ञान का स्वरूप है।

प्रकारान्तर से केवलज्ञान की सुखस्वरूपता बतलाते हैं:-

केवलज्ञान सुखस्वरूप ही है क्योंकि सर्व अनिष्ट का नाश हो चुका है और सर्व इष्ट का लाभ हो चुका है। क्योंकि वास्तव में केवलअवस्था में सुख प्राप्ति के विपक्षभूत दुःख के साधनपने को प्राप्त अज्ञान सम्पूर्ण ही नाश हो जाता है और सुख का साधन भूत परिपूर्ण ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। इसलिये केवलज्ञान ही सुख स्वरूप है। अधिक विस्तार से बस है।

समीक्षा : इस गाथा में आचार्य श्री ने अभेद दृष्टि से ज्ञान एवं सुख को एकरूप में ग्रहण किया है। भले भेद दृष्टि से विचार करने पर ज्ञान एवं सुख अलग-अलग हैं। क्योंकि ज्ञान तो स्व-पर को प्रकाशित करता है परन्तु सुख तो निराकुल रूप आनन्दानुभूति है। तथापि आनन्द का वेदन चैतन्य गुण (ज्ञान) के माध्यम से होता है। इसलिये अनुभव करने वाला ज्ञान गुण है। इसलिये यहाँ पर केवलज्ञान के सुख का वर्णन किया गया है। कुन्दकुन्द देव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है-

कम्ममलविष्णुमुक्को उड्डं लोगस्स अंतमधिगंता।

सो सव्वणाणदरिसी लहदि सुहमणिंदियमणंतं।।(28)

(कर्ममल विप्रमुक्तः) कर्म मल से मुक्त आत्मा (ऊर्ध्व) ऊपर (लोकस्य अन्तम्) लोक के अन्त को (अधिगम्य) प्राप्त करके (सः सर्वज्ञदर्शी) वह सर्वज्ञ-

सर्वदर्शी (अनन्तम्) अनन्त (अनिन्द्रियम्) अनिन्द्रिय (सुखम्) सुख का (लभते) अनुभव करता है।

जादो सयं स चेदा सव्वण्हू सर्वलोगदरसी य।

पप्पोदि सुहमणंतं अव्याबाधं सगममुत्तं।। (29)

वास्तव में ज्ञान, दर्शन और सुख जिसका स्वभाव है ऐसा आत्मा संसार दशा में अनादि कर्म क्लेश द्वारा आत्मशक्ति संकुचित की गई होने से, पर द्रव्य के सम्पर्क द्वारा (इन्द्रियादि के सम्बन्ध द्वारा) क्रमशः कुछ-कुछ जानता है और देखता है तथा पराश्रित, मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्ध वाला, सव्याबाध (बाधासहित) और सान्त सुख का अनुभव करता है किन्तु जब उसके कर्म क्लेश समस्त विनाश को प्राप्त होते हैं तब, आत्मशक्ति अनर्गल (निरंकुश) और असंकुचित होने से वह असहाय रूप से स्वयमेव युगपद् सब (सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव) जानता है और देखता है तथा स्वाश्रित मूर्त (इन्द्रियादि) के साथ सम्बन्ध रहित, अव्याबाध और अनन्त सुख का अनुभव करता है। इसलिए सब स्वयमेव जानने और देखने वाले तथा स्वकीय सुख का अनुभव करने वाले सिद्ध को पर से (कुछ भी) प्रयोजन नहीं है।

सिद्धं दुःखत्वमस्योच्चैर्व्याकुलत्वोपलब्धिः।

ज्ञातशेषार्थसद्भावे तदबुभुत्सादिदर्शनात्।।(279)

जो पदार्थ ज्ञान का विषय नहीं होता है तथा एक ही पदार्थ का जो अंश नहीं जाना जाता है सो सब के जानने के लिये वह ज्ञान उत्कण्ठित तथा अधीर रहता है।

इसलिए वह व्याकुलता पूर्ण है। व्याकुलता होने से ही वह ज्ञान (इन्द्रियज) दुःख रूप है।

केवलियों के ही पारमार्थिक सुख है, ऐसी श्रद्धा करो-

णो सहहंति सोक्खं सुहेसु परमं त्ति विगदघादीणं।

सुणिदूण ते अभव्याभव्वा वा तं पडिच्छंति।।(62)

(विगदघादीणं) घातिया कर्मों से रहित केवली भगवानों के (सुहेसु परमंति)

सुखों के बीच में उत्कृष्ट जो (सोक्खं) विकार-रहित परम आल्हादमई एक सुख है उसको (सुणिरुण) 'जादं सयं समतं' इत्यादि पहले कही हुई तीन गाथाओं के कथन प्रमाण सुनकर के भी जानकर के भी (णहि सदहंति) निश्चय से नहीं श्रद्धान करते हैं नहीं मानते हैं (ते अभव्या) वे अभव्य जीव हैं अथवा वे सर्वथा अभव्य नहीं है किन्तु दूरभव्य है जिसको वर्तमान काल में सम्यक्त्व रूप भव्यत्व शक्ति की व्यक्ति का अभाव है (वा) तथा (भव्या) जो भव्य जीव हैं अर्थात् जो सम्यक्दर्शन रूप भव्यत्व शक्ति की प्रगटता में परिणमन कर रहे हैं। जिनके भव्यत्वशक्ति की व्यक्ति होने से सम्यग्दर्शन प्रगट हो गया है, वे (तं पडिच्छंति) उस अनन्त सुख को वर्तमान में श्रद्धान करते हैं तथा मानते हैं और जिनके सम्यक्त्व रूप भव्यत्वशक्ति की प्रकटता की परिणति भविष्यकाल में होगी, ऐसे दूरभव्य है वे आगे श्रद्धान करेंगे।

यहाँ यह भाव है कि जैसे किसी चोर को कोतवाल मारने के लिये ले जाता है तब चोर मरण को लाचारी से भोग लेता है तैसे यद्यपि सम्यक्दृष्टियों को इन्द्रिय सुख इष्ट नहीं है तथापि कोतवाल के समान चारित्र मोहनीय के उदय से मोहित होता हुआ सराग सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागरूप निज आत्मा से उत्पन्न सच्चे सुख को नहीं भोगता हुआ इन्द्रिय सुख को अपनी निन्दा गर्हा आदि करता हुआ त्यागबुद्धि से भोगता है। तथा जो वीतराग सम्यग्दृष्टि शुद्धोपयोगी है, उनको विकार रहित शुद्ध आत्मा के सुख से हटता ही उसी तरह दुःख रूप झलकता है जिस तरह मछलियों को भूमिपर आना तथा प्राणी को अग्नि में घुसना दुःख रूप भासता है। ऐसा ही है -

समसुखशीलितमसां च्यवनमपि द्वेषमेति किमु कामाः।

स्थलमपि दहति झषणां किमङ्गं पुनरङ्गमङ्गरा।।

भाव यह है - समतामई सुखों को भोगने वाले पुरुषों को समता से गिरना ही जब बुरा लगता है तब भोगों में पड़ना कैसे दुःख रूप न लगेगा? जब मछलियों को जमीन ही दाह पैदा करती है, हे आत्मन्! तब अग्नि के अंगारे दाह क्यों न करेंगे?

समीक्षा : जीव जब अनादि काल से मोह से आवृत होने के कारण वह वस्तु स्वरूप के विपरीत ही श्रद्धान करता है। वह सत् को असत्य रूप, सुख को असुख रूप, धर्म को अधर्म रूप श्रद्धान करता है इसलिये वह कूपमण्डूक के समान इन्द्रिय जनित सुख को ही सुख मानकर बैठ जाता है। घातिकर्म के रहित जो आत्मोत्थ

अतीन्द्रिय सुख है उसे वह न जानता है न श्रद्धान करता है।

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।

मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥(7) (इष्टोपदेश)

जिस तरह मादक कोदो खाने से उन्मत्त (पागल) हुआ पुरुष पदार्थों का यथार्थ स्वरूप नहीं जानता उसी प्रकार मोहनीय कर्म के द्वारा आच्छादित ज्ञान भी पदार्थों के वास्तविक स्वरूप को नहीं जान सकता है।

परन्तु जो भव्य है वह आगे गुरु उपदेश आदि अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग कारण को प्राप्त करके सम्यग्दृष्टि बनता है तब विश्वास करता है कि आत्मा में ही अव्याबाध अनन्त सुख है जो घाति कर्म के अभाव से जीव में प्रकट होता है। यथा-

स्वसंवेदनसुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यन्तसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥(21) इष्टोपदेश

यह आत्मा स्व-संवेदन प्रत्यक्ष का विषय है, कर्मोदय से प्राप्त अपने छोटे-मोटे शरीर के बराबर है। अविनाशी है-द्रव्यदृष्टि से नित्य है। उसका कभी विनाश नहीं होता है, अत्यन्त सुख-स्वरूप है-आत्मोत्थ अनन्त सुख स्वभाव वाला है। और लोक अलोक का साक्षात् करने वाला है।

परन्तु जो अभव्य है वह घाति कर्म के अभाव से आत्मोत्थ सुख केवली को होता है यह नहीं मानता है। क्योंकि अभव्य कभी दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम करके सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता है जिसके कारण वह सतत मिथ्यादृष्टि रहता है। इस मिथ्यात्व के कारण ही वह केवली को अनन्त सुख होता है यह नहीं मानता है, क्योंकि मिथ्यात्व का कार्य विपरीत श्रद्धान करना है। यथा-

मिच्छतं वेदंतो जीवो विवरीयदंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो॥(17)

उदय में मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभव करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक धर्म अर्थात् वस्तु स्वभाव को अथवा मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता। इसमें दूष्टान्त देते हैं-जैसे पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे दूध आदि रस को पसन्द नहीं करता उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रूचता।

अपने जीवन का 100 प्र. उत्तरदायित्व लेना

अब मैं अपने जीवन में होने वाली हर चीज के लिए 100 प्रतिशत जिम्मेदारी ले रहा हूँ।

अब मुझे पता चल रहा है कि मेरे साथ जो कुछ भी होता है, उसे मैं ही बनाता हूँ, बढ़ावा देता हूँ और होने देता हूँ।

मेरे साथ हर दिन जो कुछ भी हो रहा है, उसका कारण मैं ही हूँ।

अपने जीवन को और बेहतर बनाने, इसे सही करने और अपनी इच्छानुसार परिणाम पाने की पूरी शक्ति मुझमें है।

अभी मैं जो भी अनुभव कर रहा हूँ, वह मेरे द्वारा मेरे जीवन में पूर्व में घटित घटनाओं के प्रति मेरी प्रतिक्रिया का ही परिणाम है।

विगत में मैंने जो कुछ भी चुना, आज उसी का फल मुझे मिल रहा है।

बेहतर परिणाम के लिए मैं अपने विचारों, कल्पनाओं और आचरण में परिवर्तन कर रहा हूँ।

मैं लगातार नए और अच्छे विचारों को सोच रहा हूँ, ताकि उससे मुझे नए और बेहतर परिणाम मिलें।

मैं सुरक्षित रूप से इस विश्वास के साथ जीवन जी रहा हूँ कि सबकुछ संभव है।

मेरा विश्वास है कि मैं जो चाहता हूँ, वह संभव है; क्योंकि इसमें सभी संबंधित पक्षों की भलाई होती है।

मैं अच्छे की उम्मीद कर रहा हूँ और मुझे हमेशा वही मिलता है जिसकी मैं उम्मीद करता हूँ।

मेरे मन में सकारात्मक अपेक्षाएँ होती हैं और मुझे बिल्कुल वही प्राप्त होता है, जो मैं चाहता हूँ।

मैं जो भी करता हूँ, पूरे उत्साह के साथ करता हूँ और मेरे मन में यह आशावादी विश्वास होता है कि 'आपको विश्वास है'

मैं आनंदपूर्वक अपनी जीत को महसूस करता हूँ, क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि मैं अपने लक्ष्य की प्राप्ति की ओर बढ़ रहा हूँ।

मैं शीशे में देखता हूँ और आनंदपूर्वक यह घोषणा करता हूँ कि वास्तव में मेरे सपने साकार हो रहे हैं।

मैंने अपने आप पर विश्वास करने का फैसला किया है।

अब मैं प्रसन्न भाव से अपने सपनों के जीवन का निर्माण कर रहा हूँ।

मैंने यह विश्वास करने का फैसला किया है कि मैं सफलता के लिए योग्य एवं उपयुक्त हूँ।

अपनी इच्छा के अनुरूप परिणाम पाने के लिए मैं पूरे विश्वास के साथ अपनी योग्यताओं, आंतरिक संसाधनों, प्रतिभा और कौशल का उपयोग करता हूँ।

अब मैं सफलतापूर्वक कुछ भी और सबकुछ, जो मैं करना चाहता हूँ, करता हूँ।

मेरा विश्वास है कि कुछ भी संभव है और मैं अपने क्षेत्र में सबसे ज्यादा प्रतिभा-सम्पन्न एवं श्रेष्ठ व्यक्ति बन गया हूँ।

मैं 'काम कर रहा हूँ' यह संभव है, इसलिए मैं पूरे विश्वास के साथ वह सबकुछ कर रहा हूँ, जो जरूरी है और मैं अपने हर लक्ष्य को प्राप्त करता हूँ।

मैं पूरे विश्वास के साथ इस वाक्यांश 'मैं कर सकता हूँ।' का प्रयोग करता हूँ। इस सकारात्मक दृष्टिकोण के साथ मैं जो कुछ भी करना चाहूँ, करने के लिए सशक्त हूँ।

मैं पूरे विश्वास के साथ खुद पर भरोसा करता हूँ। यदि कोई और न भी करे तो भी मैं हमेशा ही एक विजेता हूँ।

मैं अपने काम से इतना प्यार करता हूँ और उसमें मुझे इतना आनंद आता है कि मैं हर दिन सुबह उठकर अपना काम शुरू करने को उत्सुक रहता हूँ।

मैं अपने दिल की सुनता हूँ और मुझे खुशी का अनुभव होता है; क्योंकि मैं वही कर रहा होता हूँ जिसे करने के लिए मेरा जन्म हुआ है।

मैं पहले ही सफल हूँ, क्योंकि मैं जो करता हूँ, उसकी मन की गहराई से परवाह करता हूँ और उसमें पूरी तरह आनंद लेता हूँ।

मैं पहले ही सफल हूँ, क्योंकि अपनी खुशी का अनुसरण करता हूँ और खुशी-खुशी तथा आवेश एवं धैर्य के साथ वही करता हूँ, जिसे करना मुझे पसन्द है।

अपनी मूल विलक्षणता पर केन्द्रित होना

मैं हमेशा अपना ध्यान अपनी मूल विलक्षणता पर केन्द्रित रखता हूँ और अन्य सभी चीजें अपनी टीम के दूसरे लोगों को सौंप देता हूँ।

मैं अपने व्यस्तता भरे काम दूसरों को सौंपकर अपने लिए खाली समय निकलता हूँ, ताकि मैं अधिक उत्पादक बन सकूँ और जीवन का आनन्द उठाने के लिए मेरे पास और ज्यादा समय हो।

पॉजेटिव व पॉवर थिंकिंग से परे-

शुभ से शुद्ध-बुद्ध-आनन्द बनूँ

(सांसारिक अभ्युदय से परे निःश्रेयस प्राप्ति हेतु शुद्ध आध्यात्मिक भाव)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : (1) मन रे! तू काहे.../2. सायोनारा....)

आत्मन्! तू शुभ से शुद्ध भाव करऽऽऽ

इससे ही होंगे तेरे सभी विकास, स्वर्ग से ले मोक्ष तकऽऽऽ (ध्रुव)

अशुभ त्याग से होगा शुभ भाव, जिससे परे होगा शुद्ध भावऽऽऽ

मिथ्यात्व-कुज्ञान-रागद्वेषादि कुभाव, इसके त्याग से करो शुभ भावऽऽऽ

शुद्ध भाव हेतु शुभ भावऽऽऽ(1)

आत्मविश्वासयुक्त आत्मज्ञानसहित, करो भौतिक से ले आध्यात्मिक कामऽऽऽ

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-दीन-हीन-दम्भ, संकीर्ण कट्टर वैर विरोध निन्दा त्यागऽऽऽ

इससे बढ़ेगा तीव्र शुभ भावऽऽऽ (2)

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थ शुभभाव, दयादानसेवा व परोपकारऽऽऽ

सहज सरल क्षमा मृदुता नम्रता, गुणग्रहण व दोषपरिहरणऽऽऽ

उदारसहिष्णुताशान्तिदम/(यम)ऽऽऽ(3)

मनवचनकायकृतकारितअनुमत से, विश्व से आकर्षित होगी कर्मवर्गणाऽऽऽ

वे अनन्तानन्तकर्मपरमाणुपुण्यरूप में, तेरे असंख्य आत्मप्रदेश में होंगे बन्धऽऽऽ

जिससे होगा विकास निर्बाधऽऽऽ(4)

पुण्यफल से प्राप्त अभ्युदय से, न करो अहंकार ममकार भावऽऽऽ
ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धिवर्चस्व परे, आत्मविशुद्धि हेतु ज्ञानवैराग्यऽऽऽ

इससे बढ़ेंगे आत्मा के गुणगणऽऽऽ (5)

भौतिक वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक, मोटिवेशनल थिंकर व स्पीकरऽऽऽ

इस हेतु शोध-बोध-प्रयोगरत, किन्तु पूर्ण न जानते परम सत्यऽऽऽ

“शुद्ध भाव से मोक्ष” से तो अनभिज्ञ (6)

मोक्ष हेतु करो शुभभाव-व्यवहार, जिससे आत्मिक शक्ति होगी प्रबलऽऽऽ

इस हेतु ही करो ध्यान-अध्ययन, निस्पृह निरालम्ब निर्मलऽऽऽ

निश्चल निच्छल निर्द्वन्द्व ऽऽऽ (7)

प्रबल होगी आत्मानुभूति व शान्ति, श्रद्धा-प्रज्ञा व आत्मशक्तिऽऽऽ

अन्त में बनोगे शुद्ध-बुद्ध-परमात्मा, इससे अनभिज्ञ वैज्ञानिक थिंकर स्पीकरऽऽऽ

‘कनक’ बनो शुद्ध-बुद्ध-आनन्द ऽऽऽ (8)

नन्दौड़, दि. 2.12.2019, रात्रि 8.20

(यह कविता मुनिश्री सुविज्ञसागर के कारण बनी।)

सन्दर्भ :

जब वास्तव में योगी, दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय का विपाक पुद्गल कर्म होने से उस विपाक को अपने से भिन्न ऐसे अचेतन कर्मों में संकुचित करे, तदनुसार परिणति से उपयोग को व्यावृत्त करके उस विपाक के अनुरूप परिणमन में से उपयोग का निवर्तन करके मोही, रागी और द्वेषी न होने वाले ऐसे उस उपयोग का अत्यन्त शुद्ध आत्मा में ही निष्कंपरूप से लीन करता है, तब उस योगी को जो कि अपने निष्क्रिय चैतन्यरूप स्वरूप में विश्रांत है, वचन-मन काय को नहीं भाता अनुभव करता और स्वकर्मों में व्यापार नहीं कराता उसके सकल शुभाशुभ कर्मरूप ईंधन को जलाने में समर्थ होने से अग्निसमान ऐसा, परमपुरुषार्थ की सिद्धि का उपायभूत ध्यान प्रगट होता है।

यहाँ पर जो संवरपूर्वक निर्जरा है, उसी को ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि वही मोक्ष का कारण है और जो अज्ञानियों के निर्जरा होती है वह तो गजस्नान (हाथी के स्नान) के समान निष्फल है। क्योंकि, अज्ञानी जीव थोड़े कर्मों की तो निर्जरा करता है

और बहुत से कर्मों को बाँधता है। इस कारण अज्ञानियों की सविपाक निर्जरा का यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये तथा जो सराग सम्यग्दृष्टियों के निर्जरा हैं वह यद्यपि अशुभ कर्मों का नाश करती है और शुभ कर्मों का नाश नहीं करती तथापि संसार की स्थिति को अल्प करती है अर्थात् जीव के संसार परिभ्रमण को घटाती है। उसी भव में तीर्थंकर प्रकृति आदि विशिष्ट पुण्यबंध का कारण हो जाती है और परंपरा से मोक्ष की कारणभूत है और जो वीतराग सम्यग्दृष्टि है उनके पुण्य तथा पाप दोनों का नाश होने पर उसी भव में वह सविपाक निर्जरा मोक्ष की कारण हो जाती है सो ही श्रीमान् कुन्दकुन्द आचार्य देव ने कहा है-

जं अण्णाणी कम्मं खवेदि भवसदसहस्सकोडीहिं।

तं णाणी तिहि गुत्तो खवेदि उस्सासमित्तेण।।(1)

अज्ञानी जिन कर्मों को एक लाख करोड़ भवों में नाश करता है उन्हीं कर्मों को ज्ञानी जीव मनो-वचन-काय की गुप्ति का धारक होकर एक उच्छ्वास मात्र में नष्ट कर देता है।

शंका-जो सम्यग्दृष्टि है उनके वीतराग यह विशेषण किसलिए लगाया गया है?

समाधान-अंधकार में दो पुरुष हैं, एक हाथ में दीपक लिए हुए हैं दूसरा बिना दीपक है। वह दीपक रहित पुरुष न तो कूप के पतन को जानता है न सर्प आदि को जानता है इसलिए वह अंधकार में कुएँ आदि में अज्ञान से गिर जावे तो दोष नहीं है तथा जिसके हाथ में दीपक है वह मनुष्य यदि कूपपतन आदि से नष्ट हो जाये तो उसके हाथ में जो दीपक था उसका कोई फल नहीं हुआ और जो उस अंधकार में दीपक के प्रकाश से कूपपतन आदि को छोड़ता है उसके दीपक के फल है। इसी दृष्टांत के अनुसार कोई मनुष्य तो 'राग आदि हेय है मेरे नहीं है' इस प्रकार के भेदविज्ञान को नहीं जानता है वह तो कर्मों से ही बंधता है और दूसरा मनुष्य भेद विज्ञान के उत्पन्न होने पर भी जितने अंशों से रागादिक का अनुभव करता है उतने अंशों से वह भेदविज्ञानी पुरुष भी कर्म बाँधता ही है और उसके रागादि भेदविज्ञान का फल भी नहीं है और जो जीव राग आदि के भेद विज्ञान होने पर राग आदि का त्याग करता है उसके भेदविज्ञान का फल है यह जानना चाहिये। सो ही कहा है - "नेत्रों से देखने

का फल सर्प आदि के दोषों मार्ग से बचना ही है, और जो नेत्र द्वारा सर्प आदि को देखकर भी सर्प के बिल में पैर धरता है उसके नेत्रों का होना ही व्यर्थ है।”

मोक्ष की परिभाषा एवं भेद

सव्वस्स कम्मणो जो खयहेदू अप्पणो हु परिणामो।

णेयो स भाव मोक्खो दव्वविमुक्खो य कम्मपुहभावो।।(37) द्र.सं.

That modification of the soul which is the cause of the destruction of all Karmas, is surely to be known as Bhavamoksha and (actual) separation of the Karmas (is) Dravya-moksha.

सब कर्मों के नाश का कारण जो आत्मा का परिणाम है उसको भावमोक्ष जानना चाहिये और कर्मों की जो आत्मा से सर्वथा भिन्नता है वह द्रव्य मोक्ष है।

अभेद रत्नत्रय रूप स्वशुद्ध परिणाम या परमयथाख्यात चारित्र को भाव मोक्ष कहते हैं। क्योंकि इसके द्वारा ही समस्त द्रव्यों का क्षय होता है। इस भाव मोक्ष द्वारा जो समस्त द्रव्य कर्मों का समग्र रूप से आत्मा से पृथक्करण होता है उसे द्रव्य मोक्ष कहते हैं। मोक्ष तत्व वर्णन करते हुए आचार्य उमास्वामी ने कहा भी है-

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्म विप्रमोक्षो मोक्षः (2)

Liberation (is) the freedom from all karmic matter, owing to the non-existence of the cause of bondage to the shedding (of all the karmas)

बंध हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग रूप बंध के कारणों का निरोध/अभाव हो जाने से नूतन कर्मों का आना (आस्रव) रूक जाता है क्योंकि कारण के अभाव में कार्य का अभाव होता ही है।

तप आदि निर्जरा के कारणों का सन्निधान (निकटता) होने पर पूर्व अर्जित संचित कर्मों का विनाश हो जाता है।

प्रश्न -कर्मबंध-संधान जब अनादि है तो उसका अंत नहीं होना चाहिए? क्योंकि जो अनादि होता है उसका अंत नहीं होता तथा दृष्ट विपरीत (प्रत्यक्ष से

विपरीत) की कल्पना करने के प्रमाण का अभाव होता है।

उत्तर-अनादि होने से अंत नहीं होता ऐसा नहीं है क्योंकि जैसे बीज और अंकुर की संतान अनादि होने पर भी अग्नि से अंतिम बीज के जला देने पर उससे अंकुर उत्पन्न नहीं होते हैं, उसी प्रकार ध्यानाग्नि के द्वारा अनादिकालीन मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय आदि कर्मबंध के कारणों को भस्म कर देने पर भवांकुर का उत्पाद नहीं होता अर्थात् भवांकुर नष्ट हो जाता है यही मोक्ष है। इस दृष्ट बात का लोप नहीं कर सकते। कहा भी है जैसे-

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं प्रादुर्भवति नांकुरः।

कर्मबीजे तथा दग्धे न रोहति भवांकुर।।

“बीज के जल जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, उसी प्रकार कर्म बीज के जल जाने पर भवांकुर उत्पन्न नहीं होता है।”

कृत्स्न (संपूर्ण) कर्म का कर्म अवस्था रूप से क्षय हो जाना कर्मक्षय है, क्योंकि “सत्” द्रव्य का द्रव्यत्वरूप से विनाश नहीं है किंतु पर्यायरूप से उत्पत्तिमान होने से उनका विनाश होता है। तथा पर्याय, द्रव्य को छोड़कर नहीं है अतः पर्याय की अपेक्षा द्रव्य भी व्यय को प्राप्त है, ऐसा कह दिया जाता है। क्योंकि पर्यायें उत्पन्न और विनष्ट होती हैं अतः पर्यायरूप से द्रव्य होता है। अतः कारणवशात् कर्मत्वपर्याय को प्राप्त पुद्गल द्रव्य का कर्मबंध के प्रत्यनीक (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप) कारणों के सन्निधान होने पर उस कर्मत्व पर्याय की निवृत्ति होने पर उसका क्षय हो जाता है उस समय वह पुद्गल द्रव्य अकर्म पर्याय से परिणत हो जाता है। इसलिये कृत्स्न कर्म क्षय को मुक्ति कहना युक्त ही है।

हेदुमभावे णियगा जायदि णाणिस्स आसवणिरोधो।

आसवभावेण विणा जायदि कम्मस्स दु णिरोधो।। (50)

कम्मस्साभावेण य सव्वण्हू सव्वलोगदरिसी य।

पावदि इन्दियरहिदं अव्वाबाहंसुहमणंतं।। (51) पंचास्तिकाय प्राभृत

कर्में के आवरण में प्राप्त संसारी जीव का जो क्षायोपशमिक विकल्परूप भाव है वह अनादिकाल से मोह के उदय के वश रागद्वेष मोह रूप परिणमता हुआ अशुद्ध हो रहा है यही भाव है। अब इस भाव से मुक्त होना कैसे होता है सो कहते हैं। जब

यह जीव आगम की भाषा से काल आदि लब्धि को प्राप्त करता है तथा अध्यात्म भाषा से शुद्ध आत्मा के सम्मुख परिणाम रूप स्वसंवेदन ज्ञान को पाता है तब पहले मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के उपशम होने पर फिर उनका क्षयोपशम होने पर सराग सम्यग्दृष्टि हो जाता है। तब अर्हत् आदि पंचपरमेष्ठी की भक्ति आदि के द्वारा पर आश्रित धर्मध्यानरूप बाहरी सहकारी कारण के द्वारा मैं अनंत ज्ञानादि स्वरूप हूँ इत्यादि भावना स्वरूप आत्मा के आश्रित धर्म ध्यान को पाकर आगम में कहे हुए क्रम से असंयत सम्यग्दृष्टि को आदि लेकर अप्रमत संयत पर्यंत चार गुणस्थानों के मध्य में से किसी भी एक गुणस्थान के दर्शनमोह को क्षयकर क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाता है। फिर मुनि अवस्था में अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में चढ़कर आत्मा सर्व कर्म प्रकृति आदि से भिन्न है ऐसे निर्मल विवेकमयी ज्योति रूप प्रथम शुक्ल ध्यान का अनुभव करता है। फिर रागद्वेष रूप चारित्र मोह के उदय के अभाव होने पर निर्विकार शुद्धात्मानुभव रूप वीतराग चारित्र को प्राप्त कर लेता है जो चारित्र मोह के नाश करने में समर्थ है। इस वीतराग चारित्र के द्वारा मोहकर्म का क्षय कर देता है-मोह क्षय के पीछे क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थान में अन्तर्मुहूर्त काल ठहर कर दूसरे शुक्ल ध्यान को ध्याता है। इस ध्यान से ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अन्तराय इन तीन घातियाकर्मों को एक साथ एक गुणस्थान के अंत में जड़ मूल से दूर कर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टयस्वरूप भाव मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

दंसणणाणसमग्गं झाणं णो अण्णदव्वसंजुत्तं।

जायदि णिज्जरहेदू सभावसहिदस्स साधुस्स।। (152)

इस प्रकार वास्तव में इन (पूर्वाक्त) भावयुक्त भावमोक्षवाले भगवान् केवली को जिन्हें स्वरूपतृप्तपने के कारण कर्मविपाक कृत सुख, दुःख रूप विक्रिया नष्ट हो गयी है उन्हें-आवरण के प्रक्षीणपने के कारण, अनंत ज्ञान दर्शन से संपूर्ण शुद्धज्ञानचेतनामयपने के कारण तथा अतीन्द्रियपने के कारण जो अन्यद्रव्य के संयोग से रहित है और शुद्ध स्वरूप में अविचलित चैतन्यवृत्तिरूप होने के कारण जो कथंचित् 'ध्यान' नाम के योग्य है ऐसा आत्मा का स्वरूप आत्मा की निज दशा पूर्व संचित कर्मों की शक्ति का शासन (क्षीणता) अथवा उनका पतन (नाश) देखकर निर्जरा के हेतु रूप से वर्णन किया जाता है।

जो संवरेण जुत्तो णिज्जरमाणोध सव्वकम्माणि।

वगदेवदाउस्सो मुयदि भवं तेण सो मोक्खो।। (153)

वास्तव में केवली भगवान् को, भावमोक्ष होने पर परम संवर सिद्ध होने के कारण उत्तर कर्म संतति निरोध को प्राप्त होकर और परम निर्जरा का कारणभूत ध्यान सिद्ध होने के कारण पूर्व कर्मसंतति की जिसकी स्थिति कदाचित् स्वभाव से ही आयु कर्म के जितनी होती है और कदाचित् समुद्घात विधान से आयु कर्म के लिए जितनी होती है-आयु कर्म के अनुसार ही निर्जरति होती हुई अपुनर्भव सिद्धगति के लिए भव छूटने के समय होने वाला जो वेदनीय-आयु-नाम-गोत्ररूप कर्मपुद्गलों का जीव के साथ अत्यंत विश्लेष-वियोग है वह द्रव्यमोक्ष है।

ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय ये चार घातिया कर्मों के क्षय से अरहंत केवली बनते हैं। तीर्थंकर केवली समवसरण की विभूति के साथ उपदेश करके भव्य जीवों को मोक्ष मार्ग का स्वरूप बताते हैं और सामान्य केवली गंधकुटी में विराजमान होकर भव्य जीवों को उपदेश देते हैं। तीर्थंकर केवली नियम से जघन्य रूप से नौ वर्ष एवं उत्कृष्ट रूप से अंतर्मुहूर्त अधिक 8 वर्ष कम, एक पूर्व कोटि वर्ष तक उपदेश करते हैं। अंत में समवसरण या गंधकुटी का विसर्जन होता है-दिव्य ध्वनि के द्वारा उपदेश देना भी संकोच हो जाता है और केवली योग निरोध करते हैं। जो मुनीश्वर 6 महीना आयु शेष रहते केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं और उनके नाम, गोत्र एवं वेदनीय कर्म की स्थिति अधिक होती है वे केवली समुद्घात भी करते हैं। अंत में “अ इ उ ऋ लृ” इन पांच अक्षर के उच्चारण काल प्रमाण अयोगी गुणस्थान (14वें) में जीव रहता है। उपान्त (द्विचरम, अंतिम समय से पहले 1 समय) समय में 72 प्रकृतियों का एवं अंतिम समय में 13 प्रकृतियों का नाश करके जीव सिद्ध, बुद्ध-नित्य निरंजन बन जाता है।

सिलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।

कम्मरयविप्पमुक्को, गय जोगो केवली होदि।। (65) गो.सा.

जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों के आने के द्वार रूप आस्रव सर्वथा बंद हो गया है तथा सत्त्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख

है, उस योगरहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं।

अट्टविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।

अट्ट गुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।। (68)

जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित हैं, अनंतसुखरूप अमृत के अनुभव करने वाले शांतिमय हैं, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अंजन से रहित हैं, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रगट हो चुके हैं, कृत्यकृत्य हैं-जिनको कोई कार्य करना बाकी न रहा है, लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं।

प्रश्न-अनादिकाल से मोक्ष को जाते हुए जीवों से जगत् की शून्यता हो जायेगी अर्थात् अनादिकाल से जो मोक्ष को जीव जा रहे हैं तो न्यून होते होते कभी न कभी जगत् में जीव सर्वथा न रहेंगे?

उत्तर-जैसे क्रम से जाते हुए जो भविष्यत् काल के समय हैं उनसे यद्यपि भविष्यत्काल के समयों की राशि में न्यूनता होती है तथापि उस समय राशि का अंत कदापि नहीं, इस प्रकार मुक्ति में जाते हुए जीवों से यद्यपि जगत् में जीवराशि की न्यूनता होती है तथापि उस जीव राशि का अंत नहीं है। यदि ऐसा कहो तो यह शंका भी होती है कि पूर्वकाल में बहुत जीव मोक्ष को गए हैं तब इस समय जगत् की शून्यता क्यों नहीं दिख पड़ती? तो इस प्रकार यह भी उत्तर है कि अभव्य जीव तथा अभव्य के समान भव्य जीवों को मोक्ष नहीं है। फिर जगत् की शून्यता कैसी होगी?

विश्व में जीवों की संख्या अनन्तानन्त है जो कि अक्षय अनन्त है। अनन्त का अर्थ है कि जिस राशि में आय नहीं होते हुए भी व्यय होने पर भी कभी अन्त नहीं होता है। अक्षय अनन्त का अर्थ है जो अनन्त कभी भी क्षय नहीं होता है। संसारी जीव राशि तो अक्षय अनन्तानन्त है परन्तु निगोद शरीर में भी जो जीवराशि है वह भी अनन्तानन्त है। अनंतकाल से अभी तक जो अनन्तानन्त जीव मोक्ष गए उससे भी अनंतगुणे जीव एक निगोद शरीर में रहते हैं। चक्षु से नहीं दिखाई देने वाले निगोद शरीर में स्थित जीव राशि कितनी है यह तो छद्मस्थ की कल्पना से भी बाहर है।

एगणिगोदसरीरे जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।

सिद्धेहिं अणंतगुणा सव्वेण वितीदकालेण।।(96) गो.जी.

एक निगोद में वर्तमान जीव द्रव्यप्रमाण से अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा संख्या से अनन्तानन्त हैं। अर्थात् सर्व जीव राशि के अनन्त बहुभाग मात्र संसारी जीवों की राशि है। उसके असंख्यातवें भाग प्रमाण जीव एक निगोद शरीर में सदा विद्यमान रहते हैं। वे अनन्तानन्त हैं ऐसा परमाणु में कहा है। तथा वे सर्वजीव राशि के अनन्तवें भाग मात्र जो अनादिकाल से सिद्ध हुए जीव हैं उनसे अनन्तगुणे हैं। तथा समस्त अतीत काल के समयों से भी अनन्तगुणे हैं। इससे काल की अपेक्षा एक शरीर में निगोद जीवों की संख्या कही। क्षेत्र और भाव की अपेक्षा उनकी संख्या आगम के अनुसार कहते हैं। समस्त आकाश के प्रदेशों से और केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों से अनन्तगुणा हीन हैं तथा लोकाकाश के प्रदेशों से और सर्वाधिज्ञान के विषयभूत भावों से अनन्त गुणित है। परमाणु में उनकी संख्या को जिन भगवान् के द्वारा दृष्ट कहा है इसलिए कोई विरोध नहीं है।

शंका-आठ समय और छह मास में छह सौ आठ जीवों के कर्मों का क्षय करके सिद्ध होने पर सिद्ध राशि की वृद्धि देखी जाती है और संसार जीवराशि की हानि देखी जाती है। तब कैसे सर्वदा एक शरीर में रहने वाले निगोद जीव सिद्धों से अनन्तगुणे हो सकते हैं? तथा काल के समयों का समूह सर्व जीवराशि से अनन्तगुणा। अतः अपने योग्य अनन्त भाग काल बीतने पर संसारी जीव राशि का क्षय और सिद्धराशि की वृद्धि सुघटित है।

समाधान-उक्त शंका ठीक नहीं है क्योंकि केवल ज्ञान रूप दृष्टि के केवलियों के द्वारा और श्रुतज्ञान रूप दृष्टि से श्रुतकेवलियों के द्वारा सदा देखा गया भव्य संसारी जीव राशि का अक्षयपना अति सूक्ष्म होने से तर्क का विषय नहीं है। तथा जो तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित है और वह प्रमाण नहीं है। जैसे अग्नि शीतल होती है क्योंकि द्रव्य है जो द्रव्य होता है वह शीतल होता है जैसे जल। धर्म मरने पर दुःख देता है पुरुष के आश्रित होने से जो-जो पुरुष के आश्रित होता है वह-वह दुःखदायी होता है जैसे अधर्म। ये तर्क प्रत्यक्ष और आगम से बाधित है।

शंका-तब तर्क से बाधित आगम को कैसे प्रमाण माना जा सकता है?

समाधान-नहीं, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण और अन्य तर्कों से संभावित आगम के अविस्वादि होने से उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है। तथा आपका तर्क प्रत्यक्ष और आगम का विरोधी होने से अप्रमाण है।

शंका-तब वह कौन-सा है, जिससे आगम का प्रामाण्य निश्चित है।

समाधान-समस्त भव्य संसारी जीव राशि अनंतकाल बीतने पर भी क्षय को प्राप्त नहीं होती क्योंकि वह अक्षय अनंत प्रमाण है। जो जो अक्षयानंत होता है वह अनंतकाल में भी क्षय को प्राप्त नहीं होता है। जैसे इतने हैं इस रूप से परिमित होने पर भी तीन काल के समयक भी समाप्त नहीं होते। ये सब द्रव्यों की पर्याय अथवा अविभाग प्रतिच्छेदों का समूह कभी समाप्त नहीं होता। इस प्रकार अनुमान का अंग जो तर्क है उसका प्रामाण्य सुनिश्चित है।

उपर्युक्त विषय को सुगम बनाने के लिए उदाहरण प्रस्तुत कर रहा हूँ। 1. संख्या को 10,100,1000 आदि से विभाजन 1/10, 1/100, 1/1000 करते जाने पर भी कभी भी भाज्य एक 1 संख्या पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होगी। इस प्रकार तीन वर्ग मूल भी समाप्त नहीं होगा।

पुण्य एवं पाप के स्वरूप एवं प्रभेद

सुहअसुहभावजुत्ता पुण्यं पावं हवति खलु जीवा।

सादं सुहाउणामं गोदं पुण्यं पराणि पावं च॥(38)

शुभाशुभभाव युक्ताः पुण्यं पापं भवति खलु जीवाः।

सातं शुभायुःनाम गोत्रं पुण्यं पराणि पापं च॥

The Jivas consist of Punya and Papa surely having auspicious and inauspicious Bhavas (respectively). Punya is Satavedaniya, auspicious life, name and class, While Papa is (exactly) the opposite (of these).

शुभ तथा अशुभ परिणामों से युक्त जीव पुण्य और पाप रूप होते हैं। सातावेदनी, शुभ आयु, शुभ नाम तथा उच्च गोत्र नामक कर्मों की जो प्रकृतियाँ हैं, वे तो पुण्य प्रकृतियाँ हैं और शेष सब पाप प्रकृतियाँ हैं।

इस गाथा में आचार्य श्री ने आस्रव एवं बंध के उत्तर भेद स्वरूप पुण्य-पाप का स्वरूप एवं उसके भेद-प्रभेद का कथन किया है। 'सुहअसुहभावजुत्ता पुण्यं पावंहवति खलु जीवा' अर्थात् शुभ एवं अशुभ भावों से युक्त होकर जीव निश्चय से पुण्य पाप रूप में परिणमन करता है यह प्रतिपादन करके आचार्य श्री ने भाव पुण्य एवं

भाव पाप का प्रतिपादन किया है। अर्थात् जो शुभोपयोग से युक्त जीव है वह पुण्य जीव है और जो अशुभापयोग से युक्त जीव है वह पाप जीव है। शुभोपयोग का आरंभ वस्तुतः सम्यग्दर्शन होने के बाद अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में होता है। मिथ्यात्व गुणस्थान में शुभोपयोग नहीं हो सकता है। क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना शुभोपयोग संभव नहीं है।

जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा।

वदसहिदा वि य पावा, तच्चिरीया हवंति त्ति।।(622) गो.सा.

जीव के दो भेद हैं-एक पुण्य और दूसरा पाप। जो सम्यक्त्व गुण से या व्रत से युक्त है उनको पुण्य जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत हैं उसको पाप कहते हैं।

‘मिच्छाइटी पावा’ - मिथ्यादृष्टि पाप जीव है।

इससे सिद्ध होता है कि वैभवशाली राजा, महाराजा, देव भी मिथ्यात्व से सहित है तो पापी जीव है परन्तु सम्यग्दर्शन से सहित पशु, नारकी, गरीब मनुष्य भी पुण्यात्मा जीव है। वस्तुतः भाव पुण्य ही पुण्य है और भाव पुण्य के कारण जो कर्म परमाणु द्रव्य रूप में परिणमन करता है वह द्रव्य पुण्य है। ऐसे भाव पुण्य करने के लिए हमारे पूर्वाचार्य भी उपदेश करते हैं एवं प्रेरित करते हैं।

उद्धम मिथ्यात्वविषं भावय दृष्टिं च कुरु पशं भक्तिम्।

भावनमस्काररतो ज्ञाने युक्तो भव सदापि।।(1) द्र.सं.

मिथ्यात्व रूपी विष का वमन कर दो, सम्यग्दर्शन की भावना करो, उत्कृष्ट भक्ति को करो और भाव नमस्कार में तत्पर होकर सदा ज्ञान में लगे रहो।

पंचमहाव्रतरक्षां कोपचतुष्कस्य निग्रहं परमम्।

दुर्दान्तेन्द्रियविजयं तपः सिद्धिविधौ कुरुद्योगम्।।(2)

पांच महाव्रतों की रक्षा करो, क्रोध आदि चार कषायों का पूर्ण रूप निग्रह करो, दुर्दांत प्रबल इन्द्रिय रूप शत्रुओं पर विजय करो तथा बाह्य और अभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का जो तप है उसको सिद्ध करने में उद्योग करो। इस प्रकार दोनों आर्याछन्दों से कहे हुए लक्षण सहित शुभ उपयोग रूप भाव परिणाम से तथा उसके विपरीत अशुभ उपयोग रूप परिणाम से युक्त परिणत जो जीव है वे पुण्य-पाप को धारण करते हैं अथवा स्वयं पुण्य पाप रूप हो जाते हैं।

शुभः पुण्यास्याशुभः पापस्य।३ त. सू.

Asrva of 2 kinds : शुभ or good which is the inlet of virtue or meritorious karmas अशुभ of bad which is the inlet of vice or demeritorious karmas.

शुभोपयोग पुण्य का और अशुभोपयोग पाप का आस्रव है।

शुभयोग पुण्य और अशुभ योग पापास्रव का कारण है। हिंसा, असत्यभाषण, वध आदि की चिंता रूप अपध्यान अशुभ योग है। हिंसा, दूसरे की बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण चोरी, मैथुन-प्रयोग आदि अशुभ काययोग है। असत्य भाषण, कठोर मर्मभेदी वचन बोलना आदि अशुभ वचन योग है। हिंसक परिणाम, ईर्ष्या, असूया आदि रूप मानसिक परिणाम अशुभ मनोयोग है।

अशुभ योग से भिन्न अनंत विषय विकल्प वाला शुभ योग है। जैसे-अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि शुभ काययोग है। अर्हन्त भक्ति तप की रुचि, श्रुत का विनय आदि विचार शुभ मनोयोग है। सत्य, हित-मित वचन बोलना शुभ वाग्योग है।

शुभ परिणाम-पूर्वक होने वाला योग शुभयोग है और अशुभ परिणामों से होने वाला योग अशुभ योग कहलाता है। 'पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम्।' कर्मणः स्वतंत्र्य विवक्षायां पुनात्यात्मानं प्रीणयतीति पुण्यम्।

पारतन्त्र्यविवक्षायां करणत्वोपपत्तेः पूयतेऽनेनेति

वा पुण्यम् तत्सद्वैद्यादि। (तत्त्वार्थवार्तिके)

जो आत्मा को पवित्र करे या जिससे आत्मा पवित्र किया जाता है, वह पुण्य कहलाता है। अथवा जिसके द्वारा आत्मा सुखसाता अनुभव करे, वह सातावेदनीय आदि कर्म पुण्य है। स्वतंत्र विवक्षा में जो आत्मा को पवित्र करता है, प्रसन्न करता है वह पुण्य है एवं कर्तृवाच्य से निष्पन्न पुण्य शब्द है। पारतन्त्र्य विवक्षा में कारण साधन से पुण्य शब्द निष्पन्न होता है जैसे जिसके द्वारा आत्मा पवित्र एवं प्रसन्न किया जाता है, वह पुण्य है।

“तत्प्रतिद्वन्द्विरूपं पापम्। तस्यप्रतिद्वन्द्विरूपं पापमिति विज्ञायते। पाति रक्षत्यात्मानम् अस्माच्छुभपरिणामादिति पुण्यस्य पापभिधानम् तदसद्वैद्यादि।” तत्त्वार्थवार्तिके

पुण्य का प्रतिद्वन्दी (विपरीत) पाप है। जो आत्मा की शुभ से रक्षा करे अर्थात्

आत्मा में शुभ परिणाम न होने दे वह पाप कहलाता है, वह असातावेदनीय आदि पापकर्म है।

प्रश्न-जैसे सोने की बेड़ी और लोहे की बेड़ी दोनों ही का अविशेषता से तुल्य (समान) फल है प्राणी को परतंत्र करना, वैसे ही पुण्य-पाप दोनों ही आत्मा को परतंत्र करने में निमित्त कारण है। इन पुण्य और पाप में कोई भेद नहीं है, यह पुण्य (शुभ) है, यह अशुभ है, पाप है, यह तो केवल संकल्प मात्र भेद है।

उत्तर-पुण्य-पाप को सर्वथा एक रूप कहना उपयुक्त नहीं है क्योंकि सोने या लोहे की बेड़ी की तरह दोनों ही आत्मा की परतंत्रता में कारण है तथापि इष्टफल और अनिष्ट फल के निमित्त से पुण्य और पाप में भेद है। जो इष्ट गति, जाति, शरीर, इन्द्रिय विषय आदि का निवर्तक है, वह पुण्य है तथा जो अनिष्ट गति जाति, शरीर, इन्द्रियों के विषय आदि का कारण है वह पाप है। इस प्रकार पुण्यकर्म और पाप कर्म में भेद है। इनमें शुभ योग पुण्यास्रव का कारण है और अशुभ योग पापास्रव का।

शंका-सम्यग्दृष्टि जीव के तो पुण्य तथा पाप ये दोनों ही हेय (त्याज्य) हैं फिर वह पुण्य सम्पादन कैसे करता है?

समाधान-सम्यग्दृष्टि जीव भी निज शुद्ध आत्मा को ही भाता है। परन्तु जब चारित्रमोह के उदय से उस निज शुद्ध आत्मा की भावना में असमर्थ होता है, तब दोषरहित परमात्मा स्वरूप जो अर्हन्त सिद्ध है तथा उनके आराधक जो आचार्य, उपाध्याय और साधु हैं उनकी परमात्मा रूप पद की प्राप्ति के निमित्त और विषय तथा कषायों को दूर करने के लिए दान, पूजा आदि से अथवा गुणों की स्तुति आदि से परम भक्ति को करता है और भोगों की वांछा आदि निदानों से रहित जो परिणाम है उससे कुटुंबियों के पलाल के समान निरिच्छकपने से विशिष्ट पुण्य का आस्रव करता है। अर्थात् जैसे किसान जब चावलों की खेती करता है, तब उसका मुख्य उद्देश्य चावल उत्पन्न करने का रहता है और चावलों का जो पलाल (घास) उसमें उसकी वांछा नहीं रहती है, तथापि उसको बहुत-सा पलाल मिल ही जाता है। इसी प्रकार मोक्ष को चाहने वाले जीवों की वांछा बिना भी भक्ति करने से पुण्य का आस्रव होता है और पुण्य से स्वर्ग में इन्द्र, लोकान्तिक देव आदि की विभूति को प्राप्त होकर स्वर्ग संबंधी जो विमान तथा देव देवियों का परिवार है, उसको जीर्ण तृण के समान गिनता हुआ

महाविदेहों में जाकर देखता है क्या देखता है? ऐसा प्रश्न करो तो उत्तर यह है कि वह यह समवसरण है, ये वही श्री वीतराग सर्वज्ञ भगवान् है, ये वे ही भेद तथा अभेद रूप रत्नत्रय की आराधना करने वाले गणधर देव आदि हैं, जो कि पहले सुने जाते थे, वे आज प्रत्यक्ष में देखे ऐसा मानकर अधिकता से धर्म में दृढ़ बुद्धि को करके चतुर्थ गुणस्थान के योग्य जो अपनी अविरत अवस्था भाव उसको नहीं छोड़ता हुआ भोगों का सेवन होने पर भी धर्मध्यान से देव आयु के काल को पूर्णकर स्वर्ग से आकर तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त होता है और तीर्थंकर आदि पद को प्राप्त होने पर भी पूर्वजन्म में भावित की हुई जो विशिष्ट-भेद ज्ञान की वासना है, उसके बल से मोह को नहीं करता और मोह रहित होने से श्री जिनेन्द्र की दीक्षा को धारण कर पुण्य तथा पाप से रहित जो निज परमात्मा का ध्यान है उसके द्वारा मोक्ष को जाता है और जो मिथ्यादृष्टि है वह तो तीव्र निदान बंध के पुण्य से चक्रवर्ती, नारायण तथा रावण आदि प्रतिनारायणों के समान भोगों को प्राप्त होकर नरक को जाता है।

जीवो परिणमदि जदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो।

सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो॥(9) प्रवचनसार

जब यह आत्मा शुभ या अशुभ राग भाव से परिणत होता है, तब जपा कुसुम या तमालपुष्प के लाल या काले रंग रूप परिणत स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव होता हुआ स्वयं शुभ या अशुभ होता है और जब यह शुद्ध अराग (वीतराग) भाव से परिणत होता है, शुद्ध होता है तब अराग वीतराग स्फटिक की भाँति परिणाम स्वभाव शुद्ध होता है उस समय आत्मा स्वयं ही शुद्ध होता है।

इस प्रकार जीव के शुभत्व, अशुभत्व और शुद्धत्व सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि वह अपरिणमन स्वभाव, कूटस्थ नहीं है।

देवजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मिय सुसीलेसु।

उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा॥ (69)

देव, यति और गुरु की पूजा में तथा दान में तथा सुशील में और उपवासादिक में आत्मा शुभोपयोगात्मक है।

उवओगो यदि हि सुहो पुण्णं जीवस्स संचय जादि।

असुहो वा तथ पावं तेसिमभावे णसं चयमत्थिं।।(156)

उपयोग यदि शुभ हो तो जीव पुण्य संचय को प्राप्त होता है और यदि अशुभ हो तो पाप संचय होता है। उन दोनों के अभाव में संचय नहीं होता।

जो जाणदि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।

जीवेसु साणुकंपा उवओगो सो सुहोतस्स।। (157)

जो अर्हन्तों, सिद्धों तथा अनगारों को जानता है और श्रद्धा करता है, और जीवों के प्रति अनुकंपा युक्त है, उसका वह उपयोग शुभ है।

कुन्दकुन्द स्वामी के समयसार एवं प्रवचनसार के टीकाकार आचार्य अमृतचन्द ने तत्त्वार्थसार में पुण्यसाव का कारण बताते हुए कहा है -

दया दानं तपः शीलं सत्यं शौचं दमः क्षमा।

वैयावृत्यं विनीतश्च जिनपूजार्जवं तथा।।(25)

सरागसंयमश्चैव संयमासंयमस्तथा।

भूतव्रत्यनुकंपा व सद्देद्यास्रवहेतवः।।(26)

दया, दान, तप, शील, सत्य, शौच, इन्द्रिय दमन, क्षमा, वैयावृत्य, विनय, जिनपूजा, सरलता, सरागसंयम, संयमासंयम, भूतानुकंपा और व्रत्यनुकंपा ये सातावेदनीय के आस्रव के हेतु हैं। पापास्रव के कारणभूत अशुभ योग का स्वरूप कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार में निम्न प्रकार से किया है-

वियकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चितदुट्टगोट्टिजुदो।

उगो उम्मगपरो उवओगो जस्स सो असुहो।।(158)

जिसका उपयोग विषय कषाय में अवगाढ मग्न है, कुश्रुति, कुविचार और कुसंगति में लगा हुआ है, कषायों की तीव्रता में अथवा पापों में उद्यत है तथा उन्मार्ग में लगा हुआ है उसका वह उपयोग अशुभ है।

शुभोपयोग के अनेक भेद, प्रभेद होने से उनकी बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं तथा अशुभोपयोग के भेद, प्रभेद अनेक होने के कारण उनके बंधने वाली प्रकृतियाँ भी अनेक हैं गोम्मट्टसार कर्मकांड में पुण्य एवं पाप प्रकृतियों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है -

पुण्य प्रकृतियाँ

सादं तिण्णेवाउं उच्चं णरसुरदुगं च पंचिंदी।

देहा बंधणसंघादांगोवंगाई, वण्णचओ।।(41)

समचउरवज्जरिसहं उवघादूणगुरुछक्क सगमणं।

तसबारसट्ठसट्ठी बादालमभेददो सत्था।।(42)

सातावेदनीय, तीन आयु, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग, वर्णचतुष्क, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रवृषभनाराचसंहनन, उपघात बिना अगुरुलघुषट्क, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदि बारह ये अड़सठ प्रकृतियाँ भेद विवक्षा से है तथा अभेद विवक्षा से पुण्य प्रकृतियाँ 42 ही हैं।

उपर्युक्त गाथा में कथित पुण्यप्रकृतियों में जो तीन आयु कही हैं, वे तिर्यच, मनुष्य और देवायु हैं। वर्ण चतुष्क में - वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हैं, किन्तु यहाँ शुभरूप वर्णादि चतुष्क को ही ग्रहण करना। इनके भेद करने पर वर्ण 5, गंध 2, रस 5 और स्पर्श 8 इस प्रकार 20 भेद होते हैं सो यह कथन भेदविवक्षा से है, लेकिन अभेदविवक्षा में शुभ रूप वर्णादि चार ही ग्रहण के योग्य हैं। उपघात के बिना अगुरुलघुषट्क अर्थात् अगुरुलघु-परघातउच्छवास-आतप और उद्योत ये 5 प्रकृतियाँ हैं। त्रस आदि 12 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय यशस्कीर्ति, निर्माण और तीर्थकर। भेदविवक्षा से तो 68 प्रकृतियाँ कहीं और अभेद विवक्षा से 42 प्रकृतियाँ कहीं सो इसका अभिप्राय यह है कि पाँच बंधन और 5 संघात, पाँच शरीरों के ये अविनाभावी है अतः उनकी पृथक् नहीं गिनने से 10 प्रकृतियाँ वे कम हो गयी। इस प्रकार इन 26 प्रकृतियों को कम कर देने पर अभेदविवक्षा में वे 42 ही प्रकृतियाँ रहती हैं एवं भेद विवक्षा से इन 26 का ही कथन होने से 68 प्रकृतियाँ हो जाती है। यहाँ पृथक्-पृथक् रूप से नाम गिनाकर पुण्य (प्रशस्त) प्रकृतियों का कथन किया गया है। इसी बात को एक संक्षिप्त सूत्र द्वारा तत्वार्थ सूत्र में उमास्वामी ने कहा है, “सातावेदनीय, शुभआयु, नामकर्म की शुभ प्रकृतियाँ तथा शुभगोत्र (उच्चगोत्र) ये पुण्यरूप हैं।”

पाप प्रकृतियाँ

घादीणीचमसादं णिरयाऊ णिरयतिरियदुग जादी

संठाणसंहदीणं चदुपणगं च वझणचओ॥(43)

उवघादमसग्गमणं थावरदसयं च अप्प सत्थाहु।

बंधुदयं पडि भेदे अडणउदि सयं दुचदुर सीदिदरे॥(44) (गो.सा.कर्म.)

घातिया कर्म की 47 प्रकृति तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति, तिर्यचगत्यानुपूर्वी, जाति 4, संस्थान 5, संहनन 5, (अशुभ) वर्णचतुष्क, उपघात, अप्रशस्त विहायोगति, स्थावरआदि 10 ये अप्रशस्त (पाप) प्रकृतियाँ हैं। भेद विवक्षा से बंध रूप 98 प्रकृतियाँ एवं उदयरूप 100 प्रकृतियाँ हैं। अभेदविवक्षा से वर्णादि कि 16 प्रकृति घटाने पर बंधन रूप 82 और उदयरूप 84 प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ अप्रशस्त प्रकृतियों में घातियाँकर्मों की प्रकृतियाँ कही गयी सो घातियाँ कर्म तो अप्रशस्तरूप ही हैं। उनकी 47 प्रकृतियाँ-ज्ञानावरण 5, दर्शनावरण 9, मोहनीय 28 और अन्तराय की 5 हैं तथा नीचगोत्र, असातावेदनीय, नरकायु, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यचगति, तिर्यच्चगत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, समचतुरस्रसंस्थान बिना न्यग्रोधपरिमंडलादि 5 संस्थान, वज्रवृषभनाराचबिना वज्रनाराचादिक 5 संहनन, अशुभ वर्ण-गंध-रस-स्पर्श, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण अस्थिर, अशुभ, दुर्भंग, दुःस्वर अनादेय और अयशस्कीर्ति इस प्रकार वर्णादि की 16 कम करने पर उदयापेक्षा 84 प्रकृतियाँ तथा घातियाँकर्म की 47 में से सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति कम कर देने से बंधापेक्षा 82 प्रकृतियाँ अप्रशस्त रूप कही है। भेद विवक्षा से वर्णादि की 16 मिलने पर बंधापेक्षा 98 एवं उदयापेक्षा सम्यग्मिथ्यात्व व सम्यक्त्वप्रकृति मिलने से 100 प्रकृतियाँ पाप रूप (अप्रशस्त) कहीं हैं।

पुण्य के फल

पुनात्यात्मानं पूयतेनेनेति वा पुण्यम्। (सर्वार्थसिद्धि)

जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है वह पुण्य है।

धवल-सिद्धान्त शास्त्र में वीरसेन स्वामी ने कहा है -

काणि पुण्य फलानि?

पुण्य के फल कौन से हैं?

तित्थयर-गणहर-रिसि-चवट्ठ

बलदेव-वासुदेव-सूर-विज्जाहरिद्धीओ।

तीर्थकर, गणधर, ऋषि, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, देव और विद्याधरों की ऋद्धियाँ पुण्य के फल हैं। सम्यग्दृष्टि के द्वारा किया गया पुण्य संसार का कारण कभी नहीं होता यह नियम है। यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष के द्वारा किए हुए पुण्य में निदान न किया जाय तो वह पुण्य नियम से मोक्ष का ही कारण होता है।

लद्धं जइ चरम तणु चिरकय पुण्णेण सिज्झए णियमा।

पाविय केवल णाणं जह खाइय संजमं सुद्धं।।(423)

यदि वह जीव अपने चिरकाल के संचित किए हुए पुण्य कर्म के उदय से चरम शरीरी हुआ तो वह जीव यथाख्यात नाम के शुद्ध चारित्र को धारण कर तथा केवलज्ञान को पाकर नियम से सिद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है।

तम्हा सम्मादिट्ठी पुण्णं मोक्खस्स कारण हवई।

इय णारुण गिहत्थो पुण्णं चायरउ जत्तेण।।(424)

उपरोक्त कथनों से सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि का पुण्य मोक्ष का कारण होता है, यही समझकर गृहस्थों को यत्नपूर्वक पुण्य का उपार्जन करते रहना चाहिए।

उवसामगो व खवगो वा।

सो सूहुमसांपराओ जहखादेणूणओ किंचि।।(474)

जिस उपशम श्रेणी वाले अथवा क्षपक श्रेणिवाले जीव के अणुमात्र लोभ-सूक्ष्म कृष्टि को प्राप्त लोभकषाय के उदय का अनुभव होता है उसको सूक्ष्मसाम्पराय संयमी कहते हैं। इसके परिणाम यथाख्यात चारित्र वाले जीव के परिणामों से कुछ ही कम होते हैं क्योंकि यह संयम दशवें गुणस्थान में होता है यथाख्यात संयम ग्यारहवें से शुरू होता है।

भौतिक परम विकास व सुख से परे आध्यात्मिक

(चाल: 1.आत्मशक्ति... 2.क्या मिलिए...)

आत्मवैभव को पाने हेतु, चक्री भी त्यागते राज्य-वैभव।

निर्ग्रन्थ की पूजा इन्द्र/(चक्री) भी करते, इससे ज्ञात होता (श्रेष्ठ) आत्मवैभव॥ (1)...

जं मुणि लहइ अणंत सुह, णिय अप्पा झायंतु।

तं सुह इन्द्र वि णवि लहइ, देविहि कोडी रमन्तु॥

जो अनन्त सुख पाते हैं मुनि, निज आत्मा के ध्यान से।

वह सुख इन्द्र भी नहीं पाता, करोड़ भी देवी के रमण से॥ (2)...

सांसारिक सुख भले हो किसी के, तथाहि सत्ता-सम्पत्ति-वैभव।

वे सभी क्षणिक व भौतिकजन्य, संख्यात से ले असंख्यात तक॥ (3)...

सांसारिक सुख से ले वैभव हेतु, निश्चय से होते पाप-सन्ताप।

हिंसा-झूठ-चोरी-अब्रह्म-संग्रह, कोध-मान-माया-लोभ-विग्रह॥ (4)...

अधिक से अधिक सुख वैभव हेतु, होते हैं अधिक से अधिक पाप।

रामायण-महाभारत युद्धादि, इस हेतु है प्रसिद्ध उदाहरण॥(5)...

सिकन्दर, चंगेज खाँ, नेपोलियन, ईस्ट इण्डिया कम्पनी, नादिरशाह/(तैमूरलंग)

अकबर, बाबर, औरंगजेब, सद्दाम, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनी तक॥ (6)...

विज्ञान भी माना है भौतिक वैभव से होते हैं विविध प्रदूषण।

इन्द्रियों की सीमा है केवल, जीवनयापन व प्रजनन तक॥ (7)...

तन से अधिक शक्ति इन्द्रियों में, इनसे अधिक शक्ति मस्तिष्क में।

मस्तिष्क से अधिक शक्ति है मन में, मन से भी अनन्तगुणी शक्ति आत्मा में॥ (8)...

अशुभ (पाप) से अधिक शक्ति है शुभ (पुण्य) में,

शुभ से भी अधिक शक्ति है शुद्ध में।

शुद्ध आत्मा में अनन्तानन्त शक्ति, सभी शक्तियों से भी अनन्त गुणी शक्ति॥ (9)...

तथाहि इन्द्रिय ज्ञान होता सीमित, भ्रमपूर्ण से ले विपरीत तक।

संकल्प-विकल्प-संक्लेशज सुख, बन्धकारक व विविध दुःखद॥ (10)...

आत्मध्यान से अनन्त सुख-वैभव मिले,

भौतिक से मिले सीमित व दुःखद।

लक्ष्यानुसार ही होता है प्राप्त, साधनानुसार मिले साध्य॥ (11)...

अतः भौतिक विकास व इन्द्रिय सुख, नहीं परमविकास ज्ञान-सुख।

इससे परे आत्मिक सुख-वैभव, होते परम व शाश्वतिक॥ (12)...

इसका कारण आत्मा है शाश्वतिक, आत्मा में निहित अनन्त गुण।

इसीलिए ही आत्म विकास व वैभव, प्राप्त करना ही 'कनक' का परम लक्ष्य॥ (13)...

नन्दीड़, दि-3/12/2019, रात्रि 11.52 व प्रातः 7.00

संदर्भ-

वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी जीव कर्मरज से आवृत्त होकर संसार में पतित हुआ है और सर्वदा सबको नहीं जानता है परन्तु जब वही कर्मरज रूप आवरण हट जाता है तब वह सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनंतसुख एवं अनंतवीर्य सम्पन्न बन जाता है इसलिए वस्तुतः ज्ञान या सुख, पर से प्राप्त नहीं होता है परन्तु सहज आत्मोत्थ है। केवली (अरहंत सिद्ध भगवान्) के सुख का वर्णन पूज्यपाद स्वामी ने सिद्धभक्ति में निम्न प्रकार किया है-

आत्मोपादानसिद्धं स्वयमतिशयवद्वीतबाधं विशालं।

वृद्धिहासव्यपेतं, विषयविरहितं, निःप्रतिद्वंदभावम्॥

अन्यद्रव्यानपेक्षं, निरुपमममितं, शाश्वतं सर्वकालं।

उत्कृष्टानन्तसारं, परमसुखमतस्तस्य सिद्धस्यजातम्॥(7)

सिद्ध का सुख (1) आत्मा से ही उत्पन्न होता है। (2) वह सुख स्वयं अतिशय युक्त होता है। (3) समस्त बाधाओं से रहित होता है। (4) अत्यन्त विशाल व विस्तीर्ण होता है। (5) वृद्धि एवं हास से रहित (6) इन्द्रिय विषयों से रहित स्वभाविक होता है (7) दुःख रूप विरोधी धर्म से सदा रहित है। (8) अन्य बाह्य निमित्त या समाग्रियों की अपेक्षा से रहित है। (9) उपमा रहित है। (10) अनंत है (11) विनाश रहित है इसलिये सदा बना रहता है। (12) उस सुख का महात्म्य सर्वोत्कृष्ट है और वह अनंतकाल तक रहता है। (13) इन्द्रादिक के सुख से भी बढ़कर है इसलिए कर्मों के सर्वथा नाश होने से वह सिद्ध भगवान् के ही होता है।

नार्थः क्षुत्तृट्विनाशाद् विविधरसयुतैरन्नपानैरशुच्या।

नास्पृष्टेर्गन्धमाल्यैर्न हि मृदुशयनै, ग्लानिनिद्राद्यभावात्॥

आतंकार्तेरभावे, तदुपशमनसद्भेषजानर्थतावद्।

दीपानर्थक्यवद्वा व्यपगततिमिरे, दृश्यमाने समस्ते॥ (8)

सिद्ध भगवान् के क्षुधा और तृष्णा के नाश हो जाने से अनेक प्रकार के रसयुक्त अन्न तथा पान से कोई प्रयोजन नहीं है। अशुचि अर्थात् अपवित्र पदार्थों के स्पर्श नहीं होने से सुगन्धित पदार्थों से प्रयोजन नहीं है। ग्लानि और निद्रादि के नहीं होने से कोमल शय्या से भी प्रयोजन नहीं, रोग की पीड़ा के अभाव होने के कारण उस रोग को दूर करने के साधन रूप औषधि भी व्यर्थ है, जैसे कि समस्त दिखाई देने वाले अन्धकार के चले जाने पर दीप की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

प्रशान्तमनसं ह्येन योगिनं सुखमुत्तमम्।

उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥ (27 गीता)

जिसका मन भलीभाँति शांत हुआ है, जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।

सुखने ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥ (28)

आत्मा के साथ निरन्तर अनुसंधान करते हुए पाप-रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्मप्राप्ति-रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

स्वयंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।

अत्यंतसौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥ (21 इष्टोपदेश)

यह आत्मा आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रगट होता है यानि-जाना जाता है, वह शरीर के बराबर है, अविनाशी है-कभी इसका नाश नहीं होता। अनन्तसुख वाला है ऊर्ध्व, मध्य, पाताल का-यानि-समस्त जगत् का तथा जगत् के बाहर अनन्त अलोकाकाश जानने-देखने वाला है।

सामग्रीविशेष विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम्॥ (11)

सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके, ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं। (प्रमेयरत्नमाला)

ऐश्वर्यमप्रतिहतं सहजो विरागस्तृप्तिर्निसर्गजनिता वशितेन्द्रियेषु।

आत्यान्तिकं सुखमनावरणा च शक्तिर्ज्ञानं च सर्वविषयं भगवंस्तथैवा।।

तथा सन्यासियों के गुरु अवधूत के भी वचन उसके विषय में इस प्रकार है-

हे भगवान्! आपका ऐश्वर्य अप्रतिहत (अखण्ड) है, वैराग्य स्वभाविक है, तृप्ति नैसर्गिक है, इन्द्रियों में वशिता है अर्थात् आप जितेन्द्रिय हैं, आपका सुख आत्यन्तिक अर्थात् चरम सीमा को प्राप्त है, शक्ति आवरण रहित है और सर्व विषयों को साक्षात् करने वाला ज्ञान भी आपका ही है।

क्लेशकर्मविपाकशयैपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः॥ (पतञ्जली योगदर्शन)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेशरूप क्लेशों से, शुभाशुभकृतियों से जन्य पुण्य पाप रूप कर्मों से, पुण्य-पाप के फल-जाति, आयु तथा भोग प्रतिनिधि सुख दुःख रूप विपाक से और सुख-दुःखात्मक भोग से जन्य विविध वासनाओं से अस्पृष्ट, जीवरूप अन्य पुरुषों से विशिष्ट, चेतन ईश्वर है।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावधिष्णतृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च। (49)

पुरुष (आत्मा) एवं प्रकृति (कर्म) के भेदज्ञान से सम्पन्न योगी को सम्पूर्ण पदार्थों के अधिष्ठातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को नियन्त्रित करने के सामर्थ्य का) और समस्त पदार्थों के ज्ञातृत्व का (अर्थात् सम्पूर्ण पदार्थों को ठीक-ठाक जान लेने की शक्ति का) लाभ होता है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्। (50)

विवेक ख्याति की निष्ठा द्वारा, विवेक ख्यातिजन्य सिद्धिविषयक परम वैराग्य की प्राप्ति हो जाने से, पर वैराग्यजन्य असम्प्रज्ञात समाधि द्वारा, रागादि दोषों के मूल कारण अविद्या के समाप्त हो जाने पर पुरुष को कैवल्य भी प्राप्त हो जाता है।

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम्॥ (55)

बुद्धि एवं पुरुष की शुद्धि के समान रूप से हो जाने पर मोक्ष हो जाता है।

जिघ्रच्छा परमा रोगा, संखारा परमा दुखा।

एवं जत्वा यथाभूतं निब्बानं परमं सुखं॥ (धम्मपद)

भूख सबसे बड़ा रोग है, संस्कार सबसे बड़े दुःख हैं, इसे यथार्थ (रूप से) जानकर निर्वाण सबसे बड़ा सुख है।

केवली के शारीरिक सुख दुःख नहीं

सोक्खं वा गुण दुक्खं केवलणाणिस्स णस्थि देहगदं।

जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं॥ (20) (प्र.सा.)

आगे कहते हैं कि अतीन्द्रियपना होने से ही केवलज्ञानी के शरीर के आधार से उत्पन्न होने वाला भोजनादि का सुख तथा क्षुधा आदि का दुःख नहीं होता है। (पुण) तथा (केवलाणस्स) केवलज्ञानी के (देहगदं) देह से होने वाला अर्थात् शरीर के आधार में रहने वाली जिह्वा इन्द्रिय आदि के द्वारा पैदा होने वाला (सोक्खं) सुख (वा दुक्खं) और दुःख अर्थात् असातावेदनीय आदि के उदय से पैदा होने वाला क्षुधा आदि का दुःख (णत्थि) नहीं होता है। (जम्हा) क्योंकि (अदिदियत्तं) अतीन्द्रियपना अर्थात् मोहनीय आदि घातिया कर्मों के अभाव होने पर पाँचों इन्द्रियों के विषय सुख के लिए व्यापार का अभावपना ऐसा अतीन्द्रियपना (जाद) प्रगट हो गया है (तम्हा) इसीलिए (तं दु) वह अर्थात् अतीन्द्रियपना होने के कारण से अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख तो (णेयं) जानना चाहिए।

भाव यह है कि जैसे लोहे के पिंड की संगति को न पाकर अग्नि हथौड़े की चोट नहीं सक सहती है तैसे यह आत्मा भी लोहपिंड के समान इन्द्रियग्रामों का अभाव होने से अर्थात् इन्द्रियजनित ज्ञान के बन्द होने से सांसारिक सुख तथा दुःख का अनुभव नहीं करता है।

यहाँ किसी ने कहा है कि केवलज्ञानी के भोजन है। क्योंकि औदारिक शरीर की सत्ता है तथा असाता वेदनीय कर्म के उदय का सद्भाव है, जैसे हम लोगों के भोजन होता है। इसका खंडन करते हैं कि श्री केवलीभगवान् के औदारिक शरीर नहीं है किन्तु परम औदारिक शरीर है, जैसे कि कहा है-

दोष-रहित केवलज्ञानी के शुद्ध स्फटिक मणि के समान परमतेजस्वी तथा सात धातु से रहित शरीर होता है। और जो यह कहा है कि असातावेदनीय के उदय के सद्भाव से केवली के भूख लगती है और वे भोजन करते हैं सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि धान्य जौ आदि धान्य का बीज, जलादि सहकारी कारण सहित होने पर ही अंकुर आदि कार्य को उत्पन्न करता है तैसे ही असाता वेदनीय कर्म मोहनीय कर्मरूप सहकारी कारण के साथ ही क्षुधा आदि कार्य को उत्पन्न करता है, क्योंकि कहा है 'मोहस्स बलेण घाददे जीव' वेदनीय कर्म मोह के बल को पाकर जीव को घात करता है। यदि मोहनीय कर्म के अभाव होने पर भी असातावेदनीय कर्म क्षुधा आदि परिषह को उत्पन्न कर दे तो वध रोग आदि परिषह भी उत्पन्न हो जावे सो ऐसा होता नहीं है

क्योंकि कहा है 'भुक्त्युपसर्गाभावात्' केवली के भोजन व उपसर्ग नहीं होते और भी दोष यह आता है कि यदि केवली को क्षुधा की बाधा है, तब क्षुधा के कारण शक्तिक्षीण होने से अनन्तवीर्य नहीं बनेगा। तैसे ही क्षुधा द्वारा जो दुःखी होगा उसके अनन्त सुख भी नहीं हो सकेगा तथा रसना इन्द्रिय द्वारा ज्ञान में परिणमन करते हुए मतिज्ञानी के केवलज्ञान का होना भी सम्भव न होगा अथवा और भी हेतु है। असातावेदनीय के उदय की अपेक्षा केवली के सातावेदनीय का असर प्रगट नहीं होता। तैसे ही और भी बाधक हेतु हैं। जैसे प्रमत्तसंयमी आदि साधुओं के वेद का उदय रहते हुए भी मन्द-मोह के उदय से अखण्ड ब्रह्मचारियों के स्त्री परीषह की बाधा नहीं होती है तथा-नव-ग्रैवेयक आदि के अहमिन्द्रों के वेद का उदय होते हुए भी मन्दमोह के उदय से स्त्री-सेवन सम्बन्धी बाधा नहीं होती है, तैसे ही श्री केवली अरहंत के असातावेदनीय का उदय होते हुए भी सम्पूर्ण स्नेह का अभाव होने से क्षुधा की बाधा नहीं हो सकती है। यदि ऐसा आप कहे कि मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरहगुणस्थानवर्ती जीव आहारक होते हैं, ऐसा आहारमार्गणा के सम्बन्ध में आगम में कहा हुआ है, इस कारण से केवलियों के आहार है, ऐसा मानना चाहिये। सो ठीक नहीं है क्योंकि निम्न गाथा के अनुसार आहार छः प्रकार का होता है।

णोकम्मकम्महारो कवलाहारो य लेप्पाहारो।

ओजमणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो।।

भाव यह है कि आहार छः प्रकार का होता है। जैसे-नो-कर्म का आहार, कर्मों का आहार, ग्रासरूप कवलाहार, लेप का आहार, ओज आहार तथा मानसिक आहार। आहार उन परमाणुओं के ग्रहण को कहते हैं जिनसे शरीर की स्थिति रहे। आहारक वर्गणा का शरीर में प्रवेश सो नो कर्म का आहार है। जिन परमाणुओं के समूह से देवों का, नारकियों का, मनुष्य या तिर्यचों का वैक्रियक, औदारिक शरीर और मुनियों के आहारक शरीर बनता है उसको आहारक वर्गणा कहते हैं। कार्माण वर्गणा के ग्रहण को कर्म-आहार कहते हैं। इन्हीं वर्गणाओं से कर्मों का सूक्ष्म शरीर बनता है। अन्न पानी आदि पदार्थों को मुख द्वारा चबाकर व मुँह चलाकर खाना पीना सो कवलाहार है। यह साधारण मनुष्यों के व द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के पशुओं के होता है। स्पर्श से शरीर पुष्टिकारक पदार्थों को ग्रहण करना सो लेप आहार है। यह

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायधारी एकेन्द्रिय जीवों के होता है। अंडों को माता सेती है उससे जो गर्मी पहुंचाकर अंडों को पोषण करती है जो ओज आहार है। भवनवासी, व्यंतर ज्योतिषी तथा कल्पवासी इन चार प्रकार के देवों के मानसिक आहार होता है। इनके वैक्रियिक दिव्य शरीर होता है जिसमें हाड़ मांस रूधिर नहीं होता इसलिए इनके कवलाहार नहीं है, यह मांस व अन्न नहीं खाते हैं। देवों के जब कभी भूख की बाधा होती है तो उनके कंठ में से ही अमृतमई रस झर जाता है उससे ही उनकी भूख की बाधा मिट जाती है। नारकियों के कर्मों का भोगना यही आहार है तथा नरक की पृथ्वी की मिट्टी खाते हैं परन्तु उससे उनकी भूख मिटती नहीं है। इन छः प्रकार के आहारों में से केवली अरहंत भगवान् के मात्र नो कर्म का आहार है। इस की अपेक्षा से केवली अरहंतों के आहारकपना जानना चाहिये, कवलाहार की अपेक्षा से नहीं। सूक्ष्म इन्द्रियों के अगोचर रसवाले सुगन्धित अन्य मनुष्यों के लिए असंभव, कवलाहार के बिना भी कुछ कम कोटि पूर्व तक शरीर की स्थिति के कारण, सात धातुओं से रहित परमौदारिक शरीर रूप नोकर्म के आहार के योग्य आहारक वर्गणाओं के पुद्गल लाभान्तराय कर्म के पूर्ण क्षय हो जाने से केवली महाराज के शरीर में योग शक्ति के आकर्षण से प्रति समय आते हैं यही केवली अरहंतों के नो कर्म के आहार के अपेक्षा से ही आहारकपना है। यदि आप कहो कि आहारपना नोकर्म के आहार की अपेक्षा कहना तथा कवलाहार की अपेक्षा न कहना यह आप की कल्पना है। यदि सिद्धान्त में है तो कैसे मालूम पड़े तो इसका समाधान यह है कि श्री उमास्वामी महाराज कृत तत्त्वार्थसूत्र के दूसरे अध्याय में यह वाक्य है।

‘एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः’ ॥ (30)

इस सूत्र का भाव रूप अर्थ कहा जाता है। एक शरीर को छोड़कर दूसरे भव में जाने के काल में विग्रह गति के भीतर स्थूल शरीर का अभाव होते हुए नवीन स्थूल शरीर धारण करने के लिए तीन शरीर और छः पर्याप्ति के योग्य पुद्गल पिण्ड का ग्रहण होना नो-कर्म आहार कहा जाता है। ऐसा नोकर्म आहार विग्रह गति के भीतर कर्मों का ग्रहण या कार्माण वर्गणा का आहार होते हुए भी एक, दो या तीन समय तक नहीं होता है। इसलिए ऐसा जाना जाता है कि आगम में नोकर्म आहार की अपेक्षा से आहारकपना कहा है। यदि कहोगे कि कवलाहार की अपेक्षा से है तो ग्रास रूप भोजन

के काल को छोड़कर सदा ही अनाहारकपना ही रहेगा। तब तीन समय अनाहारक हैं ऐसा नियम न रहेगा। यदि कहोगे कि वर्तमान के मनुष्यों की तरह केवलियों के कवलाहार है क्योंकि केवली भी मनुष्य हैं, सो कहना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा मानोगे तो वर्तमान के मनुष्यों की तरह पूर्व काल के पुरुषों के सर्वज्ञपना नहीं रहेगा तथा राम रावण आदि को विशेष सामर्थ्य था सो यह बात नहीं बन सकेगी। और भी समझना चाहिए कि अल्पज्ञानी छद्मस्थ प्रमत्तसंयत नामा छोटे गुणस्थानधारी साधु भी जिनके सात धातुरहित परम औदारिक शरीर नहीं है इस वचन से कि 'छट्टोति पढम सण्णा' प्रथम आहार की संज्ञा अर्थात् भोजन करने की चाह (इच्छा) छोटे गुणस्थान तक ही है यद्यपि वे आहार को लेते हैं तथापि ज्ञान और संयम तथा ध्यान की सिद्धि के लिए लेते हैं, देह के मोह के लिए नहीं लेते हैं। कहा भी है-

कायस्थित्यर्थमाहारः कायो ज्ञानार्थमिष्यते,

ज्ञानं कर्मविनाशाय तन्नाशे परमं सुखं।। (3)

णा बलाउ साहणट्टं ण सरिरस्स य चयट्टं तेजट्टं।

णाणट्टं संजमट्टं झाणट्टं चेव भुंजति।। (4)

भाव यह है कि मुनियों के आहार शरीर की स्थिति के लिए होता है, शरीर को ज्ञान के लिए रखते हैं, आत्मा ज्ञान, कर्म नाश करने के लिए सेवन करते हैं क्योंकि कर्मों के नाश से परम सुख होता है। मुनि शरीर के बल, आयु, चेष्टा तथा तेज के लिए भोजन नहीं करते हैं किन्तु ज्ञान, संयम तथा ध्यान के लिए करते हैं।

उन भगवान् केवली के तो ज्ञान, संयम तथा ध्यान आदि गुण स्वभाव से ही पाये जाते हैं आहार के बल से नहीं। उनको संयमादि के लिए आहार की आवश्यकता तो नहीं है क्योंकि कर्मों के आवरण होने से संयमादि गुण तो प्रकट हो रहे हैं। फिर यदि कहो के देह के ममत्व से आहार करते हैं तो वे केवली छद्मस्थ मुनियों से भी हीन हो जायेंगे।

यदि कहोगे कि उनके अतिशय की विशेषता से प्रगट (दृश्य) रूप से भोजन की भुक्ति नहीं है, गुप्त है, तो परमौदारिक शरीर होने से भुक्ति ही नहीं है ऐसा अतिशय क्यों नहीं होता है। क्योंकि गुप्त भोजन में मायाचार का स्थान होता है, दीनता की वृत्ति आती है तथा दूसरे भी पिंड शुद्धि में कहे हुए बहुत से दोष

होते हैं जिनको दूसरे ग्रंथ से व तर्कशास्त्र से जानना चाहिए। अध्यात्म ग्रंथ होने से यहाँ अधिक नहीं कहा गया है।

यहाँ यह भावार्थ है कि ऐसा ही वस्तु का स्वरूप जानना चाहिए। इसमें हठ नहीं करना चाहिए। खोटा आग्रह या हठ करने से रागद्वेष की उत्पत्ति होती है जिससे निर्विकार चिन्दानन्दमई एक स्वभाव रूप परमात्मा की भावना का घात होता है।

समीक्षा:—गुण एवं गुणी अभेद होते हैं। गुण को छोड़कर गुणी नहीं रहता है और गुणी को छोड़कर गुण नहीं रहता है। विश्व में केवल जीव ही चैतन्यमय एवं सुख सम्पन्न है उसको छोड़कर और बाकी कोई भी द्रव्य चैतन्यमय एवं सुख रूपी नहीं है। शरीर इन्द्रियाँ भोगोपभोग की सामग्रियाँ आदि जड़मय हैं अतएव उनमें न ज्ञान है, न सुख है, न उनसे ज्ञान और सुख की उपलब्धि हो सकती है परन्तु संसारी जीव मोहनीय कर्म, वीर्यान्तरायकर्म, ज्ञानावरणीय कर्म आदि के उदय से शरीर जनित, इन्द्रिय जनित, भोगोपभोग जनित सुख दुःख को अनुभव करता है परन्तु जब मोहनीय आदि कर्म का अशेषक्षय हो जाता है तब उस जनित सुख दुःख का अनुभव नहीं करता है।

जयध्वला में वीरसेन स्वामी ने केवली के शारीरिक सुख-दुःख, प्यास आदि नहीं होने का अत्यन्त सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन निम्न प्रकार से किया है—

50. चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व के घात करने में असमर्थ हैं, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है।

शंका—चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी होते तो उनकी अघातिसंज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है।

51. नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण नहीं है, क्योंकि जिन क्षीण मोह हैं। इसलिये उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयु कर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीणमोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से राग द्वेष नहीं उत्पन्न होता है और आगे होने वाले लोक

शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कण्ठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिन के विद्यमान आयुर्कर्म अवगुणों का कारण नहीं है। तथा वेदनीय कर्म भी अवगुणों का कारण नहीं है, क्योंकि यद्यपि केवली जिन के वेदनीय कर्म का उदय पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने से अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। चार घातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिन के चार घातियाकर्म नहीं है, इसलिए जल और मिट्टी के बिना बीज जिस प्रकार अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार वेदनीय भी घातिचतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

शंका-दुःख को उत्पन्न करने वाले वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में घातिचतुष्क सहायक हैं, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान-यदि चार घातिया कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिन के रत्नत्रय की निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि घातिचतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

घातिकर्म के नष्ट हो जाने पर वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाय तो केवली जिन को भूख और प्यास की बाधा होनी चाहिये परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक तृष्णा के होने पर केवली भगवान् को मोहपने की आपत्ति प्राप्त होती है।

यदि कहा जाय कि केवली जिन तृष्णावश भोजन नहीं करते हैं किन्तु रत्नत्रय के लिये भोजन करते हैं तो ऐसा कहना भी युक्त नहीं है, क्योंकि केवली जिन पूर्ण रूप से आत्मस्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं, इसलिए वे रत्नत्रय अर्थात् ज्ञान, संयम और ध्यान के लिये भोजन करते हैं, यह बात सम्भव नहीं है। आगे इसी का स्पष्टीकरण करते हैं-केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो भोजन करते नहीं है, क्योंकि उन्होंने केवलज्ञान को प्राप्त कर लिया है। तथा केवलज्ञान से बड़ा और कोई दूसरा ज्ञान प्राप्त करने योग्य है नहीं, जिससे उस ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवली जिन भोजन करें। इससे यह निश्चित हो जाता है कि केवली जिन ज्ञान की प्राप्ति के लिये तो भोजन करते नहीं है। संयम के लिये केवली जिन भोजन करते हैं यह भी नहीं कहा

जा सकता है, क्योंकि उन्हें यथाख्यात संयम की प्राप्ति हो चुकी है। ध्यान के लिये केवली जिन भोजन करते हैं यह कथन भी युक्ति संगत नहीं है, क्योंकि उन्होंने पूर्णरूप से त्रिभुवन को जान लिया है, इसलिये उनके ध्यान करने योग्य कोई पदार्थ ही नहीं रहा है। अतएव भोजन करने का कोई कारण नहीं रहने से केवली जिन भोजन नहीं करते हैं यह सिद्ध हो जाता है। यदि केवली जिन आहार करते हैं तो संसारी जीवों के समान वे बल, आयु, स्वादिष्ट भोजन, शरीर की वृद्धि, तेज और सुख के लिए ही भोजन करते हैं ऐसा मानना पड़ता है परन्तु ऐसा नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर वे मोहयुक्त हो जायेंगे और इसलिए उनके केवलज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी।

‘अष्टावक्र गीता’ में ऋषि अष्टावक्र ने ‘आध्यात्मिक रहस्य’ का प्रतिपादन करते हुए राजा जनक को सम्बोधन निम्न प्रकार से किया है-

अन्तस्त्यक्त कषायस्य निर्द्वन्द्वस्य निराशिषः।

यद्वच्छयागतो भोगो न दुःखाय न तुष्टये॥ (14)

अन्तःकरण के राग-द्वेषादि कषायों को त्यागने वाले और शीत, उष्णादि द्वंद्व रहित तथा विषय मात्र की इच्छा से रहित जो ज्ञानी पुरुष है उसको देवगति से प्राप्त हुआ भोग न दुःखदायक होता है और न प्रसन्न करने वाला होता है।

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्व देवताः।

अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति॥ (2) अ.पृ. 50

बड़े आश्चर्य की वार्ता है कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता जिस आत्मपद की प्राप्ति की इच्छा करते हुए आत्मपद की प्राप्ति न होने से दीनता को प्राप्त होते हैं, उस सच्चिदानन्द स्वरूप आत्म पद के विषे स्थित अर्थात् ‘तत् त्वम्’ पदार्थ के ऐक्यज्ञान से आत्मपद के विषे वर्तमान आत्मज्ञानी विषय भोग से सुख को नहीं प्राप्त होता है और उस विषय सुख के नाश होने पर शोक नहीं करता है।

तज्ज्ञस्य पुण्यपापाभ्यां स्पर्शाह्यन्त न जायते।

नद्याकाशास्य धूमेन दृश्यमानापि सङ्गतिः॥ (3)

तत्त्वज्ञानी को अन्तःकरण के धर्म जो पुण्य-पाप उनसे सम्बन्ध नहीं होता है, वह वेदोक्त विधि-निषेध के बन्धन में नहीं होता है, क्योंकि जिसको आत्मज्ञान हो जाता है, उसके अन्तःकरण में पाप-पुण्य का सम्बन्ध नहीं होता है, जिस प्रकार धूम

आकाश में जाता है, परन्तु उस धूम का आकाश से सम्बन्ध नहीं होता है। गीता में श्री कृष्ण ने कहा है कि 'ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।' अर्थात् ज्ञानरूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्म रूपी ईन्धन को भस्मसात् करता है।

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।

निर्दोष हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्माणि ते स्थिताः॥

जिसका मन समत्व में स्थिर हो गया है उन्होंने इस देह में रहते ही संसार को जीत लिया है। ब्रह्म, निष्कलंक और समभावी है इसलिये वे ब्रह्म में ही स्थिर होते हैं।

अतीन्द्रिय ज्ञान ही केवलज्ञान

परिणमदो खलु णाणं पच्चक्खा सव्वदव्वपज्जाया।

सो णेव ते विजाणदि उग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं।। (21)

The omniscient who develops knowledge directly visualizes all objects and their modifications; he does never comprehend them through the sensational stages such as outline grasp.

आगे कहते हैं कि केवलज्ञानी अतीन्द्रिय ज्ञान में परिणमन करते हैं इस कारण से उनको सर्वपदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं। (खलु) वास्तव में (णाणं) अनन्त पदार्थों को जानने में समर्थ केवल ज्ञान को (परिणमदो) परिणमन करते हुए केवली अरहंत भगवान् के (सव्वदव्वपज्जाया) सर्व द्रव्य और उनकी तीन कालवर्ती सर्व पर्यायों (पच्चक्खा) प्रत्यक्ष हो जाती हैं। (स) वह केवली भगवान् (ते) उन सर्व द्रव्य पर्यायों को (ओग्गहपुव्वाहिं किरियाहिं) अवग्रह पूर्वक क्रियाओं के द्वारा (णेवविजाणदि) नहीं जानते हैं किन्तु युगपत् हैं ऐसा अर्थ है।

इसका विस्तार यह है आदि और अन्त रहित, बिना किसी उपादानकारण के सत्ता रखने वाले तथा चैतन्य और आनन्दमयी स्वभाव के धारी अपने शुद्ध आत्मा को उपादेय अर्थात् ग्रहण योग्य समझकर केवलज्ञान की उत्पत्ति का बीजभूत जिसको आगम की भाषा में शुक्ल ध्यान कहते हैं, वह होने से रागादि विकल्पों के जाल से रहित स्वयं संवेदन ज्ञान के द्वारा जब यह आत्मा परिणमन करता है तब स्वसंवेदनज्ञान के फलस्वरूप केवल ज्ञानमयी ज्ञानाकार में परिणमन करने वाले केवली भगवान् के उसी क्षण में, जब केवलज्ञान पैदा होता है, तब क्रम क्रम से जानने वाले मति ज्ञानादि

के अभाव से, बिना क्रम के एक साथ सर्वद्रव्य, क्षेत्र, काल सहित सर्व-द्रव्य, गुण और पर्याय प्रत्यक्ष प्रतिभासन हो जाते हैं, ऐसा अभिप्राय है।

समीक्षा-ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से जो केवलज्ञान प्रगट होता है वह केवलज्ञान अनंत ज्ञेय को प्रकाशित करने वाली शक्ति से युक्त होता है। एक जीव में असंख्यात आत्मप्रदेश होते हैं केवलज्ञानी के उस असंख्यात आत्म प्रदेश में से एक आत्म प्रदेश में जितनी ज्ञान रूपी ज्योति है, उस ज्योति से जो लोक-अलोक है उससे भी अधिक द्रव्य होता तो भी प्रकाशित हो जाता। इसलिए गुणभद्र स्वामी ने कहा है कि यह लोक-अलोक जिस ज्ञान के एक कोने में विलीन हो जाता है इसलिये केवलज्ञानी समस्त लोक-(विश्व) अलोक से सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थ/सत्य की त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को/अवस्थाओं को/परिणमन को स्पष्ट/विशद/युगपत्/एक साथ जानते हैं। यदि वे क्रम से जानेंगे तब वे सम्पूर्ण ज्ञेय को बहुकाल तक भी नहीं जान पायेंगे क्योंकि एक ही द्रव्य में अनंत गुण और अनंत पर्यायें होती हैं। तब एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात काल द्रव्य, अनंतानंत पुद्गल द्रव्य की अनंतानंत पर्यायों को कैसे जान सकेंगे? इसलिए केवली भगवान् अवग्रह, ईहा, आवाय, धारणापूर्वक नहीं जानते हैं परन्तु एक साथ देखते और जानते हैं। इतना ही नहीं, छद्मस्थ जीवों की ज्ञान प्रवृत्ति जिस प्रकार दर्शन पूर्वक होती है उसी प्रकार भी केवली भगवान् की प्रवृत्ति क्रम से नहीं युगपत् होती है। द्रव्य संग्रह में कहा भी है-

दंसणपुव्वं णाणं छदुमत्थाणं दोण्णिण उवओग्गा।

जुगवं जम्हा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि। (44)

छद्मस्थ जीवों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। क्योंकि छद्मस्थों के ज्ञान और दर्शन ये दोनों उपयोग एक समय में नहीं होते। तथा जो केवली भगवान् हैं उनके ज्ञान तथा दर्शन ये दोनों ही उपयोग एक समय में होते हैं।

कुछ श्वेताम्बर जैनाचार्य केवली के भी ज्ञान की प्रवृत्ति दर्शनपूर्वक होती है ऐसा मानते हैं परन्तु ऐसा मानने पर अनेक दोष उत्पन्न होते हैं क्योंकि मोह क्षय के बाद एक साथ ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तरायकर्म का क्षय होता है जिसके कारण केवलज्ञान एवं केवलदर्शन एक साथ निरावरण हो जाते हैं। एक साथ निरावरण होने का अन्य कोई कारण नहीं जिससे प्रवृत्ति क्रम से हो सके। जिस उमास्वामी आचार्य

को दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों मानते हैं उनकी कृति तत्वार्थ सूत्र में लिखा हुआ कि-

‘मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्’। (1)

मोह का क्षय होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रगट होता है।

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य। (29)

केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्यों और उनकी सब पर्यायों में होती है। राजवार्तिक में अकलक देव स्वामी इस सूत्र का वार्तिक करते हुए कहते हैं कि-

सर्व ग्रहणं निरवशेषप्रतिप्रत्यर्थ। (91)

ये लोकालोकभेदभिन्नस्त्रिकालविषया द्रव्यपर्याया अनन्ताः तेषु निरवशेषेषु केवलज्ञानस्य विषयनिबन्ध इति प्रतिपत्त्यर्थं सर्वग्रहणं यावल्लोकालोकस्वभावोऽनन्तः तावन्तोऽनन्तानन्ता यद्यपि स्युः तानपि ज्ञातुमस्य समर्थमस्तीत्यपरिमितमाहात्म्यं तत् केवलज्ञानं वेदितव्यं।

निरवशेष (सम्पूर्ण) का ज्ञान कराने के लिए सर्व शब्द को ग्रहण किया है। लोक और अलोक में त्रिकालविषयक जितने भी अनन्तानंत द्रव्य और पर्यायें हैं उन सब में केवलज्ञान के विषय का निबन्ध है अर्थात् उन सबको केवलज्ञान जानता है। जितने ये अनन्तानन्त लोक-अलोक द्रव्य हैं इससे भी अनन्तगुणे लोक और अलोक और भी होते तो भी केवलज्ञान जान सकता है। क्योंकि केवलज्ञान का माहात्म्य अपरिमित है ऐसा जानना चाहिए। परमात्म प्रकाश में भी योगेन्द्र देव ने इसी भाव को प्रगट किया है:-

गयणि अणांति वि एक्क उडु जेहउ भुयणु विहाइ।

मुक्कहँ जसु पए बिंबियउ सो परमाप्पु अणाइ।। (38)

जैसे अनंत आकाश में नक्षत्र है उसी तरह तीन लोक जिसके केवलज्ञान में प्रतिबिंबित हुए दर्पण में मुख की तरह भासता है, वह परमात्मा अनादि है।

ऐसे जो केवली भगवान् हैं वे किस कारण से क्रम से जानेंगे इसका आगमोक्त तार्किक वर्णन मुझे आज तक श्वेताम्बर साहित्य में नहीं मिला। इस विषय में मेरी (उपाध्याय कनकनदी) चर्चा अनेक श्वेताम्बर साधु, साध्वी एवं उपाध्याय से हुई है

परन्तु वे भी यथार्थ, आगम बद्ध तर्कशील उत्तर नहीं दे पाये। यहां तक तो कुछ साधुओं ने कहा-कि केवल ज्ञान एवं केवलदर्शन की प्रवृत्ति एक साथ होना चाहिए, नहीं तो अनेक दोष उत्पन्न होंगे, जिसका मैंने संक्षिप्त वर्णन ऊपर किया है। इतना ही नहीं दोनों परम्परायें जिस महान् दार्शनिक तार्किक सिद्धसेन को मानते हैं ऐसे महान् आचार्य ने अपनी कृति सन्मति सूत्र में क्रम प्रवृत्ति का खण्डन कर युगपत् प्रवृत्ति का मण्डन किया है। इसका उद्धरण हम निम्न में कर रहे हैं-

मणपज्जवणाणंतो णाणस्स य दरिसणस्स य विसेसो।

केवलणाणं पुणं दंसणं ति णाणं ति य समाणं।। (3)

ज्ञान और दर्शन के समय की भिन्नता मनः पर्ययज्ञान तक होती है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनः पर्ययज्ञान में दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है, पहले दर्शन होता है और उसके पश्चात् ज्ञान होता है। किन्तु केवलज्ञान या पूर्णज्ञान होने पर दर्शन और ज्ञान में क्रम नहीं होता। केवलज्ञान की अवस्था में ज्ञान और दर्शन एक साथ होते हैं। क्योंकि दर्शन और ज्ञान का क्रम छद्मस्थों (अल्पज्ञानियों) में पाया जाता है। केवलज्ञान में ज्ञान तथा दर्शन के उपयोग-काल में भिन्नता नहीं है।

केइ भणंति जइया जाणइ तइया ण पासइ जिणो त्ति।

सुत्तमवलंबमाणा तित्थयरासायणाभीरू।। (4)

कई (श्वेताम्बर) आचार्य तीर्थकरों की अवज्ञा से भयभीत हो आगम ग्रन्थों का अवलंबन लेकर यह कहते हैं कि जिस समय सर्वज्ञ जानते हैं उस समय देखते नहीं है। वे अन्य अल्प ज्ञानियों की भांति सर्वज्ञ में भी दर्शनपूर्वक ज्ञान क्रमशः मानते हैं। क्योंकि जिस समय जानने की क्रिया होगी उस समय देखने कि क्रिया नहीं हो सकती। और जिस समय देखने की क्रिया होगी उस समय जानने की क्रिया नहीं हो सकती। दोनों में समय मात्र का अन्तर अवश्य पड़ता है। किन्तु सर्वज्ञ के सम्बन्ध में यह कहना ठीक नहीं है।

केवलणाणावरणक्खयजायं केवलं जहा णाणं।

तह दंसणं पि जुज्जइ णि आवरणक्खयस्संते।। (5)

जिस प्रकार अवरोधक जलधरों (मेघ समूह) के हटते ही दिनकर का प्रताप एवं प्रकाश एक साथ प्रकट हो जाता है, उसी प्रकार कर्मों के आवरणों का अपसरण

होते ही केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि ज्ञान, दर्शन के आवरण के क्षय हो जाने पर कोई ऐसा कारण नहीं है, जिससे वे विद्यमान रह सकें।

भण्णइ खीणावरणे जह मइणाणं जिणे ण संभवइ।

तह खीणावरणिज्जे विसेसओ दंसणं णत्थि।। (6)

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँचों एक ही ज्ञान के भेद हैं। अल्पज्ञानी (छद्मस्थ) के इनमें से केवलज्ञान को छोड़ कर चार ज्ञान तक हो सकते हैं, किन्तु केवलज्ञानी के केवल एक केवलज्ञान ही होता है। इसलिए उनके मतिज्ञान नहीं होता। जिस प्रकार से केवली के मतिज्ञान नहीं होता, वैसे ही भिन्न-काल में केवलदर्शन भी सम्भव नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि केवली के ज्ञान, दर्शन एक साथ होते हैं, क्योंकि वह क्षायिक है-कर्म के क्षय होने पर उत्पन्न होता है।

सुत्तम्मि चेव साईअपंज्जवसियं ति केवलं वुत्तं।

सुत्तासायणभीरूहि तं च दडुव्वयं होइ।। (7)

आगम में केवलदर्शन और केवलज्ञान को सादि-अनन्त कहा गया है। अतः आगम की आसादना से डरने वालों को इस पर विशेष विचार करना चाहिए कि क्रम भावी मानने पर सादि-अनन्तता किस प्रकार बन सकती है? यदि ऐसा माना जाए कि जिस समय केवलदर्शन होता है, उस समय केवलज्ञान नहीं होता, तो इस मान्यता से आगम का विरोध करना है और इससे केवलदर्शन-केवलज्ञान में सादि अनन्तता न बनकर सादि-सान्तता घटित होगी जो आगमोक्त नहीं है। इसलिए आगम का विरोध न हो, इस अभिप्राय से क्रमभावित्व न मानकर युगपत्/समकाल-भावित्व मानना चाहिए।

संतम्मि केवले दंसणम्मि णाणस्स संभवो णत्थि।

केवलणाणम्मि स दंसणस्स तम्हा सणिहणाइं।। (8)

केवली भगवान् के केवलदर्शन के होने पर केवलज्ञान नहीं होता। इसी प्रकार केवलज्ञान होने पर केवलदर्शन नहीं होता। क्योंकि इस प्रकार का क्रमत्व उनके नहीं होता। दर्शनावरण और ज्ञानावरण का क्षय एक काल में समान रूप से होने के कारण केवलदर्शन और केवलज्ञान एक समय में एक ही साथ समान रूप से उत्पन्न होते हैं। फिर, यह प्रश्न उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता कि क्रमवाद पक्ष में केवली की आत्मा में ज्ञान, दर्शन में से पहले कौन उत्पन्न होता है?

दंसणणाणावरणक्खए समाणम्मि कस्स पुव्वयरं।

होज्ज सम उप्पाओ हंदि दुवे णत्थि उवओगा।। (9)

आगम का विरोध करने वालों के लिए स्पष्टीकरण के निमित्त यह गाथा कही गई है कि दर्शनावरण तथा ज्ञानावरण का विनाश एक साथ होने से केवलदर्शन और केवलज्ञान की उत्पत्ति एक साथ हो जाती है। यदि क्रम से माना जाए, तो दर्शन और ज्ञान में से किसकी उत्पत्ति पहले होती है? इसी प्रकार से दोनों उपयोग क्रम से होते हैं या अक्रम से? इसका स्पष्टीकरण यही है कि पूर्वापर क्रम से दर्शन, ज्ञान केवली में मानना न्याय संगत नहीं है। क्योंकि क्रमवाद पक्ष में इन दोनों में सावरण मानना पड़ता है जो सम्भव नहीं है। सामान्यतः दोनों उपयोग क्रम से होते हैं। परन्तु केवलज्ञान-काल में केवली सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ को एक ही समय में जानते हैं, इसलिए उनके दर्शन और ज्ञान उपयोग एक साथ होते हैं। वास्तव में कार्य रूप में भिन्न-भिन्न प्रतीति न होने के कारण सामान्यतः एक उपयोग कहा जाता है।

जइ सव्वं सायारं जाणइ एक्कसमएण सव्वण्णु।

जुज्जइ सया वि एवं अहवा सव्वं य याणाइ।। (10)

यदि सर्वज्ञ एक समय में सभी पदार्थ को सामान्य-विशेष रूप आकार सहित जानते हैं, तो यह मान्यता युक्ति युक्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार से मानने पर उनमें सर्वज्ञता, सर्वदर्शिता नहीं बन सकेगी। क्योंकि दोनों प्रकार के उपयोग (दर्शनोपयोग, ज्ञानोपयोग) अपने-अपने विषय को भिन्न-भिन्न से जानते हैं। जिस समय एक उपयोग सामान्य का ज्ञाता होता है, उस समय विशेष का ज्ञान कैसे हो सकता है? इसी प्रकार जब दूसरा उपयोग विशेष का ज्ञाता होता है, जो उसका कार्य भिन्न होता है। इसलिए वस्तु में पाए जाने वाले उभय धर्मों (सामान्य, विशेष) का ज्ञाता एक उपयोग नहीं हो सकता। अतएव इन उपयोगों में से क्रमशः जानने वाला सर्वज्ञ नहीं हो सकता। क्योंकि उनमें एक चैतन्य प्रकाश पाया जाता है।

परिसुद्धं सायारं अवियत्तं दंसवं अणायारं।

ण य खीणावरणिज्जे जुज्जइ सुवियत्तमवियत्तं।। (11)

यह कथन करना कि केवली जिस समय साकार ग्रहण करते हैं, उस समय केवलदर्शन (अनाकार) अव्यक्त रहता है और जब वे दर्शन ग्रहण करते हैं, तब

साकार अव्यक्त होता है, उचित नहीं है, क्योंकि उपयोग की यह व्यक्त एवं अव्यक्त दशा आवरण का सर्वथा विलय कर देने वाले केवली में नहीं बनती है।

अद्विदुं अण्णायं च केवली एव भासइ सया वि।

सगसमयम्मि हंदी वयणवियप्पो ण संभवइ॥ (12)

केवली सदा ही अदृष्ट, अज्ञात पदार्थों का कथन करते हैं-ऐसा कहने से वे दृष्ट एवं ज्ञात पदार्थों के एक समय में उपदेशक होते हैं, यह वचन नहीं बन सकता है।

अण्णायं पासंतो अद्विदुं च अरहा वियाणंतो।

किं जाणइ किं पासइ कह सव्वण्हु त्ति वा होइ॥ (13)

यदि केवली अर्हन्त पदार्थ के द्रष्ट और अदृष्ट पदार्थ के ज्ञाता है, तो इस स्थिति में उनमें एक समय में सर्वदर्शित्व तथा सर्वज्ञत्व की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि उनमें विद्यमान दर्शन, ज्ञान, अपने-अपने विषय को देखने-जानने वाला है। जिस समय वह देखेंगे, उस समय जानेगे नहीं और जिस समय जानेगे, उस समय देखेंगे नहीं। इस प्रकार एक समय में एक साथ सामान्य-विशेष को जानने वाला उपयोग नहीं होगा। अतः उनमें सर्वदर्शित्व तथा सर्वज्ञत्व भी नहीं बन सकता।

केवलणाणमणंतं जहेव दंहणं पि पण्णत्तं।

सागारग्गहणाहि य णियमपरित्तं अणागार। (14)

आगम में केवली भगवान् का दर्शन और ज्ञान अनन्त कहा गया है। परन्तु उनके दर्शन, ज्ञान के उपयोग में क्रम माना जाय तो साकार ग्रहण की अपेक्षा से परिमित विषय वाला होगा, जिससे उनके दर्शन में अनन्तता नहीं बन सकती। अतएव केवली भगवान् में एक समय में ही दोनों उपयोग मानना चाहिए।

केवलज्ञान के लिए परोक्ष कुछ भी नहीं है-

णत्थि परोक्खं किंचि वि समंत सव्वक्खगुणसमिद्धस्स।

अक्खातीदस्स सदा सयमेव हि णाणजादस्स॥ (22)

आगे कहते हैं-केवलज्ञानी को सर्व प्रत्यक्ष होता है, यह बात अन्वयरूप से पूर्व सूत्र में कही गई। अब केवलज्ञानी को कोई भी विषय परोक्ष नहीं है, इसी बात को व्यतिरेक से दृढ़ करते हैं।

(समंत) समस्तपने अर्थात् सर्व आत्मा के प्रदेशों के द्वारा (सर्वखगुणसमिद्धस्स) सर्व इन्द्रियों के गुणों से परिपूर्ण अर्थात् स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द के जानने रूप जो इन्द्रियों के विषय उन सर्व के जानने की शक्ति सर्व आत्मा के प्रदेशों में जिसके प्राप्त हो गई है ऐसे तथा (अक्खातीदस्स) इन्द्रियों के व्यापार से रहित अथवा ज्ञान करके व्याप्त है आत्मा जिसका ऐसे निर्मल ज्ञान से परिपूर्ण और (सयमेव हि) स्वयमेव ही (णाणजादस्स) केवलज्ञान में परिणमन करने वाले अरहंत भगवान् के (किंचि वि) कुछ भी (परोक्खं) परोक्ष (णत्थि) नहीं है।

भाव यह है कि परमात्मा अतीन्द्रिय स्वभाव है। परमात्मा के स्वभाव से विपरीत क्रम से ज्ञान में प्रवृत्ति करने वाली इन्द्रियाँ हैं। उनके द्वारा जानने से जो उल्लंघन कर गये हैं अर्थात् जिस परमात्मा के पराधीन ज्ञान नहीं है ऐसे परमात्मा तीन कालवर्ती समस्त पदार्थों को एक साथ प्रत्यक्ष जानने को समर्थ अविनाशी तथा अखंडपने से प्रकाश करने वाले केवल ज्ञान में परिणमन करते हैं, अतएव उनके लिए कोई भी परोक्ष नहीं है। इस तरह केवलज्ञानियों को सर्व प्रत्यक्ष होता है।

समीक्षा—आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है। ज्ञान स्वरूप होने के कारण स्वयं से ही आत्मा देखता है, जानता है, उसके लिए अन्य बाह्य साधनों की आवश्यकता नहीं रहती है परन्तु जब ज्ञान कर्मरूपी आवरण से आवृत्त हो जाता है तब वह ज्ञान प्रत्यक्ष रूप से जब कुछ नहीं देख पाता है, न ही जान पाता है, उस समय में वह बाह्य साधनों के माध्यम से कुछ देखता है। जैसे कोई व्यक्ति एक गृह के अन्दर है बाहर कुछ देखता है तब वह द्वार या खिड़की के माध्यम से देखता है। उस व्यक्ति के खिड़की या द्वार के माध्यम से देखने पर भी खिड़की या द्वार स्वयं नहीं देखते हैं परन्तु उसके माध्यम से व्यक्ति देखता है, वैसे ही कर्म रूपी गृह में आबद्ध जीव इन्द्रियाँ, मन, प्रकाश आदि से देखता है, जानता है इन्द्रियादि स्वयं नहीं देखते हैं परन्तु उनके माध्यम से जीव देखता है या जानता है। जैसे आवरण से रहित खुले मैदान में स्थित व्यक्ति बिना खिड़की या द्वार से बाहर देखता है उसी प्रकार ज्ञानावरणादि आवरण से रहित जीव बिना इन्द्रियों से देखता है, जानता है। इन्द्रियों के बिना देखने व जानने पर भी जीव इन्द्रियों के विषय के साथ-साथ इन्द्रियातीत विषयों को भी देखता है और जानता है। इतना ही नहीं छद्मस्थ जीव इन्द्रियों से जो विषय जानता है उससे भी

अधिक स्पष्ट उस इन्द्रिय के विषय को केवलज्ञानी जानते हैं। जैसे-सामान्य चक्षु से सामान्य व्यक्ति जितना देखता है उससे भी अधिक स्पष्ट सूक्ष्मदर्शी या दूरदर्शी यंत्र से देख सकता है। सर्वज्ञ भगवान् समस्त इन्द्रियों के विषय को देखते व जानते हुए भी सामान्य रागी, द्वेषी, मोही जीव के समान ज्ञेय से न मोहित होते हैं, न आकर्षित-विकर्षित होते हैं। वे पाँचों इन्द्रियों के विषय को प्रत्येक प्रदेशस्थ केवलज्ञान से जानते हैं। केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार अलौकिक शक्ति का वर्णन गौतम गणधर स्वामी ने निम्न प्रकार से किया है-

यः सर्वाणि चराचराणि विधिवद्, द्रव्याणि तेषां गुणान्,

पर्यायानपि भूत-भावि-भवितः, सर्वान् सदा सर्वदा।

जानीते युगपत्-प्रतिक्षणमतः सर्वज्ञ इत्युच्यते,

सर्वज्ञाय जिनेश्वराय महते, वीराय तस्मै नमः।। (प्रति.)

जो सम्पूर्ण चर-अचर द्रव्यों को, उनके सहभावी गुणों को और क्रमभावी भूत, भावी तथा वर्तमान सब पर्यायों को भी सदा सर्वकाल अशेष विशेषों को लिए हुए युगपत् (कालक्रम से रहित एक साथ) प्रतिक्षण जानते हैं, इसलिए उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं, उन सर्वज्ञ महान् गुणोत्कृष्ट, अंतिम तीर्थंकर वीर जिनेश्वर को नमस्कार हो।

हे आयुष्मान् भव्यो! इस विश्व में देव, असुर और मनुष्यों सहित प्राणीगण को अन्य स्थान से यहां आना, यहां से अन्य गति में जाना, च्यवन और उपपाद अर्थात् च्युत होना और जन्म लेना कर्मों का बंध, कर्मों का छुटकारा, ऋद्धि, स्थिति द्युति-चमक, कर्मों का फल देने का सामर्थ्य, तर्क, शास्त्र, बहत्तरकला या गणित विद्या परकीयचित्त मनकी चेष्टा पूर्वकृत पुनः सेवित कर्मभूमि से अनुप्रवेश में प्रथमतः प्रवृत्त असि, मसि कृष्यादिककर्म अकृत्रिमद्वीप समुद्रादिका प्रकट कर्म तीन सौ तैतालीस रज्जुप्रमाण सर्वलोक में सब जीवों को सब भावों और सब पर्यायों को एक साथ जानते हुए देखते हुए विहार करते हुए काश्यप गोत्रीय, श्रमण, भगवान्, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी महतिमहावीर अन्तिम तीर्थंकर देखते हुए पच्चीस भावनाओं सहित, मातृका पदों सहित, उत्तरपदों सहित रात्रि भोजन विरमण है छठा अणुव्रत जिनमें ऐसे पाँच महाव्रतरूप समीचीन धर्मों का उपदेश किया है, वह मैंने उनकी दिव्यध्वनि से सुना है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।

दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र।। पु.सि.उ. (1)

जिसमें सम्पूर्ण अनन्तपर्यायों से सहित समस्त पदार्थों की माला अर्थात् समूह दर्पण के तल भाग के समान झलकती है, वह उत्कृष्ट ज्योति अर्थात् केवलज्ञान रूपी प्रकाश जयवंत हो।

संपुण्णं तु समगं केवलमसवत्त सव्वभावगयं।

लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदव्वं।। (460 गो.जी.)

यह केवलज्ञान, सम्पूर्ण, केवल (स्वाधीन) प्रतिपक्ष रहित, सर्व पदार्थगत और लोकालोक में अन्धकार रहित होता है।

असहायं स्वरुपोत्थं निरावरणमक्रमम्।

घातिकर्मक्षयोत्पन्नं केवलं सर्वभावगम्।। (30 त.सा.)

जो किसी बाह्य पदार्थ की सहायता से रहित हो, आत्म स्वरूप से उत्पन्न हों, आवरण से रहित हो, क्रमरहित हो, घातिया कर्मों के क्षय से उत्पन्न हुआ हो तथा समस्त पदार्थों को जानने वाला हो, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

जया सव्वत गणाणं दंसणं चाभिगच्छई।

तया लोगमलोगं च जिणो जाणइ केवली।। (दशवैकालिक)

जब मनुष्य सर्वत्रगामी ज्ञान और दर्शन-केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त कर लेता है तब वह जिन और केवली होकर लोक-अलोक को जान लेता है।

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य।

अणेण णाणे त्तिणं वेत्ति।। (299 गो.जी.)

जिसके द्वारा जीव त्रिकालविषयक भूत-भविष्यत् वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको केवलज्ञान कहते हैं।

सूक्ष्मान्तरित-दूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।

अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरित सर्वज्ञ संस्थितिः।। (5 देवागम)

सूक्ष्म पदार्थ-स्वभावविप्रकर्षि परमाणु आदिक-अन्तरित पदार्थ-काल से अन्तर

को लिए हुए काल विप्रकर्षि राम-रावणादिक, और दूरवर्ती पदार्थ-क्षेत्र से अन्तर को लिए हुए क्षेत्र विप्रकर्षि मेरु-हिमवानादिक, अनुमेय (अनुमान का अथवा प्रमाण का विषय) होने से किसी से किसी के प्रत्यक्ष जरूर हैं, जैसे-अग्नि आदिक पदार्थ जो अनुमान या प्रमाण का विषय है, वे किसी के प्रत्यक्ष जरूर हैं। जिसके सूक्ष्म, आन्तरिक और दूरवर्ती पदार्थ प्रत्यक्ष है वह सर्वज्ञ हैं। इस प्रकार सर्वज्ञ की सम्यक् स्थिति, व्यवस्था अथवा सिद्धि भले प्रकार सुघटित है।

लक्ष्यानुसार निर्णय

अब मैंने फैसला कर लिया है कि मैं क्या बनना चाहता हूँ, मैं क्या करना चाहता हूँ और मेरे पास क्या होना चाहिए।

जीवन के उस अद्भुत सफर में मुझे मालूम है कि मैं कहा हूँ और कहाँ जाना चाहता हूँ।

प्रतिदिन मेरी आंतरिक दिशा-निर्देशक प्रणाली मेरे लिए श्रेष्ठ कार्य-योजना बनाती है।

चूँकि मैंने अपनी आकांक्षाओं को स्पष्ट एवं पूर्ण विवरण के साथ परिभाषित कर दिया है, इसलिए मुझे अब सहज रूप से बिल्कुल वही प्राप्त हो रहा है, जो मुझे चाहिए।

मुझे हमेशा ही बिल्कुल वही प्राप्त होता रहता है, जिसकी मुझे जरूरत होती है; क्योंकि मैं बिल्कुल उन्हीं चीजों को आकर्षित करता रहता हूँ, जो मुझे चाहिए।

मैं स्पष्ट रूप से यह परिकल्पना करता हूँ कि मेरा आदर्श जीवन कैसा होगा।

मैं सहज रूप से अपनी कल्पना के अनुरूप सफल और संतुलित जीवन का निर्माण कर रहा हूँ।

मैं सुरक्षित रूप से सही दिशा में आगे बढ़ रहा हूँ, क्योंकि मेरे आदर्श जीवन की कल्पना बिल्कुल स्पष्ट है और मुझे अपने अगले सही कदम का पता है, जो मुझे लेना है।

मैं शांत-भाव से अपना ध्यान अपने लक्ष्य पर केंद्रित करता हूँ। 'इसे कैसे प्राप्त करें' मेरा दिशा-निर्देशन करता रहता है, जब भी मुझे इसकी जरूरत पड़ती है।

मैं प्रसन्नचित्त भाव से बड़े-बड़े सपने देखता हूँ और उन्हें साकार करने के लिए उपयुक्त लोगों को आकर्षित करता रहता हूँ।

(मनचाहे लक्ष्य प्राप्त करने की जादुई पुस्तक)

जैक कैनफील्ड राम गंगलानी

अपने भीतर अन्वेषण

श्रेष्ठ सफल होने के लिए मैंने अपने भीतर अंतर्ज्ञान को विकसित किया है। अपने अंतःकरण पर विश्वास करना और अपने अंतर्मन के निर्देशों का अनुसरण करना सीखा है।

जब मैं नियमित रूप से मनन करता हूँ तो मुझे यह पता चलता है कि अपने अधिकांश प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए मैं अपने भीतर की छोटी सी आवाज तक भी पहुँचने में समर्थ हूँ।

मैं अपने अंतर्ज्ञान का उपयोग अधिक धन कमाने, बेहतर फैसला करने, अपनी समस्याओं का तेजी से समाधान करने और सफल व्यापारिक योजनाएँ व रणनीतियाँ बनाने में करता हूँ।

वे सभी संसाधन, जिनकी मुझे जरूरत है, वे मेरे अपने मस्तिष्क में ही हैं। जरूरत तो अपने अंतर्ज्ञान को सफलता के उच्चतर स्तर को प्राप्त करने के लिए दोहन करने की है।

चिंतन-मनन के नियमित अभ्यास से मुझे अपने मानसिक एवं भावनात्मक व्यवधानों को दूर करने और अपने भीतर की सूक्ष्म धारणाओं को जानने में मदद मिलती है।

चिंतन-मनन से मेरे मस्तिष्क को आंतरिक शांति की भावना से शांति मिलती है। ऐसी स्थिति में मैं अपने भीतर के विचारों का दोहन करता हूँ, जिससे मुझे अपने कार्यों को पूरा करने में, किसी भी समस्या के समाधान करने में और कोई भी लक्ष्य प्राप्त करने में मदद मिलती है।

जब मैं चिंतन-मनन करता हूँ तो मैं आध्यात्मिक रूप से और अधिक तालमेल बिठा पाता हूँ। अब मैं अपने अंतःकरण की आवाज को अच्छी तरह

पहचान पाता हूँ, जो कि शब्दों, चित्रों एवं भावनाओं के द्वारा मुझसे बातें करते हैं।

जब कभी भी मेरे मस्तिष्क में कोई प्रश्न आता है तो मैं चिंतन-मनन करता हूँ और शांत एवं तनाव-मुक्त भावना से अपने भीतर ही उसकी पड़ताल करता हूँ। मेरा आंतरिक प्रहरी शीघ्र ही उसका उत्तर लेकर मेरे पास आता है; भीतर गहराई में मेरे लिए कुछ सही मौजूद होता है।

जो संदेश मैं अपने अंतर्मन से प्राप्त करता हूँ, उसमें एक प्रकार की अधिक स्पष्टता और उपयुक्त होने की भावना, आवेग तथा जोश होता है।

मुझे अंतःकरण से मिलनेवाला ज्ञान प्रायः तब प्राप्त होता है, जब मैं तनाव-मुक्त होता हूँ और इसे प्राप्त करने के लिए खुले मन से तैयार होता हूँ।

जब कोई फैसला करने के लिए मुझे किसी मदद की जरूरत होती है तो मैं समय निकालकर रुकता हूँ, गहरी साँस लेता हूँ, उस प्रश्न पर विचार करता हूँ और अपने अंतःकरण के प्रभावों को स्वयं तक आने देता हूँ, जो कि मेरा सही दिशा-निर्देशन करते हैं, जिसकी मुझे जरूरत होती है।

अपने अंतःकरण की प्रेरणाओं द्वारा मुझे ज्ञान की सहज और बिना किसी प्रयास के प्राप्ति होती है। यह एक प्रकार की स्वचालित प्रक्रिया बन गई है, क्योंकि मैंने अपने अंतःकरण पर पूरी तरह भरोसा करना सीख लिया है।

चूँकि मैं अपने अंतःकरण तथा स्वयं पर और अधिक भरोसा करता हूँ, मैं स्वयं को और अधिक सफल व्यक्ति के रूप में देखता हूँ।

मैंने और अधिक सफल होने के लिए अपनी वाणी पर नियंत्रण कर लिया है और अपने शब्दों के ऊपर मेरा पूर्ण नियंत्रण होता है।

मैं उच्च मनोबल के साथ बोलता हूँ, क्योंकि मैंने दूसरों के साथ बात करते समय अपनी वाणी में श्रेष्ठता का संकल्प लिया है।

अब मैं केवल ऐसे ही शब्द बोलता हूँ, जो आत्मसम्मान और आत्मविश्वास बनाते हैं, जो कि संबंधों और सपनों को बनाते हैं।

मेरे वार्तालाप प्रोत्साहन, प्रशंसा, प्रेम, स्वीकृति, संभावना और सकारात्मकता से भरे होते हैं।

चूँकि मैं हमेशा ही श्रेष्ठता के साथ बोलना पसंद करता हूँ, मैं दूसरों की योग्यता को भी बढ़ाता और पुष्ट करता हूँ।

चूँकि मैं श्रेष्ठता के साथ बोलता हूँ, मुझे महसूस होता है कि मेरे शब्दों में न सिर्फ मेरे लिए बल्कि दूसरों के लिए भी शक्ति है।

मेरी श्रेष्ठता मुझे और स्पष्टतया के साथ देखने वे सोचने में मदद करती है। इस प्रकार मैं अपने कार्यों एवं निर्णयों में और अधिक प्रभावशाली हो गया हूँ।

जब मैं बोलता हूँ तो मेरे शब्दों का हमेशा उन बातों के साथ तालमेल होता है, जो मैं अपने नजरिए और सपनों में पैदा करना चाहता हूँ।

एक सफल व्यक्ति के रूप में मैं समावेश न के शब्द बोलता हूँ, स्वीकृति के शब्द बोलता हूँ और सहिष्णुता के शब्द बोलता हूँ।

चूँकि मैं इस बात के प्रति सजग हूँ कि मेरे शब्दों से इस संसार में एक प्रभाव पैदा होता है, इसलिए मैं अपने शब्दों को चुनता हूँ, और सिर्फ वही बनाता हूँ, जो कि सकारात्मक है।

जो शब्द मैं बोलने के लिए चुनता हूँ, वे श्रोताओं का मनोबल बढ़ाते हैं और उन्हें प्रेरित करते हैं, जिससे आगे के लिए वेग पैदा होता है, आत्मसम्मान एवं आत्मविश्वास पैदा होता है और उनके मन में खतरा उठाने तथा कार्य करने की इच्छा पैदा होती है।

मैं यह कोशिश करता हूँ कि मैं जिनसे भी संवाद करता हूँ, उनमें से प्रत्येक के बारे में कुछ-न-कुछ प्रशंसा करूँ।

मुझे मालूम है कि मैं श्रेष्ठ हूँ, क्योंकि मैं अपने जीवन के सभी क्षेत्रों में होनेवाले बदलावों को देखता हूँ। अब मैं प्रसन्नचित्त, शांत और संतुष्ट महसूस करता हूँ।

असामान्य प्रशंसा का अभ्यास

श्रेष्ठ संभावित तरीके से अपनी प्रशंसा व्यक्त करने के लिए मैं दूसरे व्यक्ति के हाथ को अपने हाथ में लेता हूँ, दूसरे व्यक्ति की आँखों में प्रत्यक्ष रूप से देखता हूँ और पूरी निष्ठा के साथ एवं अभिव्यक्त रूप से कहता हूँ, “मैं आपकी और आपके प्रयासों की प्रशंसा करता हूँ।” फिर उस व्यक्ति को मैं अपनी प्रशंसा के स्मारक के तौर पर एक कार्ड या उपहार देता हूँ।

जब मैं पूरी निष्ठा के साथ दूसरों की प्रशंसा करता हूँ और अपना आभार व्यक्त करता हूँ, मैं कँपकँपी की श्रेष्ठ अवस्था में होता हूँ और गहरी प्रसन्नता व परिपूर्णता की भावना से भरा रहता हूँ।

चूँकि मैं आभार व्यक्त करता हूँ और अपने जीवन में प्राप्त होनेवाली सभी चीजों पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूँ, अतः मैं और अधिक पर्याप्तता को आकर्षित करता रहता हूँ और अधिक प्राप्त करता रहता हूँ तथा उनके लिए आभार व्यक्त करता हूँ।

आभारी होने के लिए अधिक आकर्षित करना अब हमेशा बढ़ती हुई प्रचुरता की ऊपर बढ़ती हुई प्रक्रिया बन गई है, जो लगातार बेहतर से बेहतर ही होती जा रही है।

लोग मेरे द्वारा दिए गए उपहार के लिए जितना आभारी होते हैं, मैं उतना ही ज्यादा उन्हें और अधिक उपहार देने के लिए प्रेरित होता हूँ।

दूसरों के प्रति गहरा आभार और निष्ठापूर्ण प्रशंसा मेरी देने की आदत को और मजबूत करती है।

मैंने एक श्रेष्ठ मानव होने का, जो कि मैं हूँ, मेरे पास जो सकारात्मक गुण हैं और अद्भुत उपलब्धि, जो कि मैंने हासिल की है, के होने को स्वीकार करने की शपथ ली है।

अपनी सहमतियों को याद रखना

मेरा अपना सोचना और आचरण का स्थापित व्यक्तिगत स्तर औसत से काफी ऊँचा है। इसलिए मैं अपने ही उच्चतम स्तर के अनुरूप जीवन-यापन करता हूँ।

यदि मैं दबाव में हूँ, तब भी मैं गर्व और अभिमान बनाए रखता हूँ। इसलिए अफरा-तफरी के बीच में भी मैं एक महान् नेता की तरह काम करता हूँ, क्योंकि मैं शांत और व्यवस्थित रहता हूँ।

मेरी शांति से लोगों को यह विश्वास करने का साहस और भरोसा होता है कि अंततः सबकुछ सही हो जाएगा।

मेरे एक अच्छा रोल मॉडल होने के कारण लोगों को उस स्तर पर सोचने और काम करने का साहस मिलता है, जिससे उन्हें खुद आश्चर्य होता है।

मैं अपनी मानवता के संपर्क में रहता हूँ और दूसरों की मानवता के लिए मुझमें गहरी समझ व दया भाव आता है।

मेरे सजग विचार और कार्यों के कारण मुझमें हर परस्थिति को आनंददायक, अर्थपूर्ण और स्मरणीय रूप में बदल देने का सामर्थ्य आता है।

मैं शिष्टाचार, सम्मान, प्रशंसा और कृतज्ञता के साथ श्रेष्ठता से काम करता हूँ, जिससे हमेशा मेरा आत्मा उदारता रहता है।

मैं अपनी सभी कार्यों के लिए खुद को जिम्मेदार मानता हूँ और अपनी असफलता के लिए सच बताता हूँ। इसके परिणामस्वरूप मैं अपनी असफलता को उन्नति में बदल देता हूँ।

मैं हमेशा बड़े लक्ष्य स्थापित करता हूँ और उसे प्राप्त करता हूँ, जिसके लिए मुझे निरंतर विकास और प्रगति करने की जरूरत होती है। इससे यह सुनिश्चित होता है कि मैं संसार में बड़े मूल्यों को जोड़ता रहूँ।

चूँकि मैं हर किसी से एक अद्भुत तरीके से मिलता हूँ, मुझे अपने लिए और दूसरों के लिए जीवन बेहतर बनाने के नए-नए तरीके का पता चलता है। इससे उन्हें भी अपनी अद्भुतता को संसार के सामने व्यक्त करने की आजादी और संभावना मिलती है।

मैं सजग रूप से अपने प्रमुख विचारों व आदर्शों को चुनकर और ऐसी संरचना का निर्माण करके, जो मेरी आकांक्षाओं एवं योग्यताओं को पूरा करती है, मैं अपने आप पर विश्वास को बनाता हूँ।

जो विचार, आदर्श और नई संरचनाएँ मैं बनाता हूँ, वे मेरी और दूसरों की भी पूर्ण अभिव्यक्ति में मदद करती हैं। वे ऐसे वातावरण का निर्माण करती हैं, जो और अधिक रचनात्मकता, सहयोग एवं वृद्धि को प्रोत्साहन देते हैं।

मैंने अपना जीवन उच्चतर मूल्यों के आधार पर बिताने का निर्णय लिया। इसके परिणामस्वरूप मैंने ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को पूरे उत्साह के साथ अपनी ओर आकर्षित होते देखा।

अद्भुत कर्ता होने के कारण मैं लोगों को अपने क्षेत्र में शामिल होने के लिए आकर्षित करता हूँ, क्योंकि वे मुझे एक सफल व्यक्ति के रूप में देखते हैं और एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखते हैं, जो क्षमताओं को विस्तार दे सकता है।

एक अद्भुत कर्ता होने के कारण मैं सहज रूप से उन लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता हूँ, जो अपने क्षेत्र के शिखर पर हैं।

मैं अपने अतिथियों का बहुत सम्मान करता हूँ-उन्हें अत्यंत सम्मानित महसूस कराकर और उन्हें मान, सम्मान व सत्कार देकर। मेरे अतिथि मुझे हमेशा एक ऐसे विशिष्ट व्यक्ति के रूप में देखते हैं, जिन्हें वे आसानी से नहीं भूल सकते हैं।

मैं हमेशा अच्छे कपड़े पहनता हूँ, अच्छा खाना खाता हूँ, और स्वयं को पूरे परिष्करण एवं स्टाइल के साथ रखता हूँ।

मैं अपने आस-पास के सभी लोगों के साथ प्यार, सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ व्यवहार करता हूँ। परिणामतः सभी मेरे साथ हमेशा बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं।

वही प्राप्त होता है, जो लक्ष्य बनाते

अब मुझ पर यह बात पूरी तरह से स्पष्ट हो गई है कि मैं जिस चीज पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूँ, उसकी मुझे और ज्यादा प्राप्ति होती रहती है।

चूँकि मैं अधिकता पर अपना ध्यान केंद्रित करता हूँ, मुझे अधिक धन, संपत्ति और मित्रों की प्राप्ति होती रहती है।

मुझे संपत्ति और अधिकता की प्राप्ति की उत्कट इच्छा है और यह सुनिश्चित करता है कि मेरे आसपास अधिक-से-अधिक धन मौजूद हो।

चूँकि मैंने धनवान् बनने का सजग निर्णय लिया है, मैं दिन-प्रतिदिन धनवान् बनता जा रहा हूँ।

मैं अपने दिल की अथाह गहराइयों से यह फैसला लिया है कि मुझे जीवन में धन की प्राप्ति करनी है। प्रसन्नचित्त रूप से यह एक वास्तविकता बन गई है।

मैंने यह निर्णय किया है कि मुझे उसी तरह का जीवन अभी और अवकाश प्राप्त करने के बाद चाहिए। अब मेरे पास वह धन आ रहा है, जिसकी जरूरत मुझे अपने सपनों का जीवन जीने के लिए होगी।

मैं अपने वर्तमान कुल योग्य और भविष्य में क्या बनना चाहता हूँ, के प्रति पूरी तरह से सजग हूँ। इस प्रकार की सटीक जागरूकता मुझे वित्तीय रूप से सफल होने की ओर प्रेरित कर रही है।

मैं ईश्वर के कामों के लिए अपनी आय का 10 प्रतिशत नियमित रूप से देता हूँ, ताकि उसका यह संसार गतिमान रहे। इससे मुझे निरंतर प्रचुरता प्राप्त होती रहती है।

दान देने के इस साधारण कार्य के कारण प्रचुरता के स्वामी के साथ मेरा एक प्रकार का आध्यात्मिक संबंध बन जाता है, जिससे मेरे अंदर दूसरों के प्रति प्रेम की भावना उत्पन्न होती है।

मैं खुशी-खुशी दान करता हूँ, क्योंकि मेरे पास ईश्वर की अविश्वसनीय असीम अनुकंपा और उसकी उदारता के लिए मैं उसके प्रति बहुत ज्यादा आभारी हूँ।

समय और धन के रूप में मैं जो कुछ भी योगदान करता हूँ, उससे उसे प्राप्त करनेवाले और मेरे जीवन में बहुत अंतर आता है, क्योंकि यह मेरे जीवन में आनेवाली प्रचुरता की धारा का और विस्तार करता है।

अपनी अर्जित संपत्ति की दूसरों के साथ साझेदारी की मेरी उत्सुकता से मुझे हमेशा बढ़ते रहनेवाली संपत्ति की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

सेवा करने की विधि ढूँढना

अब आनंदपूर्वक स्वेच्छा से अपने समुदाय में उनकी सेवा करने को तैयार रहता हूँ, जिनको कोई जरूरत होती है। उससे मुझे गहरी संतुष्टि और परिपूर्णता का अनुभव होता है।

जब कभी भी मैं अपनी सेवाओं और अपने समय को स्वेच्छा से किसी के लिए देता हूँ, मुझे हमेशा उसके बदल में कहीं ज्यादा प्राप्त होता है।

अपनी स्वेच्छा से मदद की भावना के कारण मेरी सफलता के लिए महत्वपूर्ण कौशलों का और भी तेजी के साथ विकास करने में मुझे मदद मिलती है।

स्वेच्छा से किए गए कार्यों के कारण शक्तिशाली संबंधों के विशाल नेटवर्क को बनाने में मुझे मदद मिलती है। उससे मुझे हर प्रकार के लोगों से मिलने का मौका मिलता है, जिनके कि मैं अन्यथा कभी नहीं मिल पाता।

मैं अपना बहुत ज्यादा समय सेवा में बिताता हूँ। इससे उदार और सेवा भाववाले लोगों का एक बड़ा नेटवर्क बन जाता है, जो दान देने में उदार होते हैं और वे इस संसार में बदलाव लाना पसंद करते हैं।

आत्मानुसन्धान-आत्म सम्बोधन

स्व-तन के निवासी को मोही-कुज्ञानी न जाने!

स्व-उपलब्धि ही सर्वोच्च उपलब्धि

स्व उपलब्धि शून्य सभी ही जीव दीन-हीन-अहंकारी-कुज्ञानी

(चाल: इस तन के पंछी रे!...)

निज/(स्व) तन के निवासी रे!...होऽऽऽ...तव स्वरूप/(स्वभाव) न जाने मोही...

मोही तो तन को ही स्वरूप माने...मोह से मोहित होय रे...तव...(ध्रुव)...

अनादि-अनन्त-शाश्वतिक तू...स्वयम्भू व स्वयंपूर्ण तू ही...

चैतन्य-अमूर्तिक शुद्ध आत्मा...अनन्त ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय...(1)...

जन्म-जरा-मरण तेरा न रूप...बालक-युवा-वृद्ध न तू ही...

तुझे न कोई जन्म दे सके...नाश न कर सके कोई रे...तव...(2)...

तेरे न माता-पिता-भ्राता-बन्धु...स्वजन-परजन शत्रु-मित्र कोई...

तू न मनुष्य-पशु-कीट-पक्षी...न ही दीन-हीन-दम्भी रे...तव...(3)...

तू न तन-मन-इन्द्रिय-मस्तिष्क...न तू काला-गोरा धनी-गरीब रे...

तू न अन्य के मालिक-दास...न कर्ता-धर्ता-विधाता रे...तव...(4)...

पढ़ाई-नौकरी-व्यापार-विवाह...परिवार पोषण व सम्बर्द्धन...

राजा-महाराजा-चक्री-इन्द्र बनना...भोगोपभोग से ले शत्रु को हराना...तव...(5)...

साधु बनकर भी आत्मोपलब्धि बिन...समस्त बाह्य तप त्याग ज्ञान...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व...ढोंग-पाखण्ड धन जन मान/(नाम) रे...(6)...

ये सभी तेरे परभाव-विभाव...द्रव्यभाव नोकर्म से जायमान...

यथा आकाश का वर्ण पुद्गलजन्य...तथाहि विभावादि कर्मजन्य रे...

तव स्वरूप/(स्वभाव) न जाने मोही...(7)...

(अतः) उक्त विभाव न तेरा स्वरूप...उसे स्वभाव मानना मिथ्या है...

यह ही मोह मद अहंकार (ममकार)...ख्याति वर्चस्व आदि संसार है...तव...(8)...

इससे ही होते सर्व पाप-ताप...अन्याय-अत्याचार-भ्रष्टाचार रे...

युद्ध-आक्रमण-शोषण-प्रदूषण...भेदभाव-विषमता-समस्या रे...तव...(9)...

उक्त विभाव युक्त कहीं न समाधान...तीन लोक व तीनों काल में...

चतुर्गति-चौरासी लक्ष योनियों में...किसी भी धर्म-कर्म-शिक्षादि में...तव...(10)...

(उक्त) विभाव त्याग से स्वभाव प्रगटे...आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रमय...

समता-शान्ति-सरल-सहज-शुचि...उदारता-व्यापकतामय...तव...(11)...

निश्चल-निश्छल-निर्मल-निर्विकार...आत्मानुभूति ज्ञानानन्द मय...

संकल्प-विकल्प-संक्लेश निर्विशेष...शुद्ध-बुद्ध-चिदानन्दमय...तव...(12)...

यह ही तेरा निज स्वरूप है...इसे जाने माने जो निर्मोही होय...

अन्यथा दार्शनिक वैज्ञानिक धार्मिक...सभी ही ज्ञान चेतना रिक्त होय रे...तव...(13)...

तव उपलब्धि ही सर्वोच्च लब्धि...अन्यथा सभी ही दीन-हीन-दम्भी होय...

सर्वोच्च उपलब्धि हेतु तुझे मैं ध्याऊँ... 'कनक' न मम शुद्ध रूप होय रे...तव...(14)...

नन्दौड़, दि-29/11/2019, रात्रि

संदर्भ-

मनोरोधे भवेद्बुद्धं विश्वमेव शरीरिभिः।

प्रायोऽसंवृतचित्तानां शेषरोधोऽप्यपार्थकः॥ (6) ज्ञानार्णव

जिसने मन का रोध किया उसने सब ही रोका, अर्थात् जिसने अपने मन को वश किया उसने सबको वश किया और जिसने अपने मन को वशीभूत नहीं किया उसका अन्य इन्द्रियादि का रोकना भी व्यर्थ ही है।

कलङ्कविलयः साक्षान्मनः शुद्धयैव देहिनाम्।

तस्मिन्नपि समीभूते स्वार्थसिद्धिरुदाहृता॥ (7)

मन की शुद्धता से ही साक्षात् कलंक का विलय होता है और जीवों के उनका समभावस्वरूप होने पर स्वार्थ की सिद्धि कही है; क्योंकि जब मन रागद्वेष रूप नहीं प्रवर्तता तब ही अपने स्वरूप में लीन होता है, यही स्वार्थ की सिद्धि है।

चित्तप्रपञ्चजानेविकारप्रतिबन्धकाः।

प्रापुवन्ति नरा नूनं मुक्तिकान्ताकरग्रहम्॥ (8)

जो पुरुष चित्त के प्रपंच से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के विकारों को रोकनेवाले हैं वे ही निश्चयतः मुक्तिरूपी स्त्री के कर ग्रहण को प्राप्त होते हैं। **भावार्थ**—ऐसे पुरुषों से ही मुक्तिरूपी स्त्री विवाहित होती है।

अतस्तदेव संरुध्य कुरु स्वाधीनमञ्जसा।

यदि छेतुं समुद्युक्तस्त्वं कर्मनिगडं दृढम्॥ (9)

आचार्य महाराज कहते हैं कि अतएव हे भव्यात्मन्! यदि तू कर्मरूपी दृढ़ बेडियों को काटने के लिये उद्यमी हुआ है तो उस मन को ही समस्त विकल्पों से रोककर शीघ्र ही अपने वश में कर।

सम्यगस्मिन्समं नीते दोषा जन्मभ्रमोद्भवाः।

जन्मिनां खलु शीर्यन्ते ज्ञानश्रीप्रतिबन्धकाः॥ (10)

इस मन को भले प्रकार समभावरूप प्राप्त करने से संसारपरिभ्रमण से उत्पन्न हुए जो दोष जीवों के ज्ञानरूप लक्ष्मी की प्राप्ति में बाधक हैं वे निश्चयकर के नष्ट हो जाते हैं।

एक एव मनोदैत्यजयः सर्वार्थसिद्धिदः।

अन्यत्र विफलः क्लेशो यमिनां तज्जयं विना॥ (11)

संयम मुनियों को एक मात्र मनरूपी दैत्य की जीतना ही समस्त अर्थों की सिद्धि का देनेवाला है; क्योंकि इस मन को जीते बिना अन्य व्रत नियम तप व शास्त्रादिक में क्लेश करना व्यर्थ ही है।

एक एव मनोरोधः सर्वाभ्युदयसाधकः।

यमेवालम्ब्य संप्राप्ता योगिनस्तत्त्वनिश्चयम्॥ (12)

एक मन का रोकना ही समस्त अभ्युदयों का साधनेवाला है, क्योंकि मनोरोध का आलंबन करके ही योगीश्वर तत्त्वनिश्चयता को प्राप्त हुए हैं।

पृथक्करोति यो धीरः स्वपरावेकतां गतौ।

स चापलं निगृह्णाति पूर्वमेवान्तरात्मनः॥ (13)

जो धीरवीर पुरुष एकता को प्राप्त हुए आत्मा और शरीरादि परवस्तु को पृथक् पृथक् करके अनुभव करते हैं वे सबसे पहिले अन्तरात्मा की अर्थात् मन की चंचलता को रोक लेते हैं।

मनः शुद्धयैव शुद्धिः स्याद्देहिनां नात्र संशयः।

वृथा तद्व्यतिरेकेण कायस्यैव कदर्थनम्॥ (14)

निःसंदेह मन की शुद्धि से ही जीवों के शुद्धता होती है, मन की शुद्धि के बिना केवल काय को क्षीण करना वृथा है।

ध्यानशुद्धिं मनः शुद्धिं करोत्येव न केवलम्।

विच्छिन्नत्यपि निःशङ्कं कर्मजालानि देहिनाम्॥ (15)

मन की शुद्धता केवल ध्यान की शुद्धता को ही नहीं करती है किन्तु जीवों के कर्मजाल (कर्मों के समूह) को भी निःसंदेह काटती है। भावार्थ-मन की शुद्धता से ध्यान की निर्मलता भी होती है और कर्मों की निर्जरा भी होती है।

पादपङ्कजसंलीनं तस्यैतद्भुवनत्रयम्।

यस्य चित्तं स्थिरीभूय स्वस्वरूपे लयं गतम्॥ (16)

जिस मुनि का मन स्थिर होकर आत्मस्वरूप में लीन हो गया उसके चरणकमलों में ये तीनों जगत् भले प्रकार लीन हुए समझने चाहिये।

मनः कृत्वाशु निःसङ्गं निःशेषविषयच्युतम्।

मुनिभृङ्गैः समीलीढं मुक्तेर्वदनपङ्कजम्॥ (17)

जिस मुनि रूपी भ्रमरों ने अपने मन को निःसंगता से शीघ्र ही समस्त विषयों से छुड़ाया उन्होंने ही मुक्तिरूपी स्त्री के मुखरूपी कमल का आलिंगन किया।

यथा यथा मनःशुद्धिर्मुनेः साक्षात्प्रजायते।

तथा तथा विवेकश्रीर्हृदि धत्ते स्थिरं पदम्॥ (18)

मुनि के जैसे-जैसे मन की शुद्धता साक्षात् होती जाती है वैसे-वैसे विवेक अर्थात् भेदज्ञानरूप लक्ष्मी अपने हृदय में स्थिरपद को धारण करती है। भावार्थ-मन की शुद्धता से उत्तरोत्तर विवेक बढ़ता है।

चित्तशुद्धिमनासाद्य मोक्तुं यः सम्यगिच्छति।

मृगतृष्णातरङ्गिण्यां स पिबत्यम्बु केवलम्॥ (19)

जो पुरुष चित्त की शुद्धता को न पाकर भले प्रकार मुक्त होना चाहता है वह केवल मृगतृष्णा की नदी में जल पीता है। भावार्थ-मृगतृष्णा में जल कहाँ से आयेगा? उसी प्रकार चित्त की शुद्धता के बिना मुक्ति कहाँ से होगी?

तद्ध्यानं तद्धि विज्ञानं तद्ध्येयं तत्त्वमेव वा।

येनाविद्यामतिक्रम्य मनस्तत्त्वे स्थिरी भवेत्॥ (20)

वही तो ध्यान है, वही विज्ञान है और वही ध्येय तत्त्व है कि जिसके प्रभाव से अविद्या को उल्लंघनकर मन निजस्वरूप में स्थिर हो जाय।

विषयग्रासलुब्धेन चित्तदैत्येन सर्वथा।

विक्रम्य स्वेच्छयाजस्रं जीवलोकः कदर्थितः॥ (21)

विषय ग्रहण करने में लुब्ध ऐसे इस चित्तरूपी दैत्य (राक्षस) से सर्व प्रकार पराक्रम (आक्रमण) करके अपनी इच्छानुसार इस जगत् को पीड़ित किया है।

अवार्यविक्रमः सोऽयं चित्तदन्ती निवार्यताम्।

न यावद्धिसयत्येष सत्संयमनिकेतनम्॥ (22)

हे मुने! यह चित्तरूपी हस्ती ऐसा प्रबल है कि इसका पराक्रम अनिवार्य है, सो जब तक यह समीचीन संयमरूपी घर को नष्ट नहीं करता, उससे पहिले-पहिले तू इसका निवारण कर; यदि यह चित्त निरर्गल (स्वच्छन्दी) रहेगा तो संयम को बिगाड़ेगा।

विभ्रमद्विषयारण्ये चलच्चेतोवलीमुखः।

येन रुद्धो ध्रुवं सिद्धं फलं तस्यैव वाञ्छितम्॥ (23)

यह चंचलचित्त रूपी बंदर विषयरूपी वन में भ्रमता रहता है, सो जिस पुरुष ने इसको रोका, वश किया, उसी के वाञ्छित फल की सिद्धि है।

चित्तमेकं न शक्नोति जेतुं स्वातन्त्र्यवर्ति यः।

ध्यानवार्ता ब्रुवन्मूढः स किं लोके न लज्जते॥ (24)

जो पुरुष स्वतन्त्रता से वर्तनेवाले एक मात्र चित्त के जीतने में समर्थ नहीं है

वह मूर्ख ध्यान की चर्चा करता हुआ लोक में लज्जित क्यों नहीं होता है? भावार्थ-चित्त को तो जीत नहीं सकता और लोक में ध्यान की चर्चावार्ता करे कि मैं ध्यानी हूँ, ध्यान करता रहता हूँ सो वह बड़ा निर्लज्ज है।

यदसाध्यं तपोनिष्ठैर्मुनिभिर्वीतमत्सरैः।

तत्पदं प्राप्यते धीरैश्चित्तप्रसरबन्धकैः॥ (25)

जो पद निर्मत्सर तपोनिष्ठ मुनियों के द्वारा भी असाध्य है, वह पद चित्त के प्रसार को रोकनेवाले धीर पुरुषों के द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। भावार्थ-केवल बाह्यतप से उत्तम पद पाना असंभव है।

अनन्तजन्मजानेककर्मबन्धस्थितिर्दृढा।

भावशुद्धिं प्रपन्नस्य मुनेः प्रक्षीयते क्षणात्॥ (26)

जो अनन्त जन्म से उत्पन्न हुई दृढ़ कर्मबन्ध की स्थिति है सो भावशुद्धि को प्राप्त होने वाले मुनि के क्षणभर में नष्ट हो जाती है। क्योंकि कर्मक्षय करने में भावों की शुद्धता ही प्रधान कारण है।

यस्य चित्तं स्थिरीभूतं प्रसन्नं ज्ञानवासितम्।

सिद्धमेव मुनेस्तस्य साध्यं किं कायदण्डनैः॥ (27)

जिस मुनि का चित्त स्थिरीभूत है, प्रसन्न है, रागादिक की कलुषता जिसमें नहीं है और ज्ञान की वासनासहित है उस मुनि के साध्य अर्थात् अपने स्वरूपादिक की प्राप्ति आदि सब कार्य सिद्ध ही हैं। अतएव उस मुनि को बाह्यतपादिक से काय को दंडने से कुछ लाभ नहीं है।

तपः श्रुतयमज्ञान-तनुक्लेशादिसंश्रयम्।

अनियन्त्रितचित्तस्य स्यान्मुनेस्तुषखण्डनम्॥ (28)

जिस मुनि ने अपने चित्त को वश नहीं किया उसका तप, शास्त्राध्ययन, व्रतधारण, ज्ञान, कायक्लेश इत्यादि सब तुषखण्डन के समान निःसार (व्यर्थ) हैं, क्योंकि मन के वशीभूत हुए विना ध्यान की सिद्धि नहीं होती।

एकैव हि मनः शुद्धिर्लोकाग्रपथदीपिका।

स्खलितं बहुभिस्तत्रतामनासाद्य निर्मलाम्॥ (29)

मन की शुद्धता ही एक मोक्षमार्ग में प्रकाश करनेवाली दीपिका (चिराग) है। निर्मल दीपिका न पाने से अनेक मोक्षमार्गी च्युत हो गये।

असन्तोऽपि गुणाः सन्ति यस्यां सत्यां शरीरिणाम्।

सन्तोऽपि यां विना यान्ति सा मनःशुद्धिः शस्यते॥ (30)

जिस मन की शुद्धता होते हुए अविद्यमान गुण भी विद्यमान हो जाते हैं और जिसके न होते विद्यमान गुण भी जाते रहते हैं वही मन की शुद्धि प्रशंसा करने योग्य है।

अपि लोकत्रयैर्धर्मैर्षर्वाक्षप्रीणनक्षमम्।

भजत्यचिन्त्यवीर्योऽयं चित्तदैत्यो निरङ्कुशः॥ (31)

यह चित्तरूपी दैत्य अचिन्त्यपराक्रमी है सो निरंकुश होकर समस्त इन्द्रियों को तृप्त करने में समर्थ ऐसे तीन लोक के ऐश्वर्य को भोगता है। **भावार्थ**—जब तक यह मन रुकता नहीं तब तक अपने संकल्पों में यह इन्द्र के सुख भोगता है जिससे कि अनेक कर्म बँधते हैं।

शमश्रुतयमोपेता जिताक्षाः शंसितव्रताः।

विदन्त्यनिर्जितस्वान्ताः स्वस्वरूपं न योगिनः॥ (32)

जो योगी शमभाव, शास्त्राध्ययन और यम-नियमादि से युक्त हैं और जितेन्द्रिय हैं तथा जिनके व्रत प्रशंसा करने योग्य हैं वे भी यदि मन नहीं जीते हुए हो तो अपने स्वरूप को नहीं जान सकते। **भावार्थ**—मन को जीते विना आत्मा का अनुभव नहीं होता।

विलीनविषयं शान्तं निःसङ्गं त्यक्तविक्रियम्।

स्वस्थं कृत्वा मनः प्राप्तः मुनिभिः पदमव्ययम्॥ (33)

मुनिगणों ने अपने मन को विलीनविषय, शान्त, निःसंग (परिग्रह के ममत्वरहित), विकार रहित स्वस्थ करके ही अव्ययपद (मोक्षपद) को पाया है। **भावार्थ**—जब मन को अन्य विकल्प व विकारों से रहित करके आत्मस्वरूप में स्थिर करे तब ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

दिक्चक्रं दैत्यधिष्ण्यं त्रिदशपतिपुराण्यम्बुवाहान्तरालं

द्वीपाम्भोधिप्रकाण्डं खचरनरसुराहीन्द्रवासं समग्रम्।

एतत्त्रैलोक्यनीडं पवनचयचितं चापलेन क्षणाद्धै-

नाश्रान्तं चित्तदैत्यो भ्रमति तनुमतां दुर्विचिन्त्यप्रभावः॥ (34)

जीवों के मनरूपी दैत्य का प्रभाव दुर्विचिन्त्य है। यह किसी के चिन्तवन में नहीं आ सकता, क्योंकि यह अपनी चंचलता के प्रभाव से दशों दिशाओं में, दैत्यो के समूह में, इन्द्र के पुरों में, आकाश में तथा द्वीपसमुद्रों में, विद्याधर मनुष्य देव धरणीन्द्रादिके निवासस्थानों में तथा वातवल्लयों सहित तीन लोकरूपी घर में सर्वत्र आधे क्षण में ही भ्रमण कर आता है; इसका रोना अतिशय कठिन है। जो योगीश्वर इसे रोकते हैं, वे धन्य हैं।

प्रशमयमसमाधि ध्यानविज्ञानहेतो-र्विनयनविवेकोदारचारित्रशुद्धयै।

य इह जयति चेतः पन्नगं दुर्निवारं स खलु जगति योगिब्रातवन्द्यो मुनीन्द्रः॥

इस जगत् में जो मुनि प्रशम (कषायों का अभाव), यम (त्याग), समाधि (स्वरूप में लय), ध्यान (एकाग्रचित्त), विज्ञान (विशिष्ट ज्ञान) अर्थात् भेदज्ञान के लिये तथा विनय व नय के स्वरूप की प्राप्ति के लिये, विवेक और उदार चारित्र की शुद्धि के लिये चित्तरूपी दुर्निवार सर्प को जीतते हैं वे योगियों के समूह द्वारा वंदनीय हैं और मुनियों में इन्द्र हैं।

रागद्वेष रोकने का वर्णन

निःशेषविषयोत्तीर्णं विकल्पव्रजवर्जितम्।

स्वतत्त्वैकपरं धत्ते मनीषी नियतं मनः॥ (1)

क्रियामाणमपि स्वस्थं मनः सद्योऽभिभूयते।

अनाद्युत्पन्नसंबद्धै रागादिरिपुभिर्बलात्॥ (2)

मनीषी (बुद्धिमान्) मुनि यदि अपने मन को समस्त विषयों से रहित और ज्ञेयों में भ्रम या संशयरूप विकल्पों से वर्जित, अपने स्वरूप में ही एकाग्र (तत्पर) करे, तथापि आत्मस्वरूप सन्मुख स्वस्थ किया हुआ मन भी अनादिकाल से उत्पन्न हुए वा बँधे हुए रागादि शत्रुओं से जबरदस्ती पीडित किया जाता है। भावार्थ-मन को रागादिक शत्रु च्युत करके विकाररूप कर देते हैं।

स्वतत्त्वानुगतं चेतः करोति यदि संयमी।

रागादयस्यतथाऽप्येते क्षिपन्ति भ्रमसागरे। (3)

यद्यपि संयमी मुनि निजस्वरूप के अनुगत मन का जय कर लेता है, तथापि रागादिक भाव उसको फिर भी भ्रमरूपी समुद्र में डाल देते हैं।

आत्माधीनमपि स्वान्तं सद्यो रागैः कलङ्कयते।

अस्ततन्द्रैरतः पूर्वमत्र यत्नो विधीयताम्॥ (4)

आचार्य महाराज उपदेश करते हैं कि अपने आधीन (वश) किया हुआ मन भी रागादिक भावों से तत्काल कलंकित (मलिन) किया जाता है, इस कारण मुनिगणों का यह कर्तव्य है कि इस विषय में वे प्रमादरहित हो सबसे पहिले इन रागादिक के दूर करने में यत्न करें।

अयत्नेनापि जायन्ते चित्तभूमौ शरीरिणाम्।

रागादयः स्वभावोत्थज्ञानराज्याङ्घ्रातकाः॥ (5)

जीवों के स्वभाविक ज्ञानरूपी राज्य के अंग को घात करनेवाले रागादिक भाव चित्तरूपी पृथ्वी में से बिना यत्न ही स्वयमेव उत्पन्न होते हैं।

इन्द्रियार्थानपाकृत्य स्वतत्त्वमवलम्बते।

यदि योगी तथाऽप्येते छलयन्ति मुहुर्मनः॥ (6)

यदि योगी मुनि इन्द्रियों के विषयों को दूर कर निजस्वरूप का अवलंबन करे तो भी रागादिक भाव मन को बारबार छलते हैं अर्थात् विकार उत्पन्न करते हैं।

क्वचिन्मूढं क्वचिद्भ्रान्तं क्वचिद्भीतं क्वचिद्रतम्।

शङ्कितं च क्वचित्क्लिष्टं रागाद्यैः क्रियते मनः॥ (7)

ये रागादिक भाव मन को कभी तो मूढ करते हैं, कभी भ्रमरूप करते हैं, कभी भयभीत करते हैं, कभी आसक्त करते हैं, कभी शंकित करते हैं; कभी क्लेशरूप करते हैं; इत्यादि प्रकार से स्थिरता से डिगा देते हैं।

अजस्रं रुध्यमानेऽपि चिराभ्यासाद् दृढीकृताः।

चरन्ति हृदि निःशङ्का नृणां रागादिराक्षसाः॥ (8)

मनुष्यों के निरन्तर वश किये हुए मन में भी चिरकाल से अभ्यस्त किये रागादिक राक्षस निःशंक हो प्रवर्तते हैं। **भावार्थ**—रागादिक का संस्कार ऐसा प्रबल है कि एकाग्र मन करे तो भी चलायमान कर देते हैं।

प्रयासैः फल्गुभिर्मूढ किमात्मा दण्डयतेऽधिकम्।

शक्यते न हि चेच्चेतः कर्तुं रागादिवर्जितम्॥ (9)

हे मूढ प्राणी! यदि तू अपने चित्त को रागादिक से रहित करने को समर्थ नहीं है तो व्यर्थ ही अन्य क्लेशों से आत्मा को दंड क्यों देता है? क्योंकि रागादिक के मिटे बिना अन्य खेद करना निष्फल है।

क्षीणरागं च्युतद्वेषं ध्वस्तमोहं सुसंवृतम्।

यदि चेतः समापन्नं तदा सिद्धं समीहितम्॥ (10)

क्षीण हुआ है राग जिसमें और च्युत हुआ है द्वेष जिसमें तथा नष्ट हुआ है मोह जिसमें ऐसा जो मन संवरता को प्राप्त है तो वांछित सिद्धि है। **भावार्थ**-चित्त में से द्वेष और मोह तो नष्ट हों और रागादिक क्षीण हों तथा अपना स्वरूप साधने में राग रहे तो सर्व मनोवांछित सिद्ध होते हैं।

मोहपङ्के परिक्षीणे प्रशान्ते रागविभ्रमे।

पश्यन्ति यमिनः स्वस्मिन्स्वरूपं परमात्मनः॥ (11)

मोहरूपी कर्दम के क्षीण होने पर तथा रागादिक परिणामों के प्रशान्त होने पर योगीगण अपने में ही परमात्मा के स्वरूप को अवलोकन करते हैं वा अनुभव करते हैं।

महाप्रशमसंग्रामे शिवश्रीसंगमोत्सुकैः।

योगिभिर्ज्ञानशस्त्रेण रागमल्लो निपातितः॥ (12)

मुक्तिरूपी लक्ष्मी के संग की वांछा करनेवाले योगीश्वरों महाप्रशमरूपी संग्राम में ज्ञानरूपी शस्त्र से रागरूपी मल्लको निपातन किया, क्योंकि इसके हते बिना मोक्षलक्ष्मी की प्राप्ति नहीं है।

असंक्लिष्टमविभ्रान्तमविप्लुतमनाकुलम्।

स्ववशं च मनः कृत्वा वस्तुतत्त्वं निरूपय॥ (13)

हे आत्मन्! अपने मन को संक्लेश, भ्रांति और रागादिक विकारों से रहित करके अपने मन को वशीभूत कर तथा वस्तु के यथार्थ स्वरूप का अवलोकन कर।

रागाद्यभिहतं चेतः स्वतत्त्वविमुखं भवेत्।

ततः प्रच्यवते क्षिप्रं ज्ञानरत्नाद्रिमस्तकात्॥ (14)

जो चित्त रागादिक से पीड़ित होता है वह स्वतत्त्व से विमुख हो जाता है। इसी कारण मनुष्य ज्ञानरूपी रत्नमय पर्वत से च्युत हो जाता है।

रागद्वेषभ्रमाभावे मुक्तिमार्गे स्थिरीभवेत्।

संयमी जन्मकान्तरसंक्रमक्लेशशङ्कितः॥ (15)

संसाररूपी वन में भ्रमण के क्लेशों के भयभीत संयमी मुनि रागद्वेषमोह का अभाव होने से ही मोक्षमार्ग में स्थिर होता है। **भावार्थ-**रागद्वेषमोह के विद्यमान रहते मोक्षमार्ग में स्थिरता नहीं होती।

रागादिभिरविश्रान्तं वञ्चयमानं मुहुर्मनः।

न पश्यति परं ज्योतिः पुण्यपापेन्धनानलम्॥ (16)

यह मन है सो रागादिक से निरंतर वारंवार वंचित हुआ पुण्यपापरूपी इंधन के लिये अग्नि के समान ऐसी परम ज्योति का अवलोकन नहीं कर सकता। **भावार्थ-**जब तक मन में रागद्वेष रहता है तब तक परमात्मा का स्वरूप नहीं भासता। रागद्वेषमोह के नष्ट होने पर ही शुभाशुभ कर्मों को नष्ट करनेवाले परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति होती है।

रागादिपङ्कविश्लेषात्प्रसन्ने चित्तवारिणि।

परिस्फुरति निःशेषं मुनेर्वस्तुकदम्बकम्॥ (17)

रागद्वेषमोहरूपी कर्दम के अभाव से प्रसन्न चित्तरूपी जल में मुनि को समस्त वस्तुओं के समूह स्पष्ट स्फुरायमान होते हैं अर्थात् प्रतिभासते हैं।

स कोऽपि परमानन्दो वीतरागस्य जायते।

येन लोकत्रयैश्वर्यमप्यचिन्त्यं तृणायते॥ (18)

तथा जो कोई परमानन्द वीतराग के उत्पन्न होता है उसके समाने तीन लोक का अचिन्त्य ऐश्वर्य भी तृणवत् भासता है, अर्थात् परमानन्द स्वरूप के सामने तीन लोक का ऐश्वर्य भी कुछ नहीं है।

प्रशाम्यति विरागस्य दुर्बोधविषमग्रहः।

स एव वर्द्धतेऽजस्रं रागार्त्तस्येह देहिनः॥ (19)

इस संसार में रागरहित जीव के अज्ञानरूप विषय आग्रह शान्त हो जाता है और राग से पीड़ित से वही अज्ञान बढ़ता है, घटता नहीं है।

स्वभावजमनातङ्कं वीतरागस्य यत्सुखम्।

न तस्यानन्तभागोऽपि प्राप्यते त्रिदशेश्वरैः॥ (20)

स्वभाव से उत्पन्न हुआ आतंकरहित जो सुख वीतराग के होता है उससे अनन्तवाँ भाग भी इन्द्रों के नहीं होता। भावार्थ-निर्मल ज्ञान और स्वाभाविक सुख ये दोनों वीतराग के ही होते हैं।

एतावनादि संभूतौ रागद्वेषो महाग्रहौ।

अनन्तदुःखसन्तानप्रसूतेः प्रथमाङ्कुरौ॥ (21)

ये अनादि से उत्पन्न रागद्वेषरूपी महा पिशाच वा ग्रह है सो अनन्त दुःखों के सन्तान की प्रसूति के प्रथम अंकुर ही है। भावार्थ-दुःख की परिपाटी इनसे ही चलती है।

“रागी बध्नाति कर्माणि वीतरागो विमुच्यते।

जीवो जिनोपदेशोऽयं समासाद् बन्धमोक्षयोः॥(1)”

रागी जीव तो कर्मों को बाँधता है और वीतरागी कर्मों से छूटता है, यह बंध और मोक्ष इन दोनों का संक्षेप उपदेश जिनेन्द्र सर्वज्ञ भगवान् का है।

तद्विवेच्य ध्रुवं धीर ज्ञानार्कालोकमाश्रय।

विशुष्यति च यं प्राप्य रागकल्लोलमालिनी॥ (22)

पूर्वोक्त अर्थ का विचार करके हे धीरवीर! तू निश्चय से ज्ञानरूपी सूर्य के प्रकाश का आश्रय कर, क्योंकि जिसको प्राप्त होकर रागरूपी नदी सुख जाती है।

चिद्चिद्रूपभावेषु सूक्ष्मस्थूलेष्वपि क्षणम्।

रागः स्याद्यदि वा द्वेषः क्व तदाध्यात्मनिश्चयः॥ (23)

सूक्ष्म तथा स्थूल चेतन अचेतन पदार्थों में क्षणभर भी राग अथवा द्वेष होता है तो फिर अध्यात्म का निश्चय कहाँ?

नित्यानन्दमयीं साध्वीं शाश्वतीं चात्मसंभवाम्।

वृणोति वीतसरंभो वीतरागः शिवश्रियम्॥ (24)

जिसका संभं रागादिमयी विकल्प उद्यम बीत गये हैं ऐसा वीतराग मुनि नित्यानन्दमयी समीचीन शाश्वती आत्मा से उत्पन्न मोक्षरूपी लक्ष्मी को वरता है। भावार्थ-मोक्ष का स्वामी होता है।

यत्र रागः पदं धत्ते द्वेषस्तत्रेति निश्चयः।

उभावेतौ सामलम्ब्य विक्रामत्यधिकं मनः॥ (25)

जहाँ पर राग पैर धरे अर्थात् प्रवर्ते वहाँ द्वेष भी प्रवर्तता है यह निश्चय है और इन दोनों का अवलंबन करके मन भी अधिकतर विकाररूप होता है।

सकलज्ञानसाम्राज्यं स्वीकर्तुं यः समीप्सति।

स धन्यः शमस्त्रेण रागशत्रुं निकृन्तति॥ (26)

जो पुरुष समस्त ज्ञानरूप साम्राज्य के अंगीकार करने की इच्छा रखता है वह धन्य महाभाग उपशमभावरूप शस्त्र से रागरूप शत्रु को काटता है।

यथोत्पाताक्षमः पक्षी लूनपक्षः प्रजायते।

रागद्वेषच्छदच्छेदे स्वान्तपत्ररथस्तथा॥ (27)

जिस प्रकार कटी हुई पाँखों का पक्षी उड़ने में असमर्थ होता है, वैसे मनरूप पक्षी है सो रागद्वेष पाँखों के कट जाने से विकल्परूप भ्रमण से रहित हो जाता है।

चित्तप्लवङ्गदुर्वृत्तं य हि नूनं विजेष्यति।

यो रागद्वेषसंताननतरुमूलं निकृन्तति॥ (28)

जो पुरुष रागद्वेष के संतानरूप वृक्ष की जड़ को काटता है वह पुरुष चित्तरूप बंदर के दुर्वृत्तविकाररूप भ्रमण को अवश्य ही जीतेगा।

अयं मोहवशाज्जन्तुः क्रुध्यति द्वेष्टि रज्यते।

अर्थेष्वन्यस्वभावेषु तस्मान्मोहो जगज्जयी॥ (29)

यह प्राणी मोह के वश से अन्य स्वरूप पदार्थों में क्रोध करता है, द्वेष करता है, तथा राग भी करता है इस कारण मोह ही जगत् को जीतनेवाला है।

रागद्वेषविषोद्यानं मोहबीजं जिनैर्मतम्।

अतः स एव निःशेषदोषसेनानरेश्वरः॥ (30)

इस रागद्वेषरूप विषवन का बीज मोह ही है ऐसा भगवान् ने कहा है। इस कारण यह मोह ही समस्त दोषों की सेना का राजा है।

असावेव भवोद्भूतदाववह्निः शरीरिणाम्।

तथा दृढतरानन्तकर्मबन्धनिबन्धनम्॥ (31)

यह मोह ही जीवों के संसार में उत्पन्न हुआ दावानल है तथा अतिशय दृढ़ अनन्त कर्मबन्धन का कारण है।

रागादिगहने खिन्नं मोहनिद्रावशीकृतम्।

जगन्मिथ्याग्रहाविष्टं जन्मपङ्के निमज्जति॥ (32)

यह जगत् रागादिके गहन वन में खेदखिन्न हुआ, मोहरूप निद्रा के वशीभूत होकर, मिथ्यात्वरूपी पिशाच सहित होने से संसाररूपी कीचड़ में डूबता है। यहाँ खेद निद्रा पिशाच ये तीनों ही बेखबर होने के कारण हैं, यह आत्मा इन कारणों से अपने को भूलकर कीचरूप संसार में डुबाता है।

स पश्यति मुनिः साक्षाद्विश्वमध्यक्षमञ्जसा।

यः स्फोटयति मोहाख्यं पटलं ज्ञानचक्षुषा॥ (33)

जो मुनि मोहरूपी पटल को दूर करता है वह मुनि शीघ्र ही समस्त लोक को ज्ञानरूपी नेत्रों से साक्षात्-प्रत्यक्ष (प्रगट) देखता है।

इयं मोहमहाज्वाला जगत्त्रयविसर्पिणी।

क्षणादेव क्षयं याति प्लाव्यमाना शमाम्बुभिः॥ (34)

यह मोहरूप महा अग्नि की ज्वाला तीन जगत् में फैलनेवाली है, इसको शांतभावरूप जल से सेचन किया जाये तो यह क्षण मात्र में क्षय हो जाती है।

यस्मिन्सत्येव संसारी यद्वियोगे शिवीभवेत्।

जीवः स एव पापात्मा मोहमल्लो निवार्यताम्॥ (35)

हे आत्मन्! जिस मोहमल्ल के होने से यह जीव संसारी है और जिसके वियोग होने से मोक्षस्वरूप होता है वही यह पापी मोहमल्ल है सो इसे निवारण कर।

यत्संसारस्य वैचित्र्यं नानात्वं यच्छरीरिणाम्।

यदात्मीयेष्वनात्मास्था तन्मोहस्यैव वल्गितम्॥ (36)

जीवों के जो संसार की विचित्रता, अनेकप्रकारता तथा अपने भावों से अनात्मपने की आस्था है सो ये सब मोह के ही विलास हैं अर्थात् मोह की ही चेष्टा है।

रागादिवैरिणः क्रूरान्मोहभूपेन्द्रपालितान्।

निकृत्य शमशस्त्रेण मोक्षमार्गं निरूपय॥ (37)

हे आत्मन्! मोहरूपी राजा के पाले हुए क्रूर रागादि शत्रुओं को शान्तभावरूप शस्त्र से छेदन करके मोक्षमार्ग का अवलोकन कर।

इति मोहवीरवृत्तं रागादिवरूथिनीसमाकीर्णम्।

सुनिरूप्य भावशुद्ध्या यतस्व तद्बन्धमोक्षाय॥ (38)

हे आत्मन्! इस प्रकार मोहरूपी सुभट का वृत्तान्त है; सो यह रागादिरूपी सेना के सहित है, इस कारण इसे भले प्रकार विचार करके इसके बंध से छूटने के लिये यत्न कर।

साम्यभाव का वर्णन

मोहवह्निमकर्तुं स्वीकर्तुं संयमश्रियम्।

छेत्तु रागद्रुमोद्यानं समत्वमवलम्ब्यताम्॥ (1)

हे आत्मन्! तू मोहरूप अग्नि को बुझाने के लिये और संयमरूपी लक्ष्मी को ग्रहण करने के लिये तथा रागरूप वृक्षों के समूह को काटने के लिये समभाव का (समता का) अवलंबन कर ऐसा उपदेश है।

चिदचिल्लक्षणैर्भावैरिष्टानिष्टतया स्थितैः।

न मुह्यति मनो यस्य तस्य साम्ये स्थितिर्भवेत्॥ (2)

जिस पुरुष का मन चित् (पुत्र कलत्र शत्रु मित्रादि), अचित् (धन धान्य तृणकंचनादि) इष्ट अनिष्टरूप पदार्थों के द्वारा मोह को प्राप्त नहीं होता, उस पुरुष के ही साम्यभाव में स्थिति होती है। यह साम्यभाव का लक्षण है।

विरज्य कामभोगेषु विमुच्य वपुषि स्पृहाम्।

समत्वं भज सर्वज्ञानलक्ष्मीकुलास्पदम्॥ (3)

हे आत्मन्! तू काम और भोगादिक में विरक्त हो, शरीर में वांछा-आसक्तता छोड़कर समता को भज (सेव), क्योंकि यह समताभाव केवलज्ञान लक्ष्मी का (लोकालोक के जानने का) कुलगृह है अर्थात् वह लक्ष्मी समभाव में ही है।

छित्वा प्रशमशस्त्रेण भवव्यसनवागुराम्।

मुक्तेः स्वयं वरागारं वीर व्रज शनैः शनैः॥ (4)

हे आत्मन्! हे वीर! तू शांतभावरूपी शस्त्र से सांसारिक कष्टरूप (आपदारूप)

फाँसी को छेदकर मुक्तिरूप स्त्री के स्वयंवर के स्थान को शनैः शनैः गमन कर।
भावार्थ-शान्तभाव होने से मार्ग में रोकनेवाला कोई भी नहीं है इस कारण मंद मंद गति से निःशंकतया मोक्षस्थान को गमन कर, यह धीरज बँधाय है।

साम्यसूर्याशुभिर्भिन्ने रागादितिमिरोत्करे।

प्रपश्यति यमी स्वस्मिन्स्वरूपं परमात्मनः॥ (5)

संयमी मुनि समभावरूपी सूर्य की किरणों से रागादि तिमिरसमूह के नष्ट होने पर परमात्मा का स्वरूप अपने में ही अवलोकन करता है। **भावार्थ**-परमात्मा का स्वरूप अनन्तचतुष्टयरूप है सो रागादिक तिमिर से अच्छादित है सो समभाव के प्रकाश होने पर आपमें ही दिखता है।

साम्यसीमानमालम्ब्य कृत्वात्मन्यात्मनिश्चयम्।

पृथक् करोति विज्ञानी संश्लिष्टे जीवकर्मणी॥ (6)

भेदविज्ञानी पुरुष हैं सो समभाव की सीमा का अवलंबन करके तथा अपने में ही अपने आत्मा का निश्चय करके, मिले हुए जीव और कर्म को पृथक्-पृथक् करता है।

साम्यवारिणि शुद्धानां सतां ज्ञानैकचक्षुषाम्।

इहैवानन्तबोधादिराज्यलक्ष्मीः सुखी भवेत्॥ (7)

अर्थ-जो समभावरूपी जल से शुद्ध हुए हैं और जिनके ज्ञान ही नेत्र हैं ऐसे सत्पुरुषों के इस ही जन्म में अनन्त ज्ञानादिक लक्ष्मी सखी होती हैं। **भावार्थ**-कोई यह जाने कि समभाव का फल परलोक में होता है, सो यह एकान्त नहीं है; किन्तु इस ही जन्म में केवलज्ञानादिक की प्राप्ति होती है।

भावयस्व तथाऽऽत्मानं समत्वेनातिनिर्भरम्।

न यथा द्वेषरागाभ्यां गृह्णात्यर्थकदम्बकम्॥ (8)

हे आत्मन्! अपने आत्मा को तू समभाव से अति निर्भररूप इस प्रकार भाव, कि जिस प्रकार से यह आत्मा रागद्वेषादि से पदार्थों के समूह को ग्रहण न करे। **भावार्थ**-आत्मा में ऐसा लीन हो कि जहाँ रागद्वेषादिक अवकाश न पावें।

रागादिविपिनं भीमं मोहशार्दूलपालितम्।

दग्धं मुनिमहावीरैः साम्यधूमध्वजार्चिषा॥ (9)

यह रागादिकरूप भयानक वन है सो मोहरूपी सिंह के द्वारा रक्षित है, उस वन को मुनिरूपी महासुभटोने समभावरूप अग्नि की ज्वाला से दग्ध कर दिया है।

मोहपङ्के परिक्षीणे शीर्णे रागादिबन्धने।

नृणां हृदि पदं धत्ते साम्यश्रीर्विश्ववन्दिता॥ (10)

पुरुषों के हृदय में मोहरूपी कर्दम के सूखने से तथा रागादि बन्धनों के दूर होने पर जगत्पूज्या समभावरूपी लक्ष्मी निवास करती है।

भावार्थ—मलिन घर में और बंधनसहित घर में उत्तम स्त्री प्रवेश नहीं करती, इस प्रकार समभावरूप लक्ष्मी भी रागद्वेषमोहादि सहित हृदय में प्रवेश नहीं करती।

आशाः सद्यो विपद्यन्ते यान्त्यविद्याः क्षयं क्षणात्।

प्रियते चित्तभोगीन्द्रो यस्य सा साम्यभावना॥ (11)

जिस पुरुष के समभाव की भावना है उसकी आशाएँ तो तत्काल नाश हो जाती है, अविद्या क्षणभर में क्षय हो जाती है, उसी प्रकार चित्तरूपी सर्प भी मर जाता है अर्थात् भ्रमण से रहित हो जाता है। यही समभावना का फल है।

साम्यकोटिं समारूढो यमी जयति कर्म यत्।

निमिषान्तेन तज्जन्मकोटिभिस्तपसेतरः॥ (12)

समभाव की हृदपर आरूढ़ हुआ संयमी मुनि जो नेत्र के टिमकार मात्र से कर्म को जीतता है अर्थात् कर्मों का क्षय करता है, उतना समभावरहित इतर पुरुष कोटि तपों के करने पर भी नहीं कर सकता, यह साम्यभाव का माहात्म्य है।

साम्यमेव परं ध्यानं प्रणीतं विश्वदर्शिभिः।

तस्यैव व्यक्तये नूनं मन्येऽयं शास्त्रविस्तरः॥ (13)

आचार्य महाराज कहते हैं कि सर्वज्ञ भगवान् ने साम्यभाव को ही उत्कृष्ट ध्यान कहा है और यह शास्त्रों का विस्तर है सो निश्चयतः उस साम्यभाव को प्रगट करने के लिये ही है, ऐसा मैं मानता हूँ।

भावार्थ—शास्त्र में जितने व्याख्यान हैं वे साम्य को ही दृढ़ करते हैं।

साम्यभावितभावानां स्यात्सुख यन्मनीषिणाम्।

तन्मन्ये ज्ञानसाम्राज्यसमत्ववलम्बते॥ (14)

आचार्य महाराज कहते हैं कि साम्यभावों से पदार्थों के विचार करनेवाले बुद्धिमान् पुरुषों के जो सुख होता है सो मैं ऐसा मानता हूँ कि वह ज्ञानसाम्राज्य (केवलज्ञान) की समता को अवलम्बन करता है। **भावार्थ**—समभावों से केवलज्ञान उत्पन्न होता है उससे पहिले ही समभाव में ऐसा सुख है कि उसे केवलज्ञान के समान ही माना जाता है क्योंकि दुःख तो रागादिक से हैं, उसके बिना केवल मात्र सुख ही सुख है।

यः स्वभावोत्थितां साध्वीं विशुद्धिं स्वस्य वाञ्छति।

स धारयति पुण्यात्मा समत्वाधिष्ठितं मनः॥ (15)

जो पुरुष अपने स्वभाव में उत्पन्न हुई समीचीन विशुद्धता को चाहता है सो पुरुष अपने मन को समभावों सहित धारता है। वही पुण्यात्मा है, महाभाग्य है।

तनुत्रयविनिर्मुक्तं दोषत्रयविवर्जितम्।

यदा वेत्यात्मनात्मानं तदा साम्ये स्थितिर्भवेत्॥ (16)

जिस समय यह आत्मा अपने आत्मा को औदारिक, तैजस और कामण इन तीन शरीरों से तथा रागद्वेषमोह से रहित जानता है तब ही समभाव में स्थिति (स्थिरता) होती है।

अशेषपरपर्यायैरन्यद्रव्यैर्विलक्षणम्।

निश्चिनोति यदात्मानं तदा साम्यं प्रसूयते॥ (17)

जिस समय यह आत्मा अपने को समस्त परद्रव्यों की पर्यायों से तथा परद्रव्यों से विलक्षण भिन्नस्वरूप निश्चय करता है उसी काल साम्यभाव उत्पन्न होता है।

तस्यैवाविचलं सौख्यं तस्यैव पदमव्ययम्।

तस्यैव बन्धविश्लेषः समत्वं यस्य योगिनः॥ (18)

जिस योगीश्वर के समभाव है उसके ही तो अविचल सुख है और उसके ही अविनाशी पद और कर्मबन्ध की निर्जरा है।

यस्य हेयं न चादेयं जगद्विश्वं चराचरम्।

स्यात्तस्यैव मुनेः साक्षाच्छुभाशुभमलक्षयः॥ (19)

जिस मुनि के चराचररूप समस्त जगत् में न तो कोई हेय है और न उपादेय है, उस मुनि के ही शुभाशुभरूप कर्मरूपी मैल का साक्षात् क्षय है।

शाम्यति जन्तवः क्रूरा बद्धवैराः परस्परम्।

अपि स्वार्थं प्रवृत्तस्य मुनेः साम्यप्रभावतः॥ (20)

इस साम्य के प्रभाव से अपने स्वार्थ में प्रवृत्त मुनि के निकट परस्पर वैर करनेवाले क्रूर जीव भी शान्त हो जाते हैं। **भावार्थ**—मुनि तो अपने स्वरूप के साधनार्थ साम्यभावों में प्रवर्तते हैं किन्तु उनकी साम्यमूर्ति अवलोकन करके उनके निकट रहनेवाले क्रूर सिंहादिक भी परस्पर वैरभाव छोड़कर शान्तभाव का, समता का आश्रय कर लेते हैं, ऐसा ही साम्यभाव का माहात्म्य है।

भजन्ति जन्तवो मैत्रीमन्योऽन्यं त्यक्तमत्सराः।

समत्वालम्बिनां प्राप्य पादपद्मार्चितां क्षितिम्॥ (21)

समभाव का अवलंबन करनेवाले मुनियों के चरणकमलों के प्रभाव से पूजनीय पृथ्वी को प्राप्त होने पर प्राणीजन परस्पर का ईर्ष्याभाव छोड़कर मित्रता को प्राप्त हो जाते हैं।

शाम्यन्ति योगिभिः क्रूराः जन्तवो नेति शङ्क्यते।

दावदीप्तमिवारण्यं यथा वृष्टैर्बलाहकैः॥ (22)

योगीगण क्रूर जीवों को उपाय करके शान्तरूप करते हैं ऐसी शंका कदापि नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जैसे दावानल से जलता हुआ वन स्वयमेव मेघ बरसने से शान्त हो जाता है उसी प्रकार मुनियों के तप के प्रभाव से स्वयं ही क्रूर जीव समतारूप प्रवर्तने लग जाते हैं; योगीश्वर उनको प्रेरणा कदापि नहीं करते।

भवन्त्यतिप्रसन्नानि कश्मलान्यपि देहिनाम्।

चेतांसि योगिसंसर्गेऽगस्त्ययोगे जलानिवत्॥ (23)

जिस प्रकार शरद ऋतु में अगस्त्य तारा के संसर्ग होने से जल निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार समतायुक्त योगीश्वरों की संगति से जीवों के मलिन चित्त भी प्रसन्न अर्थात् निर्मल हो जाते हैं।

क्षुभ्यन्ति ग्रहयक्षकिन्नरनास्तुष्यन्ति नाकेश्वराः

मुञ्चन्ति द्विपदैत्यसिंहशरभव्यालादयः क्रूरताम्।

रुग्वैरप्रतिबन्धविभ्रमभयभ्रष्टं जगज्जायते

स्याद्योगीन्द्रसमत्वसाध्यमथवा किं किं न सद्यो भुवि।। (24)

समभावयुक्त योगीश्वरों के प्रभाव से ग्रह यक्ष किन्नर मनुष्य ये क्षोभ को प्राप्त होते हैं और नाकेश्वर अर्थात् इन्द्रगण हर्षित होते हैं तथा हाथी दैत्य सिंह अष्टपद सर्प इत्यादि क्रूर प्राणी अपनी क्रूरता को छोड़ देते हैं और यह जगत् रोग वैर प्रतिबन्ध विभ्रम भयादिक से रहित हो जाता है। इस पृथ्वी में ऐसा कौनसा कार्य है, जो योगीश्वरों के समभावों से साध्य न हो अर्थात् समभावों से सर्व मनोवांछित सधते हैं।

चन्द्रः सान्द्रैर्विकिरति सुधामंशुभिर्जीवलोके

भास्वानुग्रैः किरणपटलैरुच्छिनत्यन्धकारम्।

धात्री धत्ते भुवनमखिलं विश्वमेतच्च वायु-

र्यद्वत्साम्याच्छमयति तथा जन्तुजातं यतीन्द्रः।। (25)

जिस प्रकार चन्द्रमा जगत् में किरणों से सघन झरता हुआ अमृत वर्षाता है और सूर्य तीव्र किरणों के समूह से अन्धकार का नाश करता है तथा पृथ्वी समस्त भुवनों को धारण करती है, तथा पवन है सो इस समस्त लोक को धारण करता है, उसी प्रकार मुनीश्वर महाराज भी साम्यभावों से जीवों के समूह को शान्तभावरूप करते हैं।

सारङ्गी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नन्दिनी व्याघ्रपोतं

मार्जारी हंसबालं प्रणयपरवशा केकिकान्ता भुजङ्गम्।

वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जन्तवोऽन्ये त्यजन्ति

श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमितकलुषं योगिनं क्षीणमोहम्।। (26)

क्षीण हो गया है मोह जिसका और शान्त हो गया है कलुष कषायरूप मैल जिसका ऐसे समभावों में आरूढ़ हुए योगीश्वरों को आश्रय करके हरिणी तो सिंह के बालक को अपने पुत्र की बुद्धि से स्पर्श करती वा प्यार करती है और गौ है सो व्याघ्र के बच्चे को पुत्र की बुद्धि से प्यार करती है; मार्जारी हंसके बच्चे को स्नेह की दृष्टि से वशीभूत हो स्पर्शती है तथा मयूरनी सर्प के बच्चे को प्यार करती है; इसी प्रकार अन्य प्राणी भी जन्म से जो बैर है उसको मदरहित हो छोड़ देते हैं। यह साम्यभाव का ही प्रभाव है।

एकः पूजां रचयति नरः पारिजातप्रसूनैः

क्रुद्ध कण्ठे क्षिपति भुजगं हन्तुकामस्ततोऽन्यः।

तुल्या वृत्तिर्भवति च तयोर्यस्य नित्यं स योगी

साम्यारामं विशति परमज्ञानदत्तावकाशम्॥ (27)

जिस मुनि की ऐसी वृत्ति हो कि कोई तो नग्रीभूत होकर पारिजात के पुष्पों से पूजा करता है और कोई मनुष्य क्रुद्ध होकर मारने की इच्छा से गले में सर्प की माला पहनाता है, इन दोनों में ही जिसकी सदा रागद्वेषरहित समभाव वृत्ति हो, वही योगीश्वर समभावरूपी आराम (क्रीडावन) में प्रवेश करता है, और ऐसे समभावरूप क्रीडावन में ही केवलज्ञान के प्रकाश होने से अवकाश है।

नोऽरण्यानगरं न मित्रमहिताल्लोष्टान्न जाम्बूनदं

न स्रग्दाम भुजङ्गमात्र दृषदस्तल्पं शशाङ्कोज्जलम्।

यस्यान्तःकरणे बिभर्ति कलया नोत्कृष्टतामीषद-

प्यार्यास्तं परमोपशान्तपदवीमारूढमाचक्षते॥ (28)

जिस मुनि के मन में वन से नगर, शत्रु से मित्र, लोष्ट से कांचन (सुवर्ण), रस्सी व सर्प से पुष्पमाला, पाषाणशिला से चन्द्रमा समान उज्ज्वल शय्या, इत्यादि पदार्थ अन्तःकरण की कल्पना से किंचिन्मात्र भी उत्कृष्ट नहीं दिखते उस मुनि को आर्य सत्पुरुष परम उपशान्तरूप पदवी को प्राप्त हुआ कहते हैं। भावार्थ-वनादिक से नगरादिक में कुछ भी उत्तमता न मानें वही मुनि रागद्वेषरहित साम्यभावयुक्त है।

सौधोत्सङ्गे स्मशाने स्तुतिशपनविधौ कर्दमे कुंकुमे वा।

पल्यङ्के कण्टकाग्रे दृषदि शशिमणौ चर्मचीनांशुकेषु।

शीर्णाङ्के दिव्यनार्यामसमशमवशाद्यस्य चित्तं विकल्पै-

र्नालीढं सोऽयमेकः कलयति कुशलः साम्यलीलाविलासं॥ (29)

जिस मुनि का चित्त महलों के शिखर में और स्मशान में तथा स्तुति और निन्दा के विधान में, कीचड और केशर में, पल्यङ्क-शय्या और कांटों के अग्रभाग में, पाषाण और चन्द्रकांत मणि में, चर्म और चीनदेशीय रेशम के वस्त्रों में, और क्षीणशरीर व सुन्दर स्त्री में अतुल्य शान्तभाव के प्रभाव से विकल्पों के स्पर्शित न हो, वही एक प्रवीणमुनि समभाव की लीला के विलास का अनुभव करता है; अर्थात् वास्तविक समभाव ऐसे मुनि के ही जानना।

चलत्यचलमालेयं कदाचिद्वैवयोगतः।

नोपसर्गैरपि स्वान्तं मुनेः साम्यप्रतिष्ठितम्॥ (30)

अर्थ-यह प्रत्यक्ष अचल पर्वतों की श्रेणी कदाचित् चलायमान भी हो जाय तो आश्चर्य नहीं; किन्तु साम्यभाव में प्रतिष्ठित मुनि का चित्त उपसर्गों से कदापि नहीं चलता, ऐसा लीन हो जाता है।

उन्मत्तमथ विभ्रान्तं दिग्मूढं सुप्तमेव वा।

साम्यस्थस्य जगत्सर्वं योगिनः प्रतिभासते॥ (31)

साम्यभाव में स्थित मुनि को यह जगत् ऐसा भासता है कि मानों यह जगत् उन्मत्त है वा विभ्रमरूप है अथवा दिशा भूला हुआ अथवा सोता है।

स्व की उपलब्धि हेतु स्वयोग्यता ही प्रमुख

(चालः 1.आत्मशक्ति... 2.क्या मिलिए...)

स्व-स्व योग्यता के अनुसार ही, होती है स्व-स्व की उपलब्धि।

बाह्य निमित्त भले सहयोगी बने, स्वयोग्यता ही उसमें प्रमुख होती॥

यथा बीजानुसार होते वृक्ष, न केवल बाह्य मृदाजल से।

एक समान मृदा जलादि से भी, नीम्ब से नीम्ब आम से आम फले॥ (1)

स्वयोग्यता स्वआत्मिक शक्ति, संसार अवस्था में क्षयोपशम।

द्रव्य क्षेत्र काल भावादि निमित्त, स्वयोग्यता है आत्म शक्ति क्षयोपशम॥

स्वयोग्यता का ही विस्तार यथा, आत्मविश्वास आत्मज्ञान आचरण।

एकाग्रता, लगनशीलता, धैर्य, दृढ़ संकल्प, लक्ष्य निष्ठ, आत्मानुशासन॥ (2)

सनम्र सत्यग्राही उदारमना, गुण गुणी प्रशंसा व गुण ग्रहण।

स्व पर गुण दोष से भी शिक्षा ग्रहण, समता शान्ति युक्त सदा प्रयत्न॥

अन्धानुकरण आलस्य प्रमाद रिक्त, पर प्रतिस्पर्द्धा रिक्त स्व प्रतिस्पर्द्धा युक्त,

स्वयोग्यता बढ़ाने में सत् पुरुषार्थ, स्व को श्रेष्ठ ज्येष्ठ बनाने में प्रयत्न॥ (3)

परनिंदा अपमान वैर विरोध त्याग, ईर्ष्या, तृष्णा, घृणा, द्वेष, त्याग।

स्व पर विश्व कल्याण भावना युक्त, परावलम्बी पर नियंत्रण रहित॥

अपेक्षा, उपेक्षा, प्रतीक्षा त्याग, संकल्प, विकल्प, संक्लेश त्याग।

कौन क्या कहे व सोचे करे त्याग, आदर्श अनुकरण छिद्रान्वेषण त्याग।। (4)

स्वआत्मशक्ति पर होना दृढ़ विश्वास, सभी योग्यता में योग्यता प्रमुख।

इससे युक्त होता ज्ञान सुज्ञान, जिससे होता सम्यक् आचरण।।

जो जिस भाषा को नहीं जानता, शुद्ध सम्बद्ध उस भाषा को न समझता।

तथाहि-धर्म-न्याय, कानून, तर्क, विज्ञान, गणित, आत्मा परमात्मा।। (5)

स्व आत्मा में शक्ति अनंतानन्त, तन-मन इन्द्रिय मस्तिष्क से अधिक।

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र्य द्वारा आत्म शक्ति प्रगट होते एकाग्र द्वारा।।

इससे ही आत्मा का होता विकास, जिस से सहज होते सभी विकास।

सांसारिक से लेकर मोक्ष पर्यन्त, 'कनक' का लक्ष्य परम आत्मविकास।। (6)

स्वयोग्यता के अनुसार होते, आत्मविश्वास ज्ञान आचरण।

यथा देखना व न देखना के समान, चक्षुवान् व अन्ध के समान।।

अनन्त ज्ञेय होते विश्व में, स्व-स्व योग्यता से जानते जीव।

सर्वज्ञ जानते एक साथ सर्व ज्ञेय, अन्य जीव जानते स्वयोग्यतानुसार।। (7)

अनन्त आकाश को न देखती चक्षु, सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्रादि वस्तु।

तथाहि अन्य इन्द्रिय मन मस्तिष्क, न जानते समग्रता से समस्त।।

महान् आत्मा को न जानते क्षुद्रात्मा, सुगुणी को कुगुणी सूर्य को अन्धा।

आत्मानुभव को न जानते जडात्मा, निर्जीव में न होता जीवात्मा।। (8)

(नन्दौड़ दि.28/11/2019 रात्रि 9.21)

(दूसरों की अयोग्यता से भी प्रेरित है यह कविता)

संदर्भ-

जैन धर्म में तो अरिहन्त भी गुरु है तो सिद्ध भी गुरु हैं आचार्य, उपाध्याय, साधु भी गुरु हैं। उन्हें पंच गुरु या पंच परमेष्ठी कहते हैं। प्रत्येक देश में, काल में, समाज में जो क्रान्ति हुई हो रही है और होगी उसका मूल कारण गुरु ही हैं। गुरु एक क्रांतिकारी, सत्य-शोधक, नवीन-नवीन तथ्य के उन्नायक महापुरुष होते हैं। गुरु के बिना यह कार्य नहीं हो सकता है। अलेक्जेंडर (सिकन्दर) महान् बना गुरु अरस्तु के कारण। चन्द्रगुप्त मौर्य दिग्वजयी बना गुरु कौटिल्य चाणक्य के कारण। शिवाजी, छत्रपति बना गुरु समर्थ रामदास के कारण। मोहनदास, महात्मागाँधी बने रायचन्द्र जैन

के कारण। इस प्रकार ऐतिहासिक काल से पहले ही राजा, महाराजा, सम्राट भी गुरुओं के चरण के सानिध्य में जाकर ज्ञान-विज्ञान, आत्मविद्या, राजनीति, अर्थशास्त्र, युद्धविद्या, कलाकौशल, गुरुओं से ग्रहण करते आ रहे हैं।

‘गुरु बिना सर्वे भवन्ति: पशुभिः सन्निभ’ गुरु के बिना मनुष्य पशु के सदृश है। पशुओं के कोई गुरु नहीं होते हैं इसलिए पशुओं की उन्नति नहीं होती है। इस ही प्रकार मनुष्य-समाज में गुरु नहीं होते तो मनुष्य समाज भी पशुवत् हो जाता।

‘गुरु बिना कौन दिखावे वाट, अवघड़ डोंगर घाट’

गुरु के बिना यथार्थ मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा? यह संसार कंटकाकीर्ण, अत्यन्त दुरुह, भयंकर जंगलघाटी के समान है। उसको पार करने के लिये गुरु रूपी मार्गदर्शक की नितान्त आवश्यकता है।

आत्मा का गुरु आत्मा

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वाद्भष्टिज्ञापकत्वतः।

स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥ (34) इष्टो.

Because of its internal longing for the attainment of the highest ideal, because of its understanding of that ideal, and because of its engaging itself in the realisation of its ideal, because of these the soul is its own preceptor!

पुनः शिष्य प्रश्न करता है कि गुरुदेव! मोक्ष सुख अनुभव विषय में गुरु कौन है? गुरु कहते हैं-जो शिष्य निश्चय से सतत् कल्याण चाहते और उसके जिज्ञासा के अनुसार उपाय बताते हैं तथा जो अप्रवृत्तमान है उन्हे प्रवृत्त करते हैं उन्हे निश्चय से गुरु कहते हैं। इसी प्रकार होने पर आत्मा का गुरु आत्मा ही है। क्योंकि स्वयं आत्मा स्व-मोक्षसुख की अभिलाषा करता है अर्थात् मोक्ष सुख मुझे मिले ऐसे सत् प्रशंसनीय आकांक्षा को करता है। स्व-आत्मा स्वयं के लिए मोक्ष सुख की जिज्ञासा करता है, जिज्ञासित मोक्ष सुख का उपाय को आत्म-विषय में ज्ञापन देता है अर्थात् मोक्षसुख का उपाय सेवन करो! ऐसे बोध देता है। तथा मोक्ष सुखोपाय में स्वयं को नियुक्त करता है। इसी प्रकार सुदुर्लभ मोक्षसुख उपाय में यह दुरात्मा अभी तक प्रवृत्त नहीं हुआ है। ऐसे मोक्ष सुख में अप्रवृत्तमान आत्मा को स्वयं आत्मा प्रवृत्तमान करता है इसलिए

निश्चय से आत्मा का गुरु आत्मा ही है।

समीक्षा:-यहाँ पर आचार्य श्री ने निश्चयनय से गुरु-शिष्य के बारे में संक्षिप्त सारगर्भित प्रकाश डाला है। व्यवहारनय से आचार्य-उपाध्याय-साधु गुरु होने पर भी निश्चय नय से आत्मकल्याण में प्रवृत्तमान स्वयं ही स्वयं का गुरु है। क्योंकि भले गुरु हितमार्ग का उपेदेश करता है, परन्तु प्रवृत्त तो होता है स्वयं जीव। स्वयं आचार्य श्री आगे इस विषय पर विशेष प्रकाश डालेंगे इसलिए यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहा हूँ तथापि आचार्य अकलक देव कृत स्वरूप सम्बोधन, से कुछ विषय उद्धृत कर रहा हूँ। यथा:

“इत्याद्यनेक, धर्मत्वं, बन्धमौक्षौ तयोः फलम्।

आत्मा स्वीकुरुते तत्तत्कारणोः स्वयमेव तु”॥ (9)

कर्मबन्ध भवभ्रमण मिथ्यात्व, अज्ञान, असंयम से आस्रव बन्ध तत्त्व के रूप में होता है और सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र, द्वारा संवर निर्जरा की प्रक्रिया से मोक्ष होता है। आत्मा स्वयं विभिन्न कारणों से बन्ध या मोक्ष की प्रक्रिया किया करता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा, स्वयं तत्फलमश्नुते।

स्वयं भ्रमति संसारे, स्वयं तस्माद्विमुच्यते।।

यह आत्मा स्वयं अपने रागद्वेष मोह आदि भावों के द्वारा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय कर्मों का बन्ध किया करता है और जब कर्म का उदय होता है तो आत्मा स्वयं करके अच्छे या बुरे फल को भोगा करता है, चारों गतियों में जन्म मरण भी यह आत्मा अपने कर्मों के अनुसार किया करता है। तथा निर्बन्ध गुरु-द्वारा जिनवाणी सुनकर जब यह शरीर आत्मा के भेदभाव समझकर आत्म का श्रद्दालु बनता है, संसार शरीर और विषय-भोगों से विरक्त होता है-यह सम्यग्दृष्टि बनकर स्वयं कर्मों से मुक्त होने के मार्ग पर चल पड़ता है। अपनी आत्मचर्या सम्यक्चारित्र को उन्नत करता हुआ संवर निर्जरा की पद्धति से शुक्लध्यान द्वारा समस्त कर्मों से छूटकर, जन्म मरण का सदा के लिये विनाश करके मुक्त भी अपने आप होता है। यानी-यह आत्मा स्वयं कर्ता, भोक्ता, भ्रमणाकर्ता और मुक्त होता है।

कर्ता यः कर्मणा भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।

बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि॥ (20)

जीव को संसार में घुमाने वाला, उसको सुख दुःख देने वाला तथा संसार और कर्मों से जीव को मुक्त करने वाला कोई व्यक्ति नहीं है, यह समस्त कार्य आत्मा स्वयं करता है। वह आत्मा स्वयं अपने मिथ्यात्व, रागद्वेष, मोह, ममतादि भावों से शरीर, परिवार, धन मकान आदि को अपना करके कर्मबन्ध किया करता है तथा कर्मों के उदय आने पर उन कर्मों का फल आत्मा को स्वयं भोगना पड़ता है। आत्मा तथा कर्म, नोकर्म (शरीर) का भेद-विज्ञान हो जाने पर सम्यक्त्व, सत्-ज्ञान स्वयं होता है तथा अन्तरंग बहिरंग तपश्चर्या द्वारा कर्मों से मुक्त भी आत्मा स्वयं होता है।

उसके संसार-भ्रमण तथा संसार छूटने में अन्य कोई सहायक नहीं होता। यह सभी सांसारिक पारमार्थिक आध्यात्मिक कार्य जीव अकेला ही करता है।

कार्य के लिए बाह्य कारण

नाज्ञो विज्ञत्व मायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।

निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्॥ (35)

Those not get qualified for the acquisition of truth cannot become the knowers of truth; the knowers of truth cannot become devoid of it; external teachers are useful like either which is but helpful in the motion (of moving things).

“स्वाभाविक हि निष्पतौ, क्रियागुणमपेक्ष्यते।

न व्यापारशतेनापि-शुकवत्याठयते वकः”॥

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि यदि आत्मा का गुरु आत्मा ही है तब परम्परा गुरु से शिष्य कैसे शिक्षा प्राप्त करता है? मुमुक्षु के द्वारा धर्माचार्य की सेवा आदि भी नहीं होगी। इसका समाधान आचार्य श्री निम्न प्रकार करते हैं-

हे भद्र! तत्त्वज्ञान जो प्राप्त करने में अयोग्य जो अभव्य हैं वह हजारों धर्माचार्यों के उपदेश से भी प्राप्त नहीं कर पाते।

जिसमें जो स्वभाव है यह स्वभाव की ही अभिव्यक्ति बाह्य क्रिया-निमित्त से होती है परन्तु जिसमें जो स्वभाव नहीं है उसकी अभिव्यक्ति सैकड़ों क्रियाओं से भी नहीं हो सकती है। जैसे कि तोता को पढ़ाने से तोता पढ़ सकता है परन्तु बगुला नहीं पढ़ सकता है। उसी प्रकार से अंतरंग में-विज्ञप्ति की शक्ति रखता है वहीं अभिव्यक्ति

रूप से ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। परन्तु जिसमें यह शक्ति नहीं है वह हजारों से भी अभिव्यक्ति नहीं कर सकता है।

प्रशमयोगी उस व्रजपात से भी चलायमान नहीं होते हैं जिसके भय से पथिक पथ-भ्रष्ट हो जाते हैं और विश्व-ध्वनित हो जाता है। क्योंकि वह योगी बोधरूपी प्रदीप से मोहरूपी घना अंधकार को नष्ट करके सम्यग्दृष्टि को प्राप्त कर चुके हैं। ऐसे भयंकर व्रजपात से भी जो चलायमान नहीं होते हैं वे अन्य छोटे-छोटे उपद्रवों से कैसे चलायमान होंगे? कहने का तात्पर्य यह है कि व्रजरूपी बाह्य निमित्त से भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि महायोगी चलायमान नहीं होते हैं।

परन्तु बाह्य अपेक्षा की आवश्यकता होती है, ज्ञान-प्राप्ति के लिए गुरु आदि बाह्य निमित्त मात्र है और शिष्य की योग्यता अन्तरंग मुख्य कारण है क्योंकि वही साक्षात् साधक है। इसके लिए उदाहरण है गति परिणत जीव, पुद्गल के जिस प्रकार धर्मास्तिकाय निमित्त होता है।

समीक्षा:—यह वर्णन आध्यात्मिक दृष्टि से होने के कारण गुरु रूपी निमित्त को ज्ञान प्राप्ति में उदासीन कारण बताया गया है। परन्तु गति के लिए धर्मास्तिकाय जिस प्रकार केवल उदासीन कारण है उसी प्रकार ज्ञान प्राप्ति में गुरु उदासीन कारण नहीं है। यदि ऐसा होता तो तीर्थंकर क्यों उपदेश करते। गणधर भी उपदेश क्यों सुनते? आचार्य भी ग्रन्थ क्यों लिखते? बिना देशना-लब्धि सम्यक्दर्शन क्यों नहीं होता? यह सब होते हुए भी अयोग्य शिष्य को अपनी कमी को बताने के लिए, गुरु के अकर्तापन को जताने के लिए यह सब कहा गया है। नहीं तो गुरु शिष्य, गुरुकुल, विद्यालय, ग्रन्थ आदि की आवश्यकता क्यों होती।

ध्यान-योग्य, योग्यता एवं परिस्थिति

अभवच्चित्तविक्षेपः एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।

अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः॥ (36)

He in whose mind no disturbances occur and who is established in the knowledge of the self—such an ascetic should engage himself diligently in the contemplation of his soul, in a lonely place.

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है-गुरुदेव ! अभ्यास क्यों करना चाहिये? अर्थात् शिष्य की जिज्ञासा यह है कि अभ्यास का प्रयोग उपाय क्या है? बार-बार सुप्रसिद्ध स्थान, नियम आदि में प्रवृत्त होना अभ्यास है। इस संवित्ति रूप जिज्ञासात्मक शंका का समाधान आचार्य श्री शिष्य के बोध के लिये करते हैं।

संयमी-योगी को आलस्य निद्रादि को निरसन (जय) करके योग्य शून्य गृहादि में स्वात्मा का अभ्यास करना चाहिए। बाल्य मनुष्यादि रहित एकान्त स्थान में तथा अंतरंग राग, द्वेषादि रहित एकान्त-भाव ये योगी को निजात्मा का ध्यान करना चाहिए। क्योंकि दोनों प्रकार की एकांत से रहित अवस्था में स्थित होने पर विक्षोभ उत्पन्न होता है जिससे आत्म-ध्यान नहीं हो पाता है।

‘मैं’ ऐसा स्वसंवेदन से आत्मा सदा सदा स्व अस्तित्व को प्रसिद्ध करता

-तीर्थकर भगवान नेमिनाथ

शतमुख-शत-पूज्यः प्राज्य सद्बोधराज्यः;

स्मरतसुरनाथः प्रास्त-दृष्टा घयुथः।

पदनत-वनमाली भव्य-पद्मांशुमालि;

दिसतु शमनिशं नो नेमिः आनन्दभूमिः॥ (नियमसार टीका)

अहा ! कैसा होगा वह पावन दृश्य ! जहाँ एक ओर तो मुनिगण सर्वज्ञ प्रभु की स्तुति करते होंगे और दूसरी ओर श्रीकृष्ण तथा इन्द्रादि भक्ति से सिर झुकाकर प्रभु नेमिनाथ की वन्दना कर रहे होंगे। वाह, नेमिनाथ और श्रीकृष्ण-एकसाथ दो तीर्थकरों का सुयोग; एक तो वर्तमान तीर्थकर और दूसरे भावी तीर्थकर, जो आगामी चौबीसी में भरतक्षेत्र के तीर्थकर होंगे।

महाराजा समुद्रविजय, बलभद्र, श्रीकृष्ण तथा उनके पुत्र-पौत्र शम्भुकुमार, प्रद्युम्नकुमार, अनिरुद्धकुमार आदि समवसरण में विराजमान परमात्मा नेमिनाथ के दर्शनों से अतिप्रसन्न हुए। महाराजा श्रीकृष्ण को महान् गौरव का अनुभव हुआ कि अहा ! मेरे लघुभ्राता तीर्थकर हुए; इतना ही नहीं, धर्म के किसी अचिन्त्य उल्लास से उन्होंने प्रभु चरणों में तीर्थकर प्रकृति बाँधना प्रारम्भ किया। (श्रीकृष्ण की भाँति

बलभद्र के भी भावी तीर्थकर होने का पुराणों में उल्लेख है।) त्रिलोक के इन्द्रों द्वारा पूज्य तथा सर्वोत्कृष्ट ज्ञान साम्राज्य के स्वामी ऐसे परमात्मा नेमिनाथ ने सर्वप्रथम गिरनार के तपोवन में दिव्यध्वनि द्वारा मोक्षमार्ग बतलाकर भव्यजीवों को परम आनन्दित किया। हस्तिनापुर से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पाण्डव (जो कि नेमिनाथ प्रभु के बुआ-मामा के भाई होते थे) भी प्रभुदर्शन हेतु गिरनार आ पहुँचे और वे सर्वज्ञ की धर्मसभा देखकर अति आनन्दित हुए।

नेमिप्रभु की धर्मसभा में महाराजा वरदत्त (जिन्होंने नेमिनाथ प्रभु को मुनिदशा में प्रथम आहार दान दिया था) प्रभु के धर्ममंत्री (गणधर) बने। उन वरदत्त सहित ग्यारह गणधर समवसरण-सभा को सुशोभित करते थे। इतना ही नहीं, प्रभु के सह-दीक्षित हजारोंमुनियों में से डेढ़ हजार मुनिवर तो केवलज्ञान प्राप्त करके अरिहन्त पद पर समवसरण में 5,000 धनुष ऊपर आकाश में विराजते थे। वास्तव में अद्भुत था वह भगवन्तों का सम्मेलन! तदुपरान्त अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी, श्रुतकेवली तथा विविध ऋद्धियों के धारी कुल 18,000 मुनिवर उस धर्मसभा में मोक्ष की साधना कर रहे थे; राजमति आदि आर्थिकायें भी अब गिरि गुफा का निवास छोड़कर 40,000 आर्थिकाओं के संघसहित प्रभु के समवसरण में शोभायमान थीं। एक लाख श्रावक और तीन लाख श्राविकायें सम्यक्त्व एवं व्रतसहित मोक्ष की उपासना कर रहे थे। देवों और तिर्यचों का तो कोई पार नहीं था। प्रभु की धर्मसभा में सबको आत्मवैभव का अपूर्वनिधान मिल रहा था। अहा, कितनी शोभायमान होगी गिरनार की वह धर्म सभा और जगत् में सौराष्ट्र के गिरनार तीर्थ का कितना महान् गौरव होगा। आज भी वह गिरनार लाखों-करोड़ों जीवों द्वारा तीर्थरूप में पूजित है और भगवान नेमिनाथ की महिमा जगत में प्रकाशित कर रहा है।

गिरनार के उस आम्रवन के बीच आश्चर्यकारी धर्मसभा में प्रभु नेमिनाथ ने दिव्यध्वनि द्वारा धर्मोपदेश दिया और सर्वाधिक आनन्दजनक ऐसा परमात्मवैभव भव्यजीवों को बतलाया। **भो भो भव्यजीवो!** हमें जो सर्वज्ञ-परमात्म पद प्रकट हुआ है, तुम्हारे आत्मा में भी ऐसा ही परमात्म पद भरा है; उसे पहिचानकर श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र्य द्वारा उसकी उपासना करके तुम भी परमात्मा बन सकते हो। इस प्रकार चैतन्यतत्त्व की अगाध महिमा जानकर अपने में उसकी

अनुभूति करना सो जैनशासन है। जिस प्रकार भगवान ऋषभदेव की धर्मसभा में मोक्षगामी भरत राजा ने धर्म का श्रवण किया था, उसी प्रकार नेमिनाथ की धर्मसभा में मोक्षगामी पाण्डवों ने तथा गजकुमार, प्रद्युम्न आदि ने धर्म का श्रवण किया। प्रभु की आयु 1,000 वर्ष की थी; उसमें से तीन सौ वर्ष की आयु में प्रभु केवली परमात्मा हुए; पश्चात् 700 वर्ष तक तीर्थंकर रूप में विहार करके भारतभूमि में धर्मामृत की वर्षा की।

धर्मचक्र सहित देश-देशान्तर में विहार करते हुए प्रभु नेमिनाथ कभी-कभी रैवतगिरि (गिरनार) पधारते थे। एकबार प्रभु का आगमन होने पर श्रीकृष्ण-बलभद्र परिवार सहित प्रभु के दर्शन करके अति आनन्दित हुए और धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् पूछा-हे देव! इस संसार में आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी अनेक मिथ्या मान्यतायें चलती हैं कि आत्मा जैसी कोई वस्तु है ही नहीं; कोई उसे पृथ्वी, जलादि अचेतन के संयोग से हुआ मानते हैं; कोई उसे जड़-शरीररूप ही मानते हैं; कोई उसे एकान्त कूटस्थ, अपरिणामी मानते हैं तो कोई एकान्त क्षणिक नाशवान मानते हैं, कोई उसे पर्याय, गुण रहित मानते हैं;-ऐसी अनेक प्रकार की मिथ्या मान्यतायें चलती हैं; तो हे प्रभो! आत्मा का सत्य स्वरूप क्या है? वह समझाइये!

प्रभु की वाणी में आया-हे भव्यराज! तुम भावी तीर्थंकर हो; तुमने उत्तम प्रश्न पूछा। सुनो, सत्यरूप इस विश्व में अनन्त जीवात्मायें स्वतंत्ररूप से विद्यमान तत्त्व है, उनमें से 'मैं नहीं हूँ'-ऐसा अपना अभाव सिद्ध नहीं कर सकता, अपने अस्तित्व को अस्वीकार नहीं कर सकता; क्योंकि 'मैं नहीं हूँ'-ऐसा कहनेवाला स्वयं ही जीव है। आत्मा सत्-विद्यमान है, वह ज्ञानमय-सुखमय वस्तु है, स्वयं अपने में है; अपने गुण-पर्यायरूप भावों में स्थित, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है। सदा शरीर से भिन्न लक्षणवाला उसका अस्तित्व है, वह 'ज्ञाता' ऐसे चिह्न द्वारा ज्ञात होता है। यद्यपि अरूपी होने के कारण वह इन्द्रियों द्वारा भले ही दृष्टिगोचर नहीं होता हो, परन्तु अन्तर में इन्द्रियों से परे अपने अनुभवज्ञान द्वारा वह स्पष्ट ज्ञान होता है-अनुभव में आता है। राग के तथा बाह्यविषयों के बिना, एकाकी ही सुखी होने का उसका स्वभाव है। ऐसे परमतत्त्व रूप अपने आत्मा को जानकर हे भव्यो! तुम कषायों से भिन्नरूप उसकी उपासना करो, यही मोक्ष साधने की रीति है।

आत्मा के अस्तित्व की ऐसी सुन्दर सिद्धि सुनकर सर्व श्रोताजनों का चित्त प्रसन्न हो गया। अनेक भव्यजीवों ने अपने सम्यक्त्व को उज्ज्वल किया।

(चौबीस तीर्थंकर महापुराण)

...26 नवम्बर, सम्बिधान दिवस के उपलक्ष्य में...

आध्यात्मिक सम्बिधान।

...आत्म गौरव चिन्तन...

विश्व की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि हेतु करूँ पुरुषार्थ (स्व-उपलब्धि ही परम उपलब्धि, अतः अन्य सभी हेय)

- आचार्य कनकनन्दी

(चालः 1.यमुना किनारे...2.भातुकली...3.सायोनारा...4.छोटी-छोटी गैया...5.देहाची तिजोरी...6.शोधिशी मानवा...)

मैं हूँ श्रद्धावान् हूँ मैं प्रज्ञावान्...मैं हूँ श्रेष्ठतम मैं हूँ ज्येष्ठतम...

मैं हूँ सफलतम मैं हूँ गौरवान्...स्व उपलब्धि लक्ष्य हेतुभूत/(निमित्त, कारक)...(ध्रुव)...
जिसे न जानते वैज्ञानिक ज्येष्ठ...उसका अनुभव करूँ मैं सतत...

विज्ञानी न जानते (पूर्णतः) मन-मस्तिष्क...मेरा श्रद्धान-ज्ञान है आत्म तक...(1)..
जिसको क्रय न कर सकते धनी...जिसका उपभोग न कर सकते कामी...

जिसका सुख न पा सकते मानी...उन सभी से परे मैं आत्मा के स्वामी...(2)...
जिसका अधिकार न पाते नेता...जिसका सौन्दर्य न पाते अभिनेता...

जिसका खेल न जानते खेलनेता...उन सभी से परे मैं भोगकर्ता...(3)...
जिसे न पढ़ा सकते विश्वविद्यालय...जिसका न्याय न जानते न्यायालय...

जिसका विधान न जाने सम्बिधान...उन सभी से परे मैं शोधछात्र...(4)...
जिसे न देख सकते सूक्ष्मदर्शीयन्त्र...जिसे न देख सकते दूरदर्शीयन्त्र...

जिसका शोध-बोध न कर सके यन्त्र...उन सभी से परे मैं करूँ ज्ञान-ध्यान...(5)...
जिसे न कोई ग्रन्थ करे सम्वेदन...जिसे कोई तीर्थ न करे अनुभव...

जिसका लौकिक ज्ञान से न होता ज्ञान...उन सभी से परे मैं करूँ वेदन...(6)...
विश्व की भौतिक सम्पत्ति से भी श्रेष्ठ...विश्व की सत्ता-शक्ति से भी ज्येष्ठ...

ख्याति पूजा लाभ (प्रसिद्धि) वर्चस्व से भी पूज्य...उस श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-पूज्य का पूजक...(7)...
जिसकी पूजा से पूजक बने पूज्य...जिसकी प्राप्ति से बने जगज्ज्येष्ठ...

जिसकी प्राप्ति से आत्मा बने परमात्मा...उस हेतु ही 'कनक' करे पुरुषार्थ...(8)...

नन्दौड़, दि-25/11/2019, रात्रि 8.10

संदर्भ-

अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वं विक्षिप्तं भ्रान्तिरात्मनः।

धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रेत्ततः॥ (36)

मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष आदि के क्षोभ से रहित मन आत्मा का स्वभाव है और मोह तथा राग-द्वेष से व्याकुल मन आत्मा की भ्रान्ति अर्थात् भ्रम है। इसलिए राग-द्वेष मोह से रहित शुद्ध मन बनाना चाहिए। राग, द्वेष, मोह आदि दुर्भावों से मन को मलीन नहीं करना चाहिये।

अविद्याभ्यास संस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।

तदैव ज्ञान संस्कारै, स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते॥ (37)

मन अज्ञान के अभ्यास के संस्कारों द्वारा अपने वश में न रहकर इन्द्रियों के विषय भोगों में फँस जाता है वही मन आत्मा शरीर के भेद-विज्ञान के संस्कारों से अपने आत्म स्वरूप में ठहर जाता है।

हेय का आलम्बन त्यागकर स्वावलम्बी बनो

हेयापादेयतत्त्वस्य स्थितिं विज्ञाय हेयतः।

निरालम्बोऽन्यतः स्वस्मिन्नुपेये सावलम्बनः॥ (19)

पद्य-भावानुवाद-(चालः आत्मशक्ति...)

हेय उपादेय तत्त्व को जानकर हेय त्यागकर स्व को वरो।

हेय का आलम्बन त्याग करके स्व उपादेय का आलम्बन करो।।

सन्दर्भ-

उपशम से क्रोध का हनन करे, मृदुता से मान को जीते, ऋजु भाव से माया को और सन्तोष से लोभ को जीते।

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगोन्द्रगोचरः।

बाह्यः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।। (27)

I am, one, I am without delusion, I am the knower of things, I am knowable by master ascetics; all other conditions that arise by the union of the not-self are foreign to my nature in every way!

द्रव्यार्थिक नय से मैं एक हूँ, मैं ही पूर्व परावस्थाओं में अनुश्रुत रूप में रहने के कारण मैं एक हूँ यह मेरा है, मैं इसका हूँ इसी प्रकार के अभिप्राय से शून्य होने के कारण निर्मम हूँ। शुद्ध नय की अपेक्षा द्रव्य कर्म, भावकर्म से निर्मुक्त होने के कारण मैं शुद्ध हूँ। स्व-पर प्रकाश होने के कारण मैं ज्ञानी हूँ। अनन्त पर्यायों को यगुपत् जानने वाले केवलज्ञानी और श्रुतकेवली के शुद्धोपयोगस्वरूप ज्ञान का विषय हूँ, मैं स्वयवेद्य के द्वारा जानने योग्य हूँ। जो द्रव्यकर्म के सम्बन्ध से प्राप्त भाव तथा देहादि है वे सर्व मेरे से सर्वथा सर्व प्रकार से बाह्य है, भिन्न है।

समीक्षा:-इस श्लोक में आचार्य श्री ने स्वयं को अनुभव करने के/ध्यान करने के/प्राप्त करने के कुछ उपाय बतायें हैं। भले व्यवहार नय से द्रव्य कर्म आदि के संयोग से जीव में विभिन्न वैभाविक भाव तथा शरीर आदि पाये जाते हैं तथापि शुद्ध द्रव्यार्थिक नय से यह आत्मा के स्वभाव नहीं है। ये सब पर संयोगज अशुद्ध भाव है।

अहमेक्यो खलु सुद्धो णिममओ णाणदंसणमग्गो।

तहिम ठिओ तच्चिदो सेस सव्वे खय णेमि।। (73) स.सार

टीका-यह मैं ज्ञाता हूँ सो प्रत्यक्ष अखंड, अनंत, चैतन्यमात्र ज्योति हूँ। अनादि, अनंत, नित्य उदयरूप, विज्ञानधन स्वभाव रूप से तो एक हूँ और समस्त कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण स्वरूप जो कारणों का समूह उसकी प्रक्रिया से पार उतरा दूरवर्ती निर्मल, चैतन्य अनुभूति मात्र रूप से शुद्ध हैं। जिनका द्रव्य स्वामी है ऐसे जो क्रोधादि भाव उनकी विश्व रूपता (समस्तरूपता) उनका स्वामित्व से सदा ही अपने नहीं परिणमने के कारण उनसे ममता रहित हूँ। तथा वस्तु का स्वभाव सामान्य विशेष स्वरूप है इसीलिए चैतन्यमात्र तेज पुंज भी वस्तु है इस कारण सामान्यविशेष स्वरूप जो ज्ञानदर्शन उनसे पूर्ण हूँ। ऐसा आकाशादि द्रव्य की तरह परमार्थ स्वरूप वस्तु विशेष हूँ। इसलिए मैं इसी आत्मस्वभाव में समस्त पर द्रव्य से प्रवृत्ति की निवृत्ति करके निश्चल स्थित हुआ समस्त परद्रव्य के निमित्त से जो

विशेष रूप चैतन्य में चंचल कल्लोलें होती थी, उनके विरोध से, इस चैतन्य स्वरूप को ही अनुभव करता हुआ अपने ही अज्ञान से आत्मा में उत्पन्न क्रोधादिक भावों का क्षय करता हूँ ऐसा आत्मा में निश्चय कर तथा जैसे बहुत काल का ग्रहण किया जो जहाज या वह जिसने छोड़ दिया है, ऐसे समुद्र के भँवर की तरह शीघ्र ही दूर किये हैं समस्त विकल्प जिसने, ऐसा निर्विकल्प, अचलित निर्मल आत्मा को अवलम्बन करता विज्ञानधन होता हुआ यह आत्मा आस्रवों से निवृत्त होता है।

आदिमध्यान्तहीनोऽहमाकाशसदृशोऽस्यहम्।

आत्मचैतन्यरूपोऽहमहामानंदचिद् घनः।

आनन्दामृतरूपोऽहमात्मसंमोऽह गन्तरः

आत्मकामोहमाकाशात्परमात्मेश्वरोऽस्यहम्॥ (92)

ईशानोऽस्यह मीडयोऽह मनुत्रमपुरुषः।

उत्कृष्टोऽहमुपद्रष्टाद्रहनुतरोऽस्यहम्॥ (93)

केवलोऽहं कविः कर्माध्यक्षोऽहं करणाधियः।

गुहाशयोऽहं गोप्ताऽहं चक्षुषश्रक्षुररम्यहम्॥ (94)

चिदानन्दोऽस्यहं चेताश्रिद्घनश्रिन्मयोऽस्यहम्।

ज्योतिर्मयाऽस्यहंज्यायान्ज्योतिषांज्योतिरस्यहम्॥ (95) (उपनिषद्)

मैं आदि मध्य और अन्त से रहित हूँ आकाश के सदृश हूँ, मैं आत्म चैतन्य रूप हूँ, आनन्द चेतन घन हूँ। मैं आनन्दामृत रूप हूँ, आत्म सस्थित हूँ, अन्तर हूँ, आत्मा काम हूँ और आकाश में परमात्मा परमेश्वर स्वरूप हूँ। मैं ईशान हूँ, पूज्य हूँ, उत्तम पुरुष हूँ, उत्कृष्ट हूँ, उपद्रष्टा हूँ और पर से भी परे हूँ। मैं केवल हूँ, कवि हूँ, कर्माध्यक्ष हूँ, कारण का अधिपति हूँ, मैं गुप्त आशय हूँ, गुप्त रखने वाला हूँ और नेत्रों का नेत्र हूँ, मैं चिदानन्द हूँ, चेतना देने वाला हूँ, चिद्घन और चिन्मय हूँ, मैं ज्योतिर्मय हूँ, और मैं ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूँ।

अणोरणीयान तद्वन् महानंद विश्रमिदं विचित्रम्।

पुरातनोऽहं पूरीषोऽहमीशो हिरण्योऽहं शिवरूपमस्मि॥ (20)

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पञ्चयाम्यचक्षु च शृणोम्यकर्णः।

अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्त सदाहम्॥ (21)

वेदैरनकैरहमेव वेद्यो वेदान्मकृद्वेदविवेदेव चाहम्॥ (22)

न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रिय बुद्धिरस्ति।

न भूमिरापो ममवहिररस्ति न चानिलो मेऽस्ति च चाम्बरं च॥ (23)

मैं छोटे से भी छोटा और बड़े से भी बड़ा हूँ। इन अद्भुत संसार को मेरा ही स्वरूप मानना चाहिए। मैं ही शिव और ब्रह्मा का स्वरूप हूँ। मैं ही परमात्मा और विराट पुरुष हूँ। वह शक्ति जिसके न हाथ-पैर हैं और न जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है, वह परब्रह्म मैं ही हूँ। सर्वदा चित्त स्वरूप रहता हूँ मुझे कोई जान और समझ नहीं सकता, मैं बुद्धि के बिना ही सब कुछ जानने, स्थूल कानों के बिना कुछ सुनने और स्थूल आँखों के बिना सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूँ। मैं ही वेद का उपदेश करता हूँ, मैंने ही वेदान्त की रचना की है और सारे वेद मेरे ही सम्बन्ध में चर्चा करते हैं मैं जन्म और नाम से परे हूँ। पाप और पुण्य मुझे नहीं छू सकते। मैं शरीर, मन, बुद्धि और इन्द्रियों से रहित हूँ। मेरे भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश कुछ सम्बन्धित नहीं है।

त्यक्त्वा लोकांश्च वेदांश्च विषयाणीन्द्रियाणि च

आत्मन्येव स्थितो यस्तु स याति परमां गतिम्॥ (1)

नामगोत्रादिवरणं देश कालं श्रुतं कुलम्।

वयो व्रतं व्रतंशील ख्यान्नैव सद्यतिः॥ (2)

न संभाषोत्त्रियं काचित्पूर्वदृष्टां च न स्मरेत्।

कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येयल्लिखितामपि॥ (3)

एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामजरतो यतेः।

चित्तं विक्रियतेऽवश्यं यद्धिकारात्प्रणश्यति॥ (4)

तृष्णां क्रोधोऽनृतं माया लोभमोहौ प्रियाप्रिये।

शिल्प व्याख्यानयोगेशः च कामो रागः परिग्रहः॥ (5)

अहंकारो मत्वं च चिकित्सा धर्मसाहसम्।

प्रायश्चित्तं प्रवासश्च मन्त्रौषधगराशिषः।

प्रतिषिद्धानि चैतानि सेवमानो ब्रजेदधः॥ (6)

आगच्छ गच्छ तिष्ठेति स्वागतं सुहृदोऽपि वा।

समानं च न ब्रूयान्मुनिर्मोक्षपरायणः॥ (7)

प्रतिग्रहं न गृहयीयान्नैव चान्यं प्रदापयेत्।

प्रेरयेद्धा तथा भिक्षुः स्वप्रेऽपि न कदाचन॥ (8)

ज्यायाभ्रातृसुतादीनां बन्धूनां च शुभाशुभम्।

श्रुत्वा दृष्ट्वा न कम्पेत शोकमीहौ त्यजेद्यतिः॥ (9)

अहिंसा सत्यमस्तेयब्रह्मचर्या परिग्रहाः।

अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादा स्थैर्यमार्जवम्॥ (10)

अस्नेहो गुरुशुश्रूषा श्रद्धा क्षान्तिर्दमः शमः।

उपेक्षा धैर्यमाधुर्यं तितिक्षा करुणा तथा॥ (11)

हीस्तया ज्ञानविज्ञाने योगो लध्वशनं घृतिः।

एष स्वधर्मो विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम्॥ (12) (उपनिषद्)

जो सन्यासी लोक, वेद, विषयों के भोग और इन्द्रियों का आश्रय छोड़कर आत्म स्थित रहता है वह परम गति को पाता है। सन्यासी अपने नाम, गोत्र-कुल, देश-काल, अवस्था, शील, व्रत, शास्त्र-ज्ञान आदि के सम्बन्ध में किसी से वार्ता न करे। किसी स्त्री से बात न करे, पूर्व परिचित स्त्री का स्मरण न करे, स्त्रियों के चित्रों को भी न देखे तथा स्त्रियों से सम्बन्धित चर्चा न सुने। क्योंकि स्त्री सम्बन्धी चर्चा, उनका स्मरण, चित्रावलोकन तथा संभाषण आदि से मन में विकार की उत्पत्ति होती है और वह उसकी योग भ्रष्टता का कारण होता है। सन्यासियों के लिए मोह-ममता, माया लोभ, तृष्णा, क्रोध, असत्य, राग, अहंकार भावना, संग्रह, व्याख्यान, शिल्प, चिकित्सा व्यवसाय, परगृह निवास, प्रायश्चित्त, औषधि वितरण, मंत्र प्रयोग, धर्मार्थ साहसिक कार्य, आशीर्वाद देना आदि कर्म निषिद्ध है। जो ऐसा करता है वह अपने धर्म से पतित होता है। मुमुक्षु सन्यासी अपने किसी सुहृद् जन का भी स्वागत; सन्मान न करे और न उसे अपने पास ठहरावे। किसी का दिया हुआ दान न ले। किसी दूसरे को भी न दिलावे। किसी को दान देने या लेने की भी प्रेरणा न करे। स्त्री-पुरुष आदि किसी भी

प्रियजन के शुभ या अशुभ समाचार को देख-सुनकर कभी विचलित न हो, हर्ष-शोक का सर्वथा त्याग करे। अहिंसा भाव, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, अनौद्धत्व शान्ति, प्रसन्नता, स्थिरता, सरलता, स्नेहाभाव, गुरु-सेवा, श्रद्धा, क्षमा, इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह, उदासीनता, धीरता, मधुरता, सहन-शीलता, करूणा, लज्जा, धारणा, स्वल्पाहार और ज्ञान-विज्ञान परायणता सन्यासी के लिए यह धर्मरूप से पालनीय है।

दुःखसंदोह भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।

त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाङ्माय कर्मभिः॥ (28) इष्टो.

The souls involved in transmigration have to suffer a multitude of afflictions, owing to the association of the not-self, the body and the like: therefore, I (shall) renounce then along with all the activities of the mind, the body and speech!

देहादि सम्बन्ध से संसारी जीव दुःखों के समूहों को भोगता है। इसलिये समस्त संयोगों को मैं सम्पूर्ण रूप से त्याग करता हूँ। मन, वचन, काय के कर्म से मनोवर्गणा के अवलम्बन से आत्म प्रदेशों में परिस्पन्दन होता है। इससे कर्मास्रव होता है। अतएव मन-वचन-काय के परिस्पन्द को भाव से निरोध करना चाहिए। अतः उसके भेदाभेद अभ्यास के द्वारा सुख-दुःखरूप फल की निवृत्ति का आश्रय लेना चाहिए।

प्रकृत ग्रन्थकर्ता पुज्यपादाचार्य देवनन्दी ने समाधिगतक में कहा भी है-

जब तक अपनी बुद्धि से अपने काय, वचन और मन इन तीनों को यह जीव ग्रहण करता है तब तक इन जीवों का संसार रहता है और इसके भेद-विज्ञान से मुक्ति मिलती है।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्य श्री ने कर्मास्रव, दुःखों के कारण तथा संवर के कारण का वर्णन किया है।

कायवाङ्मनः कर्मयोगः। (1) त.सूत्र

काय, वचन और मन की क्रिया योग है।

इस विश्व में कार्माण वर्गणा ठसाठस भरी हुई है। उसमें कर्मरूप परिणमन करने की योग्यता भी है। परन्तु जब तक जीव के योग एवं उपयोग का निमित्त नहीं

मिलता है तब तक कर्म वर्गणा आकर्षित होकर जीव में आकर नहीं मिलती है। इसलिये आस्रव तत्त्व का वर्णन करने से पहले ही योग का वर्णन किया गया है क्योंकि योग से आस्रव होता है। काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते हैं। इस क्रिया से आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन हलन-चलन ही योग है। यह निमित्तों के भेद से तीन प्रकार का है-काय योग, वचनयोग और मनोयोग।

द्रव्य संग्रह में कहा भी है-

चेदणपरिणामो जो कम्मस्सासवणरोहणे हेदु।

सो भावसंवरो खलु दव्वासवरोहणे अण्णो।। (34)

जो चेतन का परिणाम कर्म के आस्रव को रोकने में कारण है, उसको निश्चय से भाव संवर कहते हैं और जो द्रव्यास्रव को रोकने में कारण है सो दूसरा अर्थात् द्रव्यसंवर है।

संवर के कारण

सः गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः। (2)

Stoppage (is effected) by control carefulness, virtue contemlation conquest buy endurance and conduct.

वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय, चारित्र से होता है। द्रव्य संग्रह में कहा है।

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परिसह जओ य।

चारितं बहुभेया णायव्वा भावसंवर विसेसा।। (35)

पाँच व्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बाईस परीषहों का जय तथा अनेक प्रकार का चारित्र इस प्रकार ये सब भाव संवर के भेद जानने चाहिये।

महर्षि कपिल ने भी सांख्य दर्शन में शरीर दुःख के लिए कारण बताया है। यथा-

समानंजरामरणादिज दुःखम्। (53)

किसी शरीर में हो, चाहे देवता हों, चाहे सामान्य मनुष्य अथवा पशु-पक्षी बुढ़ापे और मृत्यु का दुःख सब में होता है। इस कारण सब शरीरों की अपेक्षा मुक्त होना ही उत्तम है।

सम्पूर्ण तृष्णा त्याग से सम्पूर्ण मोक्ष

तदाप्यतितृष्णावान् हन्त! मा भूस्त्वात्मनि।

यावत्तृष्णा प्रभूतिस्त, तावन्मोक्ष न यास्यसि॥ (20)

यस्य मोक्षेऽपि नाकांक्षा, स मोक्षमधिगच्छति।

इत्युक्तत्वाद्धितान्वेषी, काङ्क्ष न क्वापि योजयेत्॥ (21)

पद्य भावानुवाद-(चाल:-आत्मशक्ति...)

स्व हित हेतु भी अति तृष्णावान्, नहीं बनो है! तुम आत्मन्।

जब तक तृष्णा विद्यमान होगी, तब तक मोक्ष भी असंभव॥

मोक्ष की भी आकांक्षा जिस की नहीं है उसे ही मिलता है मोक्ष।

ऐसा जानकर मुमुक्षुजनों को, किसी में भी कांक्षा अकरणीय॥

इच्छा तेरी अजस्त्रधारा....

(अशुभ इच्छा, शुभ इच्छा और इच्छा से परे)

(चाल: गंगा तेरा अजस्त्रधारा...)

‘इच्छा’ तेरी अजस्त्रधारा...सर्वत्र बहती जाये...

संसारी जीव तेरी धारा में ‘सर्वत्र’ बहते जाये...॥ (ध्रुव)

तेरी प्रमुख दो धाराएँ हैं...अशुभ व शुभधारा...

अशुभधारा में संसार बढे...शुभधारा से घटे संसार...इच्छा...(1)

अशुभधारा में बहे उपधाराएँ...काम भोग व बंधमय...

शुभधारा में बहे उपधाराएँ...ज्ञान वैराग्य...इच्छा...(2)

‘आहार इच्छा’ से आहार में प्रवृत्ति...‘निद्रा इच्छा’ से निद्रा में...

‘धनेच्छा’ से धनार्जन में प्रवृत्ति...‘भोग इच्छा’ से भोग में...इच्छा...(3)

‘प्रसिद्धि इच्छा’ से ख्याति में प्रवृत्ति...‘लाभ इच्छा’ से लाभ में...

‘वर्चस्व इच्छा’ से सत्ता में (आदेश) प्रवृत्ति...हर कामना में तु निहित...इच्छा...(4)

‘इच्छा निरोध होता है’ तपः...ज्ञान वैराग्य संयुक्त...

मोक्ष की इच्छा करते ‘मुमुक्षु’...ज्ञान की इच्छा से ज्ञानेषु...इच्छा...(5)

जानने की इच्छा से होती 'जिज्ञासा'...जीतने की इच्छा से 'जिगीषा'...
ज्ञान-ध्यान-तप-त्याग में प्रवृत्ति...होती है शुभकामना...इच्छा...(6)

इसकी साधना से जब इच्छा नशती...तब होती शुद्ध परिणति...

शुभ-अशुभ इच्छाएँ नशती...होती है शुद्ध-बुद्ध दशा

/'कनक' की स्वशुद्धात्मा दशा)...इच्छा...(7)

संदर्भ-

शुभाशुभे पुण्य पापे सुख दुःखे च षट् त्रयम्।

हितमाद्यमनुष्ठेयं शेष त्रयमथाहितम्।। (269)

तत्रापसदं परित्याज्यं शेषौ न स्तः स्वतः स्वयम्।

शुभं च शुद्धे त्यक्त्वान्ते प्राप्नोति परमं पदं।। (240)

अर्थ-शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप, सुख और दुःख इस प्रकार ये छः हुए। इन छहों के तीन युगलों में से आदि के तीन शुभ, पुण्य और सुख आत्मा के लिए हितकारक होने से आचरण के योग्य है तथा शेष तीन अशुभ-पाप और दुःख अहितकारक होने से छोड़ने के योग्य हैं।

विशेषार्थ-अभिप्राय यह है कि जिनपूजादिक शुभ क्रियाओं के द्वारा पुण्य कर्म का बंध होता है। इसके विपरीत हिंसा एवं असत्य संभाषणादि रूप अशुभ क्रियाओं के द्वारा पाप का बंध होता है और उस पाप कर्म के उदय के प्राप्त होने पर उससे दुःख की प्राप्ति होती है।

इसलिये उक्त छः में से शुभ पुण्य और सुख ये तीन उपादेय तथा अशुभ पाप और दुःख ये तीन हेय हैं।

पूर्व श्लोक में जिन तीन को शुभ पुण्य और सुख को हितकारक बतलाया है उनमें भी प्रथम का (शुभ का) परित्याग करना चाहिए। ऐसा करने से शेष रहे पुण्य और सुख ये दोनों स्वयं ही नहीं रहेंगे, इस प्रकार शुभ छोड़कर और शुद्ध स्वभाव में स्थित होकर जीव अंत में उत्कृष्ट पद (मोक्ष) को प्राप्त हो जाता है।

विशेषार्थ-ऊपर जो इस श्लोक का अर्थ लिखा गया है वह संस्कृत टीकाकार प्रभाचंद्राचार्य के अभिप्रायानुसार लिखा गया है। उपयुक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार

किया जा सकता है। श्लोक 239 में जो अशुभ पाप दुःख ये तीन अहितकारक बतलाये गये हैं उनमें भी प्रथम अशुभ का ही त्याग करना चाहिए। कारण यह है कि ऐसा होने पर शेष दोनों पाप और दुःख स्वयमेव नहीं रहते हैं इसलिये इनका मूल कारण अशुभ ही हैं। इस प्रकार जब मूल कारणभूत अशुभ न रहेगा तब उसका साक्षात् कार्यभूत पाप स्वयमेव नष्ट हो जायेगा और जब पाप ही न रहेगा तो उसके कार्यभूत दुःख की भी कैसे संभावना की जा सकती है, नहीं की जा सकती है। इस प्रकार उक्त अहितकारक तीन के नष्ट हो जाने से शेष तीन जो शुभादि हितकारक रहते हैं वे भी वास्तव में हितकारक नहीं हैं उनको जो हितकारक व अनुष्ठेय बतलाया गया है वह अतिशय अहितकारी अशुभादिक अपेक्षा ही बतलाया है। यथार्थ में वे परतंत्रता के कारण है। भेद इतना ही है कि जहाँ अशुभादिक जीव को नारक और तिर्यच पर्याय प्राप्त कराकर केवल दुःख ही अनुभव कराते हैं वहाँ वे शुभादिक उसको मनुष्यों और देवों में उत्पन्न कराते हैं। दुःख मिश्रित सुख का अनुभव करते हैं। इसलिये यहाँ यह बतलाया है कि उन अशुभादिक तीन को छोड़ देने के पश्चात् शुद्धोपयोग में स्थित होकर उस शुभ को छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार अंत में उस शुभ के अविनाभावि पुण्य व सांसारिक सुख के भी नष्ट हो जाने पर जीव उस निर्बाध मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है जो कि अनंत काल तक स्थिर रहने वाला है।

वरं व्रतै पदं देवं नाव्रतैर्व्रत नारकं।

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्॥ (3) (इष्टोपदेश)

अर्थ-व्रतों के द्वारा देव-पद प्राप्त करना अच्छा है किन्तु अव्रतों के द्वारा नरक पद प्राप्त करना अच्छा नहीं है। जैसे-छाया और धूप में बैठने वाले में अंतर पाया जाता है वैसे ही व्रत और अव्रत के आचरण व पालन करने वालों में फर्क पाया जाता है।

व्रतादिक पालने से पाप कर्मों की निर्जरा होती है और पुण्य कर्म का बंध होता है परंतु पुण्य बंध इहलोक व परलोक सुख का कारण है परंपरा से मुक्ति का कारण है।

शुभः शुभनुबन्धीति बन्धच्छेदाय जायते।

परंपर्येण यो बन्धः स प्रबन्धाद्बन्धीयते॥ (54) (धर्मरत्नाकर)

अर्थ-शुभ भाव से शुभानुबंधी होता है और शुभानुबंधी परंपरा से बंध छेद के लिए कारण हो जाता है। इसलिए शुभानुबंधी कर्म को प्रचुर रूप से करना चाहिए।

यद्देवमनुजाः सर्वे सौख्यमक्षार्थसंभवम्।

निविशन्ति निराबाधं सर्वाक्षप्रीणनक्षमम्।।

सर्वेणातीत-कालेन यच्च मुक्त महर्द्धिकम्।

भाविनो ये च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्टं स्वान्तरञ्जकम्।।

अनन्तगुणानं तस्मादत्यक्षं स्वस्वभावजम्।

एकस्मिन् समये भुक्त तत्सुखं परमेश्वरः।।

यहाँ शिष्य प्रश्न करता है कि हे प्रभो! आपने अनेक बार अतीन्द्रिय सुख की बात कही है किन्तु वह अतीन्द्रिय सुख कैसा है ऐसा लोग नहीं जानते? आचार्य देव इसका उत्तर देते हैं-देखा कोई व्यक्ति स्त्री प्रसंग आदि पंचेन्द्रिय के विषय सुख व्यापार रहित अवस्था में सभी प्रकार की आकुल व्याकुलता से दूर होकर बैठा हुआ है उसको किसी ने आकर पूछा कि कहो भाई देवदत्त! सुख से तो हो? इस पर वह उत्तर देता है कि सुख से हूँ तो यह अतीन्द्रिय है क्योंकि संसारिक सुख विषयों के सेवन से पैदा होता है और यहाँ पंचेन्द्रिय के विषय व्यापार का अभाव होते हुये भी सुख दिख रहा है वह अतीन्द्रिय है, किन्तु जो पाँचों इन्द्रियों और मन से होने वाले सभी प्रकार के विकल्प जालों से रहित ऐसे तो समाधिस्थ परम योगीराज को स्वसंवेदात्मक अतीन्द्रिय सुख होता है वह विशेष रूप से होता है अर्थात् इससे भी और अपूर्व विशेषता लिये हुये होता है। जो मुक्तात्माओं का अतीन्द्रिय सुख है, वह हम तुम सरीखे लोगों के या तो अनुमानगम्य है या आगम गम्य है। देखो, मुक्तात्माओं को इन्द्रिय विषयों के व्यापार के न होने पर भी अतीन्द्रिय सुख होता है यह पक्ष हुआ क्यों कि वर्तमान में होने वाला विषय व्यापार से रहित निर्विकल्प समाधि में रत होकर रहने वाले परम मुनिश्वरों को स्वयंवेद्यात्मक सुख की उपलब्धि होती है, यह हेतु हुआ। यह पक्ष और हेतु रूप दो अंगवाला अनुमान हुआ ऐसा जानना चाहिए। आगम में तो जैसा ऊपर “आत्मोदान सिद्ध” इत्यादि वचन के ऊपर कहे गये हैं वह वचन अतीन्द्रिय सुख का वर्णन करने वाला प्रसिद्ध ही है। इसलिये अतीन्द्रिय सुख के विषय में सन्देह नहीं करना चाहिये-यही बात और स्थान पर भी कही है।

अर्थात्-वर्तमान में जो पुण्याधिकारी देव और मनुष्य हैं वे सब निर्गल रूप से अपनी सभी इन्द्रियों को प्रसन्न करने वाले इन्द्रियजन्य और ऋद्धि आदि से प्राप्त हुए सुख भोग रहे हैं। और जो सुख पहले भूतकाल में पुण्याधिकारी देव मनुष्यों ने महर्द्धिक सुख भोगा है तथा आगे होने वाले पुण्याधिकारी देव और मनुष्य इन्द्रियजन्य स्वादिष्ट और मनोरंजक सुख को भोगेंगे उस समस्त सुख से भी अनन्तगुना अतीन्द्रियजन्य अपने स्वभाव से उत्पन्न होने वाला सुख परमेश्वर सिद्ध भगवान् को एक समय में होता है। (समयसार)

जं सिव-दंसणि परम-सुहु पावहि झाणु करंतु।

तं सुहु भुवणि वि अत्थि णवि मेल्लिवि देउ अणंतु।। (116)

आगे शिव शब्द से कहे गये निज शुद्ध आत्मा के ध्यान करने पर जो सुख होता है, उस सुख का तीन दोहा-सूत्रों में वर्णन करते हैं-जो ध्यान करता हुआ निज शुद्धात्मा के अवलोकन में अत्यन्त सुख हे प्रभाकर! तू पा सकता है, वह सुख तीन लोक में भी परमात्म द्रव्य के सिवाय नहीं है।

जं मुणि लहई अणंत सुहु णिय-अप्पा झायंतु।

तं सुहु इंदु णवि लहइ देविहिं कोड़ि रमंतु।। (117)

आगे कहते हैं कि जो सुख आत्मा को ध्यावने से महामुनि पाते हैं वह सुख इन्द्रादि देवों को दुर्लभ है अपनी आत्मा को ध्यावता परम तपोधन मुनि जो अनन्तसुख पाता है, उस सुख को इन्द्र भी करोड़ देवियों के साथ रमता हुआ भी नहीं पाता।

अप्पा-दंसणि जिणवरहं जं सुहु होइ अणंतु।

तं सुहु लहई विराउ जाणंतउ सिउ संतु।। (118)

आगे ऐसा कहते हैं कि वैरागी मुनि ही निज आत्मा को जानते हुए निर्विकल्प सुख को पाते हैं-निज शुद्धात्मा के दर्शन में जो अनन्त अद्भुत सुख मुनि-अवस्था में जिनेश्वर देवों को होता है, वह सुख वीतरागभावना को परिणत हुआ मुनिराज निज शुद्धात्मास्वभाव को तथा रागादि रहित शांत भाव को जानता हुआ पाता है।

ज्ञान प्रशंसा

रत्नत्रयीं रक्षति येन जीवो, विरज्यतेऽत्यन्तशरीर-सौख्यात्।

रुणद्धि पापं कुरुते विशुद्धिं, ज्ञानं तदिष्टं सकलार्थविद्धिः।।१।।

जीव जिससे रत्नत्रय की रक्षा करता है, शारीरिक सुख से अत्यन्त विरक्त होता है, पाप को रोकता है और विशुद्धि को करता है, सर्वज्ञदेव ने उसे ज्ञान माना है।

स्मृति, मति, बुद्धि और प्रज्ञा का लक्षण

स्मृतिर्व्यतीतविषमा, मति-रागामि-गोचरा।

बुद्धिस्तात्कालिकी ज्ञेया, प्रज्ञा त्रैकालिकी मता॥ (2)

बीती बात को जानने वाली स्मृति है, आगामी बात को जानने वाली मति है, वर्तमान बात को जानने वाली बुद्धि है और तीनों काल की बात को जानने वाली प्रज्ञा है।

तावन्मां पीडयत्येव महादाहो भवोद्भवः।

यावज्ज्ञानसुधाम्भोधौ नावगाहः प्रवर्तते॥ (3)

जब तक ज्ञान रूप सुधासागर में अवगाहन-प्रवेश नहीं होता है तब तक संसार से उत्पन्न महान् संताप मुझे पीड़ित करता ही रहता है।

चिरतरकालालीनं कलाधौतोपलमलमिव प्रयोगेण।

झटिति विघटते जन्तोः कर्म ज्ञानादियोगेन॥ (4)

जिस प्रकार चिरकाल से लगा हुआ स्वर्णपाषाण का मैल प्रयोग से दूर हो जाता है उसी प्रकार ज्ञान-आदि के योग से जीव का कर्म शीघ्र ही विघटित हो जाता है-छूट जाता है।

केचित्केवलमासाद्य लोकालोक-प्रकाशकम्।

लोकप्राग्भारमारुह्य भजन्ते नैर्वृतं सुखम्॥ (5)

कितने ही लोग लोकालोक को प्रकाशित करने वाले केवलज्ञान को प्राप्त कर तथा लोक शिखर पर आरूढ़ हो निर्वाणसुख का सेवन करते हैं।

तदस्य कर्तुं जगदङ्घ्रिं घ्रलीनं, तिरोहितास्ते सहजैव शक्तिः।

प्रबोधितस्तां समभिव्यनक्ति, प्रसहच्य विज्ञानमयः प्रदीपः॥ (6)

इस जगत् को अपने चरणों में लीन करने के लिये जो सहज-स्वाभाविक आत्मशक्ति है वह तिरोहित हो रही है, अच्छी तरह प्रज्वलित हुआ ज्ञानरूप दीपक उस सहजशक्ति को प्रकट कर देता है।

परं ज्ञानफलं वृत्तं न विभूतिर्गरीयसी।

तथा हि वर्धते कर्म सद्वृत्तेन विमुच्यते॥(7)

ज्ञान का उत्कृष्ट फल चारित्र है; बहुत भारी विभूति-सम्पत्ति नहीं क्योंकि उसके द्वारा कर्म की वृद्धि होती है और सम्यक् चारित्र के द्वारा वह कर्म छूटता है-नष्ट होता है।

श्रुतबुद्धिर्मुनीन्द्रेषु प्रवर्तते यथा यथा।

तथा तथा निवर्तते विश्वतो मोहसन्ततिः॥(8)

मुनिराजों में जैसे-जैसे शास्त्रज्ञान की वृद्धि होती रहती है वैसे-वैसे ही संसार से उनकी मोहसन्तति निवृत्त होती जाती है।

आलोकेन विना लोको मार्ग नालोकते यथा।

विनागमेन धर्मार्थी धर्माध्वानं जनस्तथा॥(9)

जिस प्रकार प्रकाश के बिना लोक, मार्ग को नहीं देखता है उसी प्रकार धर्म का इच्छुक मनुष्य आगमज्ञान के बिना धर्ममार्ग को नहीं देखता है।

यथा च जायते चेतः सम्यक्शुद्धिः सुनिर्मला।

तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा॥(10)

जिससे मन की अत्यन्त निर्मल शुद्धि हो जावे, तत्त्वज्ञानी को बहुत भारी प्रयत्न करके वही कार्य करना चाहिये।

आहार-निद्रा-भय-मैथुनानि, समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।

ज्ञानं नराणामधिको विशेषो, ज्ञानेन हिनाः पशुभिः समानाः॥(11)

आहार, निद्रा, भय और मैथुन, ये चार कार्य मनुष्य और पशुओं में समान होते हैं परन्तु ज्ञान, मनुष्यों में अधिक विशेष है, जो मनुष्य ज्ञान से हीन हैं वे पशुओं के समान हैं।

भूमिर्भधरसागराः जिनवराः स्वर्गश्च सिद्धालयः,

पातालस्य ततिस्तथामरफणी मर्त्येन्द्रभाग्यं खलु।

देवीदेवगणास्तथा वननदीक्षेत्रादि-बीजाङ्कुरा,

वर्णावर्णविचारकर्मनिचयः सर्वं प्रविष्टं चिदि॥(12)

पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, जिनेन्द्र, स्वर्ग, मोक्ष, पाताल की पंक्ति, धरणीन्द्र, चक्रवर्ती

का भाग्य, देव-देवियों के समूह, वन, नदी, क्षेत्रादि, बीजाङ्कुर, वर्ण-अवर्ण का विचार तथा कर्मों का समूह-सब कुछ ज्ञान में प्रविष्ट हैं।

तत्त्वबोधमनोरोधः श्रेयोरागात्म-शुद्धयः।

मैत्रीद्योतश्च येन स्युस्तज्ज्ञानं जिनशासने॥(13)

तत्त्वज्ञान, मन का निरोध, आत्महित का राग, आत्मशुद्धि और मित्रता का प्रकाश जिससे हो वह जिनशासन में सम्यग्ज्ञान माना गया है।

येनाक्षविषयेभ्योऽत्र विरज्य शिववर्त्मनि।

ज्ञानी प्रवर्तते नित्यं तज्ज्ञानं जिनशासने॥(14)

जिससे ज्ञानवान् पुरुष इन्द्रिय विषयों से विरक्त हो मोक्षमार्ग में निरन्तर प्रवृत्त रहता है, जिनशासन में वह ज्ञान माना गया है।

येनात्मा बुध्यते तत्त्वं मनो येन निरुध्यते।

पापाद्विमुच्यते येन तज्ज्ञानं ज्ञानिनो विदुः॥(15)

जिससे आत्मा तत्त्व को जानता है, जिसमें मन निरुद्ध होता है और जिससे जीव पाप से विमुक्त रहता है, ज्ञानी पुरुष उसे ज्ञान जानते हैं।

यो भावयति भावेन जिनानामिति भाषितम्।

विध्यापयति संसार-वज्रवह्निं स दुःखदम्॥(16)

जो मनुष्य इस प्रकार भावपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् के कथन की भावना करता है वह दुःखदायक संसार रूपी प्रचण्ड अग्नि को बुझाता है।

सुदणाणभावणाए णाणं मत्तण्डकिरणसुपयासं।

चंदुज्ज्वलचारित्तं णियवसच्चित्तं य भव्वाणं॥(17)

श्रुतज्ञान की भावना से भव्य जीवों का ज्ञान, सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान होता है; चारित्र, चन्द्रमा के समान उज्ज्वल होता है और मन अपने वश में रहता है।

महाप्रशमसंग्रामे शिवश्रीसङ्गमोत्सुकैः।

योगिभिर्ज्ञानशस्त्रेण रागमल्लो निपातितः॥(18)

मोक्षलक्ष्मी के समागम में उत्सुक मुनियों ने शान्ति के महायुद्ध में ज्ञानरूप शास्त्र के द्वारा रागरूपी मन्त्र को मार गिराया।

येन रागादयो दोषाः प्रणश्यन्ति द्रुतं सताम्।

संवेगाद्याः प्रवर्तन्ते गुणा ज्ञानं तदूर्जितम्॥(19)

जिससे सत्पुरुषों के रागादिक दोष शीघ्र नष्ट हो जाते हैं और संवेगादिक गुण प्रवृत्त होते हैं वह ज्ञान बलिष्ठ-शक्तिशाली ज्ञान कहलाता है।

खेद-संज्वर-संमोह-विक्षेपाः केन चेतसः।

क्षिप्येरन् मद् क्षु जैनी चेन् नोपयुज्येत गीः सुधा॥(20)

यदि जिनवाणी रूपी अमृत का उपयोग नहीं किया जाय तो चित के खेद, प्रबल ज्वर, संमोह और विक्षेप किसके द्वारा शीघ्र नष्ट किये जा सकते हैं? अर्थात्-किसी के द्वारा नहीं।

सम्यगेतत्सुधाभोधेर्बिन्दुमप्यालिहन्मुहुः।

जन्तुर्न जायते जातु जन्मज्वलनभाजनः॥(21)

जो प्राणी जिनवाणी रूपी सुधासागर की एक बूँद का भी बार-बार आस्वादन करता है वह कभी संसाररूपी अग्नि का पात्र नहीं होता है।

चौरादि-दायाद-तनूज-भूपै-रहार्यमर्च्यं सकलेऽपि लोके।

धनं परेषां नयनैरदृश्यं, ज्ञानं नरा धन्यतमा वहन्ति॥(22)

जो चौरादिक अपहरणकर्ताओं, हिस्सेदारों, पुत्रों और राजाओं के द्वारा हरण करने योग्य नहीं है, समस्त संसार में पूज्य है तथा दूसरे लोगों के नेत्रों द्वारा देखने में नहीं आता ऐसे ज्ञानरूपी धन को भाग्यशाली मनुष्य धारण करते हैं।

दोषोच्छेदविजृम्भितः कृततमश्छेदः शिवश्रीपथः,

सत्त्वोद्बोधकरः प्रक्लृप्तकमलोल्लासः स्फुरद्वैभवः।

लोकालोकततप्रकाशविभवः कीर्ति जगत्पावनीं,

तन्वन् क्वापि चकास्ति बोधतपनः पुण्यात्मनि व्योमनि॥(23)

जो दोषरूपी दोषा-रात्रि का उच्छेद करने में शक्तिशाली है, जिसने अज्ञानरूपी तिमिर का नाश किया है, जो मोक्षलक्ष्मी का मार्ग है, जो सत्त्व-आत्मबल रूपी सत्त्वों-जीवों को जागृत करने वाला है, जो कमला-आत्मलक्ष्मीरूप कमलों के हर्ष-विकास को करने वाला है, जिसका वैभव सब ओर फैल रहा है, जिसके प्रकाश का ऐश्वर्य लोक-अलोक में व्याप्त है और जो जगत् को पवित्र करने वाली कीर्ति को विस्तृत कर

रहा है ऐसा सम्यग्ज्ञानरूपी सूर्य किसी पुण्यात्मारूपी आकाश में देदीप्यमान होता है।

ज्ञानद्धितं वेत्ति ततः प्रवृत्तिं रत्नत्रये संचितकर्ममोक्षः।

ततस्ततः सौख्यमबाधमुच्चैस्तेनात्र यत्नं विदधाति दक्षः॥(24)

मनुष्य ज्ञान से हित को जानता है, हित का ज्ञान होने से रत्नत्रय में प्रवृत्ति करता है, रत्नत्रय में प्रवृत्ति करने से संचित कर्मों से मोक्ष होता है और संचित कर्मों के मोक्ष से निर्बाध उत्तम सुख की प्राप्ति होती है, इसलिये चतुर मनुष्य ज्ञान में प्रयत्न करते हैं।

अधुना तत् त्वया प्राप्तं सम्यग्दर्शनसंयुतम्।

प्रमादं मा पुनः कार्षीर्विषयास्वादलालसः॥(25)

हे आत्मन्! इस समय तूने सम्यग्दर्शन सहित उस ज्ञान को प्राप्त किया है अतः विषयास्वाद का लोभी बन कर प्रमाद मत कर।

महाव्यसनसप्तार्चिः-प्रदीप्ते जन्मकानने।

अमृताय मया प्राप्तं सम्यग्ज्ञानाम्बुधेस्तटम्॥(26)

महादुःखरूपी अग्नि से जलते हुए संसार रूप वन में मैंने मोक्ष (पक्ष में जल) के लिये सम्यग्ज्ञानरूपी समुद्र का तट प्राप्त किया है।

नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे परः।

अन्यस्त्वन्योऽह-मेवाह-मन्योऽन्यस्याहमेव मे॥(27)

मैं अन्य नहीं हूँ, अन्य मैं नहीं हूँ, मैं अन्य का नहीं हूँ, अन्य मेरा नहीं है, अन्य अन्य है, मैं मैं हूँ, अन्य अन्य का है और मैं मेरा हूँ।

क्षीरे घृतं तिले तैलं काष्ठेग्निः सौरभं सुमे।

चन्द्रकान्ते सुधायद्वत्तथाऽऽत्माङ्गतः पृथक्॥(28)

जिस प्रकार घी दूध में रहता हुआ भी उससे पृथक् है, तैल तिल में रहता हुआ भी उससे पृथक् है, अग्नि काष्ठ में रहती हुई भी उससे पृथक् है, सुगन्ध सुमन में रहती हुई भी उससे पृथक् है और अमृत चन्द्रमा में रहता हुआ भी उससे पृथक् है; उसी प्रकार आत्मा भी शरीर में रहता हुआ भी उससे पृथक् है।

व्याधिस्तुदति शरीरं न माममूर्तं विशुद्धबोधमयम्।

अग्निर्दहति कुटीरं न कुटीराश्रितमाकाशम्॥(29)

रोग शरीर को पीड़ा देता है विशुद्ध-ज्ञानमय मुझ अमूर्तिक आत्मा को नहीं।
जैसे अग्नि कुटी को जलाती है कुटी के आश्रित आकाश को नहीं।

अनिष्टवस्तुसंयोगो वल्लभविप्रयोगकः।

इमौ लोके प्रवर्तते विश्वेषां प्राणधारिणाम्॥(30)

अनिष्ट वस्तु का संयोग और इष्ट वस्तु का वियोग, ये दोनों लोक में सभी प्राणियों को प्राप्त होते हैं।

रोगशोकपरीताप-बन्धनव्यसनानि च।

आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्॥(31)

रोग, शोक, संताप, बन्धन और कष्ट ये सब जीवों के स्वकृत अपराधरूपी वृक्षों के फल है।

वरं विषं भक्षितमुग्रदोषं, वरं प्रविष्टं ज्वलनेऽतिरौद्रे।

वरं कृतान्ताय निवेदितं स्वं, न जीवितं तत्त्विवेकमुक्तम्॥(32)

तीव्र दोष उत्पन्न करने वाला विष खा लेना कुछ अच्छा है, भयंकर अग्नि में प्रविष्ट हो जाना कुछ अच्छा है और यम के-मृत्यु के लिये अपने आपको सौंप देना कुछ अच्छा है परन्तु तत्त्वज्ञान से रहित जीवन व्यतीत करना अच्छा नहीं है।

भव्या नरा ज्ञानरथाधिरूढा, व्रजन्ति शीघ्रं शिवपतनञ्च।

अज्ञानिनो मौढ्यरथाधिरूढा, व्रजन्ति श्वभ्राभिधपत्तनं वै॥(33)

ज्ञानरूपी रथ पर सवार हुए भव्य जीव शीघ्र मोक्षरूपी नगर को प्राप्त होते हैं और मूर्खतारूपी रथ पर सवार हुए अज्ञानी जीव निश्चय से नरकरूपी नगर को प्राप्त होते हैं।

ज्ञाननेत्रं जिनैः ख्यातमत्रामुत्रार्थदर्शने।

ज्ञानहीनोऽन्ध एवाहो कृत्याकृत्याविचारवान्॥(34)

इस लोक और परलोक सम्बन्धी पदार्थों का दर्शन करने के लिये जिनेन्द्र भगवान् ने ज्ञानरूपी नेत्र को बताया है, जो करणीय और अकरणीय के विचार से रहित ज्ञानहीन मनुष्य है, वास्तव में, वह अन्धा ही है।

नष्टं मृतमतिक्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिताः ।

पण्डितानां च मूर्खाणां विशेषोऽयं यतः स्मृतः ॥ (35)

ज्ञानीजन नष्ट, मृत और बीती बात का शोक नहीं करते क्योंकि ज्ञानी और मूर्खों में यही विशेषता मानी गयी है।

अर्हसि नो शुचं कर्तुं मनःसन्तापकारिणीम् ।

विपत्सु दैवनिघ्नासु खिन्देत्मूढो न पण्डितः ॥ (36)

हे आत्मन् ! तू मानसिक संताप को करने वाला शोक करने के लिये योग्य नहीं है क्योंकि कर्माधीन विपत्तियों में मूर्ख मनुष्य ही खेद करता है, ज्ञानी नहीं।

संवेगः परमं कार्यं श्रुतस्य गदितो बुधैः ।

तस्माद् ये धनमिच्छन्ति ते त्विच्छन्त्यमृताद्विषम् ॥ (37)

विद्वानों ने शास्त्र का उत्कृष्ट कार्य (फल) संवेग ही कहा है अतः जो शास्त्र से धन की इच्छा करते हैं, वे अमृत से विष की इच्छा करते हैं।

केचित्प्राप्य यशःसुखं वरवधूं राज्यं सुतं सेवकं,

स्वामित्वं वरवाहनं बलसुहृत्पाण्डित्यरूपादिकम् ।

मन्यन्ते सफलं स्वजन्म मुदिता मोहाभिभूता नरा,

मन्येऽहं च दुरापयाऽऽत्मवपुषोर्ज्ञप्त्या भिदः केवलम् ॥ (38)

मोह से अभिभूत कितने ही मनुष्य यश, सुख, उत्तम स्त्री, राज्य, पुत्र, सेवक, स्वामित्व, उत्तम वाहन, बल, मित्र, पाण्डित्य और रूप आदि को प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए अपना जन्म सफल मानते हैं परन्तु मैं अत्यन्त दुर्लभ आत्मा और शरीर के भेदज्ञान से ही अपने जन्म को सफल मानता हूँ।

ज्ञानयुक्तो भवेज्जीवः स्वर्गश्रीमुक्तिवल्लभः ।

ज्ञानहीनो भ्रमेन्नित्यं संसारे दुःखसागरे ॥ (39)

ज्ञान से सहित जीव स्वर्ग लक्ष्मी और मुक्ति का स्वामी होता है परन्तु ज्ञान से रहित जीव दुःख के सागर स्वरूप संसार में निरन्तर भ्रमण करता रहता है।

वरं दरिद्रः श्रुतिसिन्धुपारगो, न चापि मूर्खो बहुरत्नसंयुतः ।

सुलोचनो जीर्णपटोऽपि शोभते, न नेत्रहीनः कनकैरलंकृतः ॥ (40)

शास्त्ररूपी समुद्र का पारगामी मनुष्य दरिद्र होने पर भी अच्छी तरह सुशोभित होता है परन्तु मूर्ख मनुष्य अनेक रत्नों से युक्त होने पर भी सुशोभित नहीं होता। जैसे कि उत्तम नेत्रों वाला मनुष्य जीर्ण वस्त्र वाला होकर भी सुशोभित होता है परन्तु नेत्रहीन मनुष्य स्वर्ण से अलंकृत होकर भी सुशोभित नहीं होता।

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सव्वं।

पणमामि भत्तिजुत्तो सुयणाण महोवयं सिरसा।।(41)

जिसका अर्थ अरहन्त भगवान् के द्वारा कहा गया है और गणधर देवों ने जिसका ग्रन्थन किया है ऐसे श्रुतज्ञान रूपी महासागर को मैं भक्तिपूर्वक होता हुआ सिर से प्रणाम करता हूँ।

**यज्जिनगीतं स्पष्टपदार्थं, गणधरविरचितमृदुविशदपदं,
तत्त्वविभागव्यक्तिगभीरं सुनिपुणबहुविधनयशतवहनम्।
स्वार्थविशेषध्यानपुराणं क्षपयति मलमपि जनयति पटुतां,
तद्भुवनैकज्योतिरुदारं श्रुतमपनयतान्मम मत्तितिमिरम्।।(42)**

जो जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित है, जिसमें जीवादि पदार्थों का स्पष्ट वर्णन है, गणधरों ने जिसके कोमल और विशद पदों की रचना की है, जो तत्त्व विभाग की व्यक्ति-प्रकटता से सहित है, गम्भीर है, जो अतिशय निपुण तथा अनेक प्रकार के सैकड़ों नयों को धारण करने वाला है, जो स्व-पर पदार्थ के विशेष ध्यान के लिये पुराण स्वरूप है, जो मलदोष को नष्ट करता है तथा पटुता-चातुर्य को उत्पन्न करता है, जो संसार को प्रकाशित करने के लिए ज्योति स्वरूप है तथा शब्द और अर्थ की अपेक्षा उदार-महान् है ऐसा श्रुत-शास्त्र समूह मेरी बुद्धि के तिमिर को-अज्ञानान्धकार को नष्ट करे।

निर्मथ्यागमदुग्धाब्धि-मुद्धृत्याऽतो महोद्यमाः।

तत्त्वज्ञानामृतं सन्तु पीत्वा सुमनसोऽमराः।।(43)

महापुरुषार्थी विद्वान् आगमरूपी क्षीरसागर का मन्थन करें तथा उससे निकाल कर तत्त्वज्ञान रूपी अमृत का पान कर अमर हो जावें।

**ये शृण्वन्ति वचो निजस्य विधिना ये श्रावयन्त्याहताः,
मन्यन्ते बहु ये पठन्ति सुधियो ये पाठयन्ते परान्।**

**ये भूयो गुणयन्ति येऽपि गुणिनः सञ्चिन्तयन्त्युद्यता-
स्ते कर्म क्षपयन्ति भूरिभवजं पङ्क पयोदा इव॥(44)**

जो जिनवाणी को विधिपूर्वक सुनते हैं तथा आहत होते हुए दूसरों को सुनाते हैं, जो ज्ञानी जन उसे बहुत मानते हैं, स्वयं पढ़ते हैं; तथा दूसरों को पढ़ाते हैं, जो बार-बार उसका अभ्यास करते हैं और जो गुणी मनुष्य उद्यमशील होते हुए उसका अच्छी तरह चिन्तन करते हैं, वे अनेक भवों के उत्पन्न कर्म को उस तरह नष्ट कर देते हैं जिस तरह कि मेघ की चड़ को।

**ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं, समस्ततत्त्वार्थ-विलोकदक्षम्।
तेजोऽनपेक्षं विगतान्तरायं, प्रवृत्तिमत् सर्वजगत् त्रयेऽपि॥(45)**

पुरुष का ज्ञानरूपी तीसरा नेत्र, समस्त तत्त्वार्थों के देखने में समर्थ है, प्रकाश आदि अन्य तेजस्वी पदार्थों की अपेक्षा से रहित है, अन्तराय-विघ्न बाधाओं से रहित है और सम्पूर्ण तीनों लोकों में भी प्रवृत्त है-वहाँ की बात को जानने वाला है।

ज्ञानचक्षुर्विना पुंसां क्व धर्मादिपरीक्षणम्।

कथं च मान्यता लोके परलोके शुभः कुतः॥(46)

ज्ञानरूपी नेत्र के बिना पुरुषों को धर्म आदि का परीक्षण कहाँ हो सकता है? अर्थात् कहीं नहीं। इस लोक में मान्यता-आदर कैसे हो सकता है? और परलोक में शुभ-कल्याण की प्राप्ति किससे हो सकती है? अर्थात् किसी से नहीं।

अनेक-संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम्।

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः॥(47)

अनेक संशयों को नष्ट करने वाला, परोक्ष अर्थ को देखने वाला तथा सबके नेत्र-स्वरूप शास्त्र जिसके नहीं है, वह अन्धा ही है।

कणयधराधरधीरं मूढतयविरहिदं हृदद्गुमलम्।

जायदि पवयणपढणे सम्मद्सणमणुवमाणम्॥(48)

प्रवचन-आगम के पढ़ने से सुमेरु पर्वत के समान निश्चल, तीन मूढ़ताओं से रहित तथा शङ्कादिक आठ दोषों से रहित अनुपम सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है।

दुरिततिमिरहंसं मोक्षलक्ष्मीसरोजं, मदनभुजगमन्त्रं चित्तमातङ्गसिंहम्।

व्यसनघनसमीरं विश्वतत्त्वप्रदीपं, विषयशफरिजालं ज्ञानमाराधय त्वम्॥(49)

जो पापरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये हँस-सूर्य है, मोक्षरूपी लक्ष्मी के निवास करने के लिये कमल है, कामरूपी सर्प को रोकने के लिये मन्त्र है, मनरूपी हाथी को नष्ट करने के लिये सिंह है, व्यसनरूपी मेघों को नष्ट करने के लिये वायु है, समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिये श्रेष्ठ दीपक है और विषयरूपी मछलियों को पकड़ने के लिये जाल है, उस ज्ञान की तुम आराधना करो।

विमलगुणनिधानं विश्वविज्ञानबीजं, जिनमुनिगणसेव्यं सर्वतत्त्वप्रदीपम्।

दुरितघनसमीरं पुण्यतीर्थं जिनोक्तं, मनङ्गभमदसिंहं ज्ञानमाराधय त्वम्॥(50)

जो निर्मल गुणों का खजाना है, समस्त विज्ञान का बीज-कारण है, जिनमुनियों के द्वारा सेवनीय है, समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिये उत्तम दीपक है, पापरूपी मेघों को उड़ाने के लिये प्रचण्ड वायु है, पुण्य-प्राप्ति के लिये तीर्थ है तथा मनरूपी हाथी को वश में करने के लिये सिंह है, ऐसे जिनेन्द्रकथित ज्ञान की तुम आराधना करो।

ज्ञानस्य कश्चिदपरो महिमाद्भ तोऽस्य, दाताऽर्थिभिस्तदपरैः परिपूज्यते यत्।

प्राप्नोति चार्थयशसी पदमत्युदार-मत्रैव जन्मनि परत्र च मोक्षलक्ष्मीम्॥(51)

इस ज्ञान की कोई दूसरी अद्भुत महिमा है क्योंकि इसको देने वाला मनुष्य ज्ञान के इच्छुक तथा अनिच्छुक पुरुषों के द्वारा पूजा जाता है तथा इसी जन्म में धन, यश और उत्कृष्ट पद को प्राप्त होता है एवं पर-जन्म में मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त होता है।

यः सर्वथैकान्तनयान्धकारं, निहन्त्यवश्यं नयरश्मिजालैः।

विश्वप्रकाशं विदधाति नित्यं, पायादनेकान्तरविः स युष्मान्॥(52)

जो नय रूप किरणों के समूह से सर्वथा एकान्त नय रूप अन्धकार को अवश्य ही नष्ट करता है और जो निरन्तर विश्व-समस्त संसार में प्रकाश करता है, ऐसा अनेकान्त रूपी सूर्य तुम सब की रक्षा करो।

ज्ञानं पापनिकन्दनं शुभगृहं ज्ञानं श्रिता ज्ञानिनो,

ज्ञानेनाशु विलोक्यते शिववधूर्जानाय मूर्ध्ना नमः।

ज्ञानान्नास्त्यपरं सुनेत्रममलं ज्ञानस्य मोक्षः फलं,

ज्ञाने चित्तमहं दधे कुरु सदा हे ज्ञान मां ज्ञानिनम्॥(53)

ज्ञान पाप को नष्ट करने वाला है, ज्ञानी जन कल्याण के गृहस्वरूप ज्ञान का आश्रय लेते हैं, ज्ञान के द्वारा शीघ्र ही मुक्तिरूपी स्त्री दिखाई देती है, ज्ञान के लिए मेरा सिर से नमस्कार हो, ज्ञान से बढ़कर दूसरा निर्मल नेत्र नहीं है, ज्ञान का फल मोक्ष है, मैं सदा ज्ञान में मन लगाता हूँ। हे ज्ञान! मुझे ज्ञानी करो।

अनात्मनीनं परिहर्तुकामाः, ग्रहीतुकामाः पुनरात्मनीनम्।

पठन्ति शश्वज्जिननाथवाक्यं, समस्तकल्याणविधायि सन्तः॥(54)

जो अपने लिए अहितकारी पदार्थों को छोड़ना चाहते हैं तथा जो अपने लिए हितकारी पदार्थों को ग्रहण करना चाहते हैं ऐसे सत्पुरुष निरन्तर सर्वकल्याणकारी जिनवाणी का पाठ करते हैं।

ज्ञानं जालं परं ज्ञेयं पञ्चाक्षमत्स्यबन्धने।

ज्ञानं सिंहो भवत्येव कामदन्तिनिपातने॥(55)

पाँच इन्द्रियरूपी मत्स्यों को पकड़ने के लिए ज्ञान को उत्कृष्ट जाल जानना चाहिये, साथ ही कामरूपी हाथी को नष्ट करने के लिए ज्ञान सिंहस्वरूप है।

ज्ञानं नाम महारत्नं यत्नप्राप्तं कदाचन।

संसारे भ्रमता भीमे नानादुःख-विधायिनि॥(56)

अनेक दुःखों को करने वाले भयंकर संसार में भटकते हुए मानव को ज्ञानरूपी महारत्न जब कभी बड़े प्रयत्न से प्राप्त होता है।

परोपदेशं स्वहितोपकारं, ज्ञानेन देही वितनोति लोके।

जहाति दोषंश्रयते गुणं च, ज्ञानं जनैस्तेन समर्थनीयम्॥(57)

यतश्च प्राणी ज्ञान के द्वारा लोक में परोपदेश तथा आत्महितकारी उपकार करता है, दोष को छोड़ता है और गुण का आश्रय लेता है इसलिए ज्ञान मनुष्यों के द्वारा समर्थन करने के योग्य है-प्राप्त करने के योग्य है।

भवविटपिसमूलोन्मूलने मत्तदन्ती, जडिमतिमिरनाशे पद्मिनीप्राणनाथः।

नयनमपरमेतद् विश्वतत्त्वप्रकाशे, मरणहरिणबन्धे वागुरा ज्ञानमेव॥(58)

ज्ञान ही, संसाररूपी वृक्ष को जड़ सहित उखाड़ने के लिए मदोन्मत्त हाथी है, मूर्खतारूप अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य है, समस्त तत्त्वों को प्रकाशित करने के लिए अद्वितीय नेत्र है और मरणरूपी मृग को बाँधने के लिए वागुरा-पाश है।

दहति मदनवह्निर्मानसं तावदेव, भ्रमयति तनुभाजां कुग्रहस्तावदेव।

छलयति गुरुतृष्णा राक्षसी तावदेव, स्फुरति हृदि जिनोक्तो वाक्यमन्त्रो न यावत्॥(59)

कामरूपी अग्नि मन को तभी तक जलाती है, खोटा ग्रह मनुष्यों को तभी तक भटकाता है और भारी तृष्णा रूपी राक्षसी तभी तक छलती है-धोखा देती है जब तक जिनदेव के द्वारा कथित वाक्यरूपी मन्त्र हृदय में स्फुरायमान नहीं होता।

अनुठानास्पदं ज्ञानं ज्ञानं मोहतमोपहम्।

पुरुषार्थकरं ज्ञानं ज्ञानं निर्वृत्तिसाधनम्॥(60)

ज्ञान चारित्र का स्थान है, ज्ञान मोहरूपी तिमिर का नाशक है, ज्ञान पुरुषार्थ को करने वाला है और ज्ञान निर्वाण का साधन है।

ज्ञानेन निर्मला कीर्तिः ज्ञानेन सकलर्द्धयः।

ज्ञानेन केवलज्ञानं ज्ञानेनात्र शिवं सताम्॥(61)

ज्ञान से निर्मल यश प्राप्त होता है, ज्ञान से सब ऋद्धियाँ सिद्ध होती हैं, ज्ञान से केवलज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से जगत् में सत्पुरुषों को कल्याण की प्राप्ति होती है।

यथा यथा ज्ञानबलेन जीवो, जानाति तत्त्वं जिननाथदृष्टम्।

तथा तथा धर्ममतिः प्रशस्ता, प्रजायते पापविनाशशक्ता॥(62)

जीव, ज्ञान के बल से जिनोक्त तत्त्व को जैसे-जैसे जानता है, वैसे-वैसे ही उसकी प्रशस्त तथा पापों का नाश करने में समर्थ धर्मबुद्धि उत्पन्न होती जाती है।

विभावमरुता विपट्वति चरद्भावाब्धौ सुरुक्।

प्रभुं नयति किं तपःप्रवहणं पदं प्रेषितम्।

हिताहितविवेचनादवहितः प्रबोधोऽन्वहं,

प्रवृत्तिविनिवृत्तिकृद् यदि न कर्णधारायते॥(63)

दिन-प्रतिदिन हित और अहित का विवेचन करने से हित में प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति कराने वाला सावधान ज्ञान यदि कर्णधार-खेवटिया के समान

आचरण न करे तो विभावरूप वायु से विपद्ग्रस्त संसाररूप समुद्र में चलने वाला जीर्ण-शीर्ण तपरूपी जहाज क्या अपने ऊपर सवार स्वामी को इच्छित स्थान तक ले जा सकता है? अर्थात् नहीं।

ज्ञानं विना नास्त्यहितान् निवृत्ति-स्ततः प्रवृत्तिर्न हिते जनानाम्।

ततो न पूर्वार्जितकर्मनाश-स्ततो न सौख्यं लभतेऽप्यभीष्टम्॥(64)

ज्ञान के बिना मनुष्यों की अहित से निवृत्ति नहीं होती, अहित से निवृत्ति न होने के कारण हित में प्रवृत्ति नहीं होती, हित में प्रवृत्ति न होने से पूर्व संचित कर्मों का नाश नहीं होता और पूर्व संचित कर्मों का नाश नहीं होने से जीव इच्छित सुख को प्राप्त नहीं होता।

ज्ञानेन ज्ञायते विश्व-सर्वं तत्त्वं हिताहितम्।

हेयाहेयं च बन्धो मोक्षो धर्मो दुरितं परम्॥(65)

ज्ञान से विश्व के समस्त हित-अहितकारी तत्त्व, हेय, उपादेय, बन्ध, मोक्ष, धर्म, पाप और पुण्य जाने जाते हैं।

ज्ञानेन पुंसां सकलार्थसिद्धि-र्ज्ञानाद्दते काचन नार्थसिद्धिः।

ज्ञानस्य मत्वेति गुणान् कदाचिज्। ज्ञानं न मुञ्चन्ति महानुभावाः॥(66)

ज्ञान से मनुष्यों के समस्त प्रयोजनों की सिद्धि होती है और ज्ञान के बिना कोई कार्य सिद्धि नहीं होती, इस प्रकार ज्ञान के गुणों को जानकर उत्तम पुरुष कभी ज्ञान को नहीं छोड़ते।

ज्ञानं स्यात्कुमतान्धकारतरणिर्ज्ञानं जगल्लोचनं,

ज्ञानं नीतितरङ्गिणीजलनिधिर्ज्ञानं कषायापहम्।

ज्ञानं निर्वृतिवश्यमन्त्रममलं ज्ञानं मनःपावनं,

ज्ञानं स्वर्गगतिप्रयाणपटहं ज्ञानं निदानं श्रियाम्॥(67)

ज्ञान, मिथ्यामतरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य है। ज्ञान, जगत् का नेत्र है। ज्ञान, नीति रूपी नदी के लिए समुद्र है। ज्ञान, कषाय को नष्ट करने वाला है। ज्ञान, मुक्ति का वशीकरण मन्त्र है। निर्मल ज्ञान, मन को पवित्र करने वाला है। ज्ञान, स्वर्ग-गति की ओर प्रस्थान करने का नगाड़ा है और ज्ञान, लक्ष्मी का निदान-कारण है।

यथा मृगी सिंहभयाच्च भीता, ह्यूर्ध्वं न कर्णं न करोति निद्राम्।

तथा बुधा आत्मविवेकयुक्ताः, कुर्वन्ति पापं न भवाद्विभीताः॥(68)

जिस प्रकार सिंह के भय से डरी हुई मृगी न कान खड़े करती है और न नींद लेती है, उसी प्रकार आत्मज्ञान से युक्त तथा संसार से भयभीत ज्ञानीजन पाप नहीं करते हैं।

जिनवचनप्रशंसा

यच्छुभं दृश्यते वाक्यं तज्जैनं परदर्शने।

मौक्तिकं हि यदन्यत्र तदब्धौ जायते ध्रुवम्॥(1)

अन्य दर्शन में जो शुभ वाक्य दिखाई देते हैं वे जैन वाक्य हैं, क्योंकि जो मोती अन्यत्र दिखाई देते हैं उनकी उत्पत्ति समुद्र में ही होती है।

गंभीरं मधुरं मनोहरतरं दोषव्यपेतं हितं,

कण्ठोष्ठादिवचो निमित्तरहितं नो वातरोधोद्गतम्।

स्पष्टं तदभीष्टवस्तुकथनं निःशेषभाषात्मकं,

दूरासन्नसमं गतोपममिदं जैनं वचः पातु नः॥(2)

जो गंभीर है, मधुर है, अत्यन्त मनोहर, दोषरहित है, हितकारी है, कण्ठ ओष्ठ आदि शब्दोच्चारण के निमित्तों से रहित है, वायु के निरोध से उत्पन्न नहीं है, स्पष्ट है, श्रोता के अभीष्ट पदार्थ को कहने वाला है, समस्त भाषामय है, दूर और निकट में समान सुनाई पड़ता है तथा उपमा रहित है, ऐसा जिनेन्द्र वचन हमारी रक्षा करे।

येनैते विदलन्ति वादिगिरयस्तुष्यन्ति वागीश्वराः,

भव्या येन विदन्ति निर्वृतिपदं मुञ्चन्ति मोहं बुधाः।

यद् बन्धुर्यमिनां यदक्षयसुखस्याधारभूतं मतं,

तल्लोकत्रयशुद्धिदं जिनवचः पुष्याद् विवेकश्रियम्॥(3)

जिसके द्वारा ये वादी रूपी पर्वत खण्डित होते हैं, वाणी के ईश्वर-बड़े-बड़े विद्वान् संतुष्ट होते हैं, भव्य मोक्षस्थान को जानते हैं, ज्ञानी जन मोह को छोड़ते हैं, जो साधुओं का बन्ध है, अक्षय सुख का आधारभूत माना गया है और तीनों लोकों को शुद्धि प्रदान करने वाला है, वह जिनेन्द्र वचन हमारी विवेक लक्ष्मी को पुष्ट करे।

विहाय वाक्यं जिनचन्द्रदिष्टं, परं न पीयूषमिहास्ति किञ्चित्।

मिथ्याद्दृशां वाक्यमपास्य नूनं, पश्यामि नो किञ्चित्कालकूटम्॥(4)

जिनेन्द्रकथित वाक्य को छोड़कर मैं जगत् में अन्य किसी अमृत को नहीं देखता हूँ और मिथ्यादृष्टियों के वचन को छोड़कर अन्य किसी कालकूट विष को नहीं देखता हूँ।

भावार्थ : जिनेन्द्र के वचन ही अमृत है और मिथ्यादृष्टियों के वचन ही विष है।

पर व विभाव परे स्वभाव में लीन

- आचार्य कनकनन्दी

[चाल : 1. हे जिनवर तेरी कठिन....2. भातुकली]

मोहे ऐसी लागी लगन, आत्मा में हो गया मगन।

पर परिणती छोड़कर, स्व में ही कर रहा हूँ रमण॥(1)

स्व में ही मेरा वैभव पूर्ण, पर मैं नहीं हूँ लेश प्रमाण।

अतः स्व में मिले विश्राम, पर में सदा ही भ्रम पूर्ण॥(2)

मैं हूँ चिदानन्द स्वयंपूर्ण, पर में नहीं मम गुणगण।

(अतः) सुख प्राप्ति हेतु स्व में ही लीन, दुःख दूर हेतु पर से विराम॥(3)

मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध साम्य सत्य, इसे पाना ही मेरा परम लक्ष्य।

इस हेतु विभाव व पर त्यागूँ, पर का कर्ता-धर्ता-भोक्ता न बनूँ॥(4)

ऐसे ही हुए अनन्त सिद्ध, मुझे बनना इनके सम शुद्ध।

अतः स्वयं में ही पूर्ण अन्य से शून्य, शून्याशून्य परे स्वयं में पूर्ण॥(5)

तन-मन-इन्द्रिय व राग-द्वेष, ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्व।

संकल्प-विकल्प व संक्लेश शून्य, चैतन्यचमत्कारशक्ति पूर्ण॥(6)

अतएव मैं निशंक निर्विकल्प, निर्भय निर्मल कांक्षातीत।

स्वतंत्र स्वयम्भू मैं सनातन, 'कनक' नहीं मैं हूँ ज्ञानधन॥(7)

नन्दौड़, दि. 19.11.2019, मध्याह्न 1.22

(यह कविता मेरी शिष्या सुरुचि (सागपाड़ा) के कारण बनी)

परपरिणति से परे स्वपरिणति में रमण

(परपरिणति ही सांसारिक दुःख, स्वपरिणति ही आत्मसुख)

- आचार्य कनकनन्दी

[चाल : ऐ मेरे दिले नादाँ....]

जिया! कब तक उलझेगा, परपरिणति में/(पर की चिन्ता में)

पर को ही देखना जानना, मानना मनाने में...(स्थायी)

पर का ही संग्रह, रक्षण व संयोग, वियोग में।

उस हेतु राग-द्वेष-मोह, आकर्षण-विकर्षण में।।

पर का ही भोग-उपभोग, संकल्प-विकल्प में।

उस हेतु ही सुख-दुःख, अहंकार-ममकार में...जिया...(1)

इससे ही तूने भोगा, अनन्त जन्म-मरण।

चउरासी लक्ष्योनियों में, अनन्तानन्त दुःख-दैन्य।।

पर है तन-मन-अक्ष, सत्ता-सम्पत्ति-प्रसिद्धि डिग्री।

शत्रु-मित्र-भाई-बन्धु, राग-द्वेष-काम-मदादि...जिया...(2)

इन-से परे हो तू, शुद्ध चैतन्यचमत्कार।

अनन्तज्ञानदर्शन, सुख-वीर्य अजर-अमर।।

स्व का तू करो श्रद्धान, आत्मज्ञान आत्मानुरमण।

इस हेतु ही करो ध्यान, अध्ययन-मनन-चिन्तन...जिया...(3)

मोहासक्त कुज्ञानी स्वार्थी, न जानते तेरा स्वरूप।

उनके भाव-व्यवहार, तुम-से अनन्त विपरीत।।

वे तो लौकिक जन, तुम तो आध्यात्मिक श्रमण।

वे तो सामाजिक प्राणी, तुम तो परमेष्ठी श्रमण..जिया...(4)

वे तो अर्थ-कामाकांक्षी, तुम तो मुमुक्षु श्रमण।

वे तो करते सांसारिक काम, तू करो आत्मिक काम।।

उनकी गति सांसारिक पथ में, तुम्हारी आत्मप्रदेशों में।

दोनों की विपरीत गति, अतः चलो तू पृथक् रूप में...जिया...(5)

अन्यथा होगी दुर्घटनायें, संघर्ष व विषमतायें।
 अतः चलो तू एकाकी हो, शान्त निस्पृह आत्मा में।।
 स्वयं में ही तू करो रमण, स्व की ही परिणति में।
 स्वतंत्र मौलिक साम्य, 'कनक' परिणति में...जिया...(6)

नन्दौड़, दि. 22.11.2019, रात्रि 8.15

यश्चिन्तयति साधूनामनिष्ठं दुष्टमानसः।
 सर्वाणिष्टखनिर्मूढो जायते स भवे-भवे।।(18)

जो दुष्ट हृदय वाला मनुष्य साधुओं का अनिष्ट विचारता है, वह मूर्ख भव-भव में सब अनिष्टों की खान होता है।

ये शान्तानां हतभवसुख-स्वादनां मुनीनां,
 संभाषन्ते कटुकवचनं कुर्वते चोपसर्गम्।
 ते जायन्ते नरक-विवरेऽनन्तसंसारमार्गे,
 तिर्यग्योनौ शृणु नरपते! तत् किमाश्चर्यमेतत्।।(19)

संसार-सुख के स्वाद का त्याग करने वाले मुनियों के विषय में जो कटुक वचन बोलते हैं तथा उन पर उपसर्ग करते हैं वे अनन्त संसार के मार्ग स्वरूप नरक बिल तथा तिर्यञ्च योनि में उत्पन्न होते हैं।। हे राजन्! सुनो, इसमें आश्चर्य क्या है?

यस्त्वाक्रोशति निर्ग्रन्थ हन्ति वा क्रूरमानसः।
 तत्र किं शक्यते वक्तुं जन्तोर्दुष्कर्मकारिणः।।(20)

जो दुष्ट हृदय वाला मनुष्य निर्ग्रन्थ साधुओं को अपशब्द कहता है अथवा उन्हें मारता है, पापकर्म करने वाले उस प्राणी के विषय में क्या कहा जावे। उसकी क्या दुर्गति होगी, यह कहने में नहीं आता।

वीतरागमुनौ शस्ते यो द्वेषं कुरुतेऽधमः।
 धर्मविद्धिर्जनैः सोऽपि निन्द्यो निन्द्यगतिं व्रजेत्।।(21)

जो अधम पुरुष, उत्तम वीतराग साधु के विषय में द्वेष करता है, वह धर्मज्ञ मनुष्यों के द्वारा निन्दनीय होता हुआ निन्द्यगति को प्राप्त होता है।

अहो ये मुनिनाथानां कुर्वन्त्युपद्रवं शठाः।

साक्रन्दं तेऽघभारेण पतन्ति नरकार्णवे॥(22)

जो मूर्ख मुनिराजों पर उपद्रव करते हैं वे पाप के भार से रुदन करते हुए नरक रूपी समुद्र में पड़ते हैं।

ददते क्लेशदुःखादीन् ये शठा निःस्पृहात्मनाम्।

तेभ्योऽनन्तमहादुःखं ते लभन्ते च दुर्गतौ॥(23)

जो निःस्पृह साधुओं को क्लेश अथवा दुःखादिक देते हैं वे दुर्गति में उनसे अनन्त गुना दुःख पाते हैं।

इन्द्रप्रतीन्द्रनागेन्द्रैर्वन्दितानां मुनीशिनाम्।

निन्दाकुर्वन्ति ये सत्यं दुर्जनाः भषणोपमाः॥(24)

जो दुर्जन, इन्द्र प्रतीन्द्र तथा धरणेन्द्र के द्वारा वन्दनीय मुनिराजों की निन्दा करते हैं, वे सचमुच भषण-कुंभी की आवाज के समान हैं।

जिनधर्मस्य यो निन्द्यो मुनीनां वा करोति वै।

निन्दां स पापभारेण मज्जति श्वभ्रसागरे॥(25)

जो निन्द्य पुरुष, जिनधर्म और मुनियों की निन्दा करता है वह पाप के भार से निश्चित ही नरक रूपी सागर में डूबता है।

निर्ममत्ववर्णनम्

कान्तेयं तनुभूरयं सुहृदयं मातेयमेषा स्वसा,

जायेयं रिपुषे पत्तनमिदं सद्भेदमेतद्वनम्।

एषा यावदुदेति बुद्धिराधमा संसारसंवर्धिनी,

तावद् गच्छति निर्वृतिं वत कुतो दुःखद्रमोच्छेदिनीम्॥(1)

यह वल्लभा है, यह पुत्र है, यह मित्र है, यह माता है, यह बहिन है, यह स्त्री है, यह शत्रु है, यह नगर है, यह घर है और यह वन है, संसार को बढ़ाने वाली यह अधम-नीच बुद्धि जब तक होती रहती है तब तक खेद है कि यह मनुष्य दुःख रूपी वृक्ष को छेदने वाली निवृत्ति-मुक्ति को कैसे प्राप्त हो सकता है?

शश्वदनात्मीयेषु स्वतनुप्रमुखेषु कर्मजनितेषु।

आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो यथा देहः॥(2)

कर्मोदय से होने वाले अपने शरीरादि पर-पदार्थों में निरन्तर आत्मीय बुद्धि होना ममकार है, जैसे यह शरीर मेरा है।

नृत्येनेह किमन्धस्य किं गानैर्वधिरस्य च।

कातरस्य च किं शस्त्रैरर्थैः किं निःस्पृहस्य च॥(3)

इस जगत् में अन्धे मनुष्य को नृत्य से क्या प्रयोजन है, बहरे को संगीत से क्या प्रयोजन है? कायर को शस्त्रों से क्या प्रयोजन है और निःस्पृह मनुष्य को धन से क्या प्रयोजन है?

बन्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(4)

ममकार से सहित और ममकार से रहित मनुष्य क्रम से बद्ध और मुक्त होता है अतः सम्पूर्ण प्रयत्न से निर्ममत्व भाव का चिन्तन करना है अर्थात् मेरा कुछ नहीं है ऐसा विचार निरन्तर करते रहना चाहिये।

ममत्वं ये प्रकुर्वन्ति परवस्तुषु मोहिनः।

शुद्धचिद्रूपसम्प्राप्तिस्तेषां स्वप्नेऽपि नो भवेत्॥(5)

जो मोही जीव परवस्तुओं में ममत्व करते हैं उन्हें शुद्ध चैतन्य रूप की प्राप्ति स्वप्न में भी नहीं हो सकती।

सद्दृष्टिर्ज्ञानवान् प्राणी निर्ममत्वेन संयमी।

तपस्वी व भवेत्तस्मान् निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(6)

निर्ममत्व भाव से प्राणी, सम्यग् दृष्टि, ज्ञानवान्, संयमी और तपस्वी होता है अतः निर्ममत्व भाव का चिन्तन करना चाहिये।

रागद्वेषादयो दोषा नश्यन्ति निर्ममत्वतः।

साम्यार्थी सततं तस्मान्निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(7)

यतश्च निर्ममत्व से रागादि दोष नष्ट हो जाते हैं-इष्ट अनिष्ट बुद्धि निकल जाती है अतः साम्यभाव के इच्छुक मनुष्य को सदा निर्ममत्व भाव का चिन्तन करना चाहिये।

निर्ममत्वे तपोऽपि स्यादुत्तमं पञ्चमं व्रतम्।

धर्मोऽपि परमस्तस्मान् निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(8)

निर्ममत्व भाव के रहने पर उत्तम तप भी हो सकता है, परिग्रह परित्याग महाव्रत हो सकता है और उत्कृष्ट धर्म-मुनिधर्म भी हो सकता है अतः निर्ममत्व का चिन्तन करना चाहिये।

निर्ममत्वेन चिद्रूपप्राप्तिर्जाता मनीषिणाम्।

तस्मात्तदर्थिनो चिन्त्यं तदेवैकं मुहुर्मुहुः॥(9)

निर्ममत्व भाव से बुद्धिमान् मनुष्यों को चैतन्य रूप की प्राप्ति हुई है अतः उसके इच्छुक मनुष्यों को बार-बार उसी एक का चिन्तन करना चाहिये।

निर्ममत्वाय न क्लेशो नान्याञ्चा न चाटनम्।

न चिन्ता न व्ययस्तस्मान्निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(10)

निर्ममत्व के लिये क्लेश नहीं होता, किसी अन्य पुरुष से याचना नहीं करनी पड़ती, कहीं अन्यत्र नहीं जाना होता, न कुछ चिन्ता करनी पड़ती है और न कुछ खर्च होता है अतः निर्ममत्व का चिन्तन करना चाहिये।

नास्रवो निर्ममत्वेन न बन्धोऽशुभकर्मणाम्।

नासंयमो भवेत्तस्मान् निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(11)

निर्ममत्व भाव से अशुभ कर्मों का न आस्रव होता है, न बन्ध होता है और न असंयम होता है अतः निर्ममत्व भाव का चिन्तन करना चाहिये।

निर्ममत्वं परं तत्त्वं ध्यानं चापि व्रतं सुखम्।

शीलं खरोधनं तस्मान् निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥(12)

निर्ममत्व श्रेष्ठ तत्त्व है, ध्यान है, व्रत है, सुख है, शील है और इन्द्रिय निरोध है अतः निर्ममत्व का चिन्तन करना चाहिये।

ममेति चिन्तनाद् बन्धो मोचनं न ममेत्यतः।

बन्धनं द्वयक्षराभ्यां च मोनं त्रिभिरक्षरेः॥(13)

‘मम’ ऐसे चिन्तन से बन्ध होता है और ‘न मम’ ऐसे चिन्तन से मोक्ष होता है। तात्पर्य यह है कि ‘मम’ इन दो अक्षरों से बन्ध और ‘न मम’ इन तीन अक्षरों

से मुक्ति होती है। जब तक यह मनुष्य पर-पदार्थों को मम-मेरे मानता है तभी तक बन्ध होता है और जब न मम-मेरे नहीं है, ऐसा निश्चय कर लेता है, तब बन्धन से छूट जाता है।

अकिञ्चनोऽहमित्यास्वत्रैलोक्याधिपतिर्भवेत्।

योगिगम्यं परं प्रोक्तं रहस्यं परमात्मनः॥(14)

मैं अकिञ्चन हूँ-मेरा कुछ नहीं है ऐसा निश्चय कर चुप बैठना, फलस्वरूप तू तीन लोक का स्वामी-सिद्ध हो जाएगा। यह परमात्मा बनने का योगिगम्य उत्कृष्ट रहस्य मैंने तुझे बताया है।

गुणप्रशंसा

विवेकसन्तोषदयाक्षमाश्च ज्ञानं सुदानं विमदत्वमाद्यम्।

जितेन्द्रियत्वं विकषायता च सदा नराणां सुखदा भवन्ति॥(1)

विवेक, संतोष, दया, क्षमा, ज्ञान, शुभ दान, निरहंकारता, जितेन्द्रियता और निष्कषायता, ये गुण मनुष्यों को सदा सुखदायक होते हैं।

वैराग्यात् स्वसुखं चैव वैराग्याद् दुःखनाशनम्।

वैराग्यात् कायआरोग्यं वैराग्याद् मोक्षजं सुखम्॥(2)

वैराग्य से आत्मसुख प्राप्त होता है, वैराग्य से दुःख का नाश होता है, वैराग्य से शरीर में निरोगता रहती है और वैराग्य से मोक्ष का सुख प्राप्त होता है।

मनो विषयमार्गेषु मत्तद्विरदविभ्रमम्।

वैराग्यबलिना शक्यं रोद्धुं ज्ञानाद् कुशश्रिता॥(3)

विषय रूप मार्ग में मदोन्मत्त हाथी के समान भ्रमण करने वाला मन ज्ञान रूप अंकुश से सहित वैराग्य रूप बलिष्ठ पुरुष से रोका जा सकता है।

भोगे रोगभयं सुखे क्षयभवं वित्तेऽग्निभूभृद्भयं,

दासे स्वामिभयं जये रिपुभयं वंशे कुयोषिद्भयम्॥

माने म्लानभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,

सर्वत्रापि भयं भवेऽत्र भविनां वैराग्यमेवाभयम्॥(4)

भोग में रोग का भय है, सुख में उसके नष्ट होने का भय है, धन में अग्नि और राजा का भय है, दासवृत्ति में स्वामी का भय है, विजय में शत्रु का भय है, कुल में कुलटा स्त्री का भय है, मान में उसके भङ्ग होने का भय है, गुण में दुर्जन का भय है और शरीर में यमराज-मृत्यु का भय है। इस प्रकार संसार में प्राणियों को सब स्थानों में भय है, एक वैराग्य ही भयरहित है।

दूरे व्याकरणं कुरुष्व विषमं धातुक्षयक्षोभितं,
मीमांसा विरसा न शोषयति किं तर्करलं कर्कशैः।
न क्षीवः पतति स्मरभ्रमकरैः किं नव्यकाव्यासवै-
स्तस्मान् नित्यहिताय शान्तमनसां वैराग्यमेव प्रियम्॥(5)

धातु-भूत आदि धातुओं के क्षय से क्षोभ को प्राप्त होने वाले व्याकरण को दूर करो, नीरस मीमांसा क्या शोषण नहीं करती है? कठिन तर्कशास्त्र से बस करो, दूर रहो और काम विकार को करने वाले नवीन काव्य रूपी मदिरा से उन्मत्त हुआ मनुष्य क्या पतित नहीं होता? इसलिए शान्त चित्त वाले मनुष्यों को स्थायी हित के लिए वैराग्य ही प्रिय है।

चारित्र प्रशंसा

अनन्तसुखसम्पन्नो येनात्मायं क्षणादपि।

नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः॥(1)

जिससे यह आत्मा क्षणभर में अनन्त सुख से सहित हो जाती है, उस पवित्र चारित्र को बार-बार नमस्कार हो।

चेतसा वचसा तन्वा कृतानुमतकारितैः।

पापक्रियाणां यस्त्यागः सच्चारित्रमुशन्ति तत्॥(2)

मन वचनकाय तथा कृत कारित अनुमोदना से पापक्रियाओं का जो त्याग है, उसे चारित्र कहते हैं।

मूलोत्तरगुणानां यत् पालनं मुक्तये मुनेः।

दृशा ज्ञानेन संयुक्तं तच्चारित्रं न चापरम्॥(3)

मुक्ति के लिए मूलगुण और उत्तरगुणों का जो पालन है, वह मुनियों का सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से सहित चारित्र है, अन्य नहीं।

समीक्ष्य व्रतमादेयमात्तं पाल्यं प्रयत्नतः।

छिन्नं दर्पात्प्रमादाद्वा प्रत्यवस्थाप्यमञ्जसा॥(4)

पूर्वापर विचार कर व्रत लेना चाहिये और लिये हुए व्रत का प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। यदि दर्प या प्रमाद के कारण व्रत खण्डित हुआ है तो उसे पुनः अच्छी तरह व्यवस्थित करना चाहिये।

ईर्यादिविषया यत्ना मनोवाक्कायगुप्तयः।

परीषह-सहिष्णुत्वमिति चारित्र - भावनाः॥(5)

ईर्यादि समितियाँ, मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति और परीषह सहन करना ये चारित्र की रक्षा करने वाली भावनाएँ हैं।

चारित्रं निरगाराणां शूराणां शान्तचेतसाम्।

शिवं सुदुर्लभं सिद्धं सारं क्षुद्रभयावहम्॥(6)

जो शिव-आनन्दरूप है, अत्यन्त दुर्लभ है, सिद्ध है, सारभूत है और क्षुद्र जीवों को भय उत्पन्न करने वाला है, ऐसा चारित्र शूरवीर तथा शान्तचित्त मुनियों के होता है।

अनासक्ति योग (गीता) में नारायण श्रीकृष्ण ने भी लौकिक जन (धर्म बाह्य) भोगी का वर्णन करते हुए कहा है-

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदत्यविपश्चितः।

वेदवादरताः पार्थनान्यस्तीत वादिनः॥(42)

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।

क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥(43)

भोगैश्वर्यं प्रसक्ताना तयापहृतचेतसाम्।

व्यावसायातिक बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥(44)

अज्ञानी, वेदवादी, 'इसके सिवाय और कुछ नहीं है' यह कहने वाले, कामना वाले, स्वर्ग को श्रेष्ठ मानने वाले, जन्म-मरण रूपी कर्म के फल देने वाली, भोग और

ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए किए जाने वाली कर्मों के वर्णन से भरी हुई बातें बढ़ा बढ़ाकर कहते हैं। भोग और ऐश्वर्य में आसक्त रहने वाले इन लोगों की बुद्धि मारी जाती है, इनकी बुद्धि न तो निश्चयवाली होती है और न समाधि में ही स्थिर हो सकती है।

मानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।

आचार्योपासनं शोचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः॥(7)

इन्द्रियार्येषु वैराग्यमनहंकार एव च।

जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥(8)

आसक्तिरनभिष्वंगः पुत्रदारगृहादिषु।

नित्यं च समाचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु॥(9)

मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।

विविक्तदेश सेवित्वमरतिर्जनसंसदि॥(10)

आध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।

एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदोतोऽन्यथा॥ (11)

अमानीनित्व, अदम्भित्व, अहिंसा, क्षमा, सरलता, आचार्य की सेवा, शुद्धता, स्थिरता, आत्मसंयम इन्द्रियों के विषयों में वैराग्य अहंकार-रहितता, जन्म, मरण, जरा व्याधि, दुःख और दोषों का निरन्तर भान, पुत्र, स्त्री और गृह आदि में मोह तथा ममता का अभाव प्रिय और अप्रिय में नित्य समभाव, मुझमें अनन्य ध्यानपूर्वक एक निष्ठ भक्ति, एकांत स्थान का सेवन, जन समुह में सम्मिलित होने की अरुचि, आध्यात्मिक ज्ञान की नित्यता का भान और आत्मदर्शन-यह सब ज्ञान कहलाता है। इससे जो उलटा है वह अज्ञान है।

लौकिक जनसंसर्ग असंयम का कारण-

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।

लोगिगजणसंसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि॥(286) प्र.सा.

He who has properly grasped the interpretation of the sacred text, who was pacified the passions and who excels in austerities, cannot be self-controlled, if he does not abandon company with common people.

(णिच्छिदसुत्तत्थपदो) जिसने सूत्र के अर्थ और पदों को निश्चयपूर्वक जान लिया है, (समिदकसायो) कषायों को शांत कर दिया है (तवोधिको चावि) तथा जप करने में अधिक है ऐसा साधु (जदि) यदि (लोगिगजणसंसग्गं) लौकिक जनों का अर्थात् असंयमियों का भ्रष्टचारित्र साधुओं का संगम (ण जहदि) नहीं त्यागता है (संजदो ण हवदि) तो वह संयमी नहीं रह सकता है। जिसने अनेक धर्ममय अपने शुद्धात्मा आदि पदार्थों को बताने वाले सूत्र के अर्थ और पदों को अच्छी तरह निर्णय करके जान लिया है, अन्य जीवों में व पदार्थों में क्रोधादि कषाय को त्याग करने से तथा भीतर परमशांत भाव में परिणमन करते हुए अपने शुद्धात्मा की भावना के बल से कषायों को शांत कर दिया है, तथा अनशन आदि छः बाहरी तपों के बल से व अंतरंग में शुद्धात्मा की भावना के संबंध में औरों से विजय प्राप्त किया है, ऐसा तप करने में जो श्रेष्ठ है। इन तीन विशेषणों से युक्त साधु होने पर भी यदि स्वेच्छाचारी लौकिक जनों का संसर्ग न छोड़े तो वह स्वयं संयम से छूट जाता है। भाव यह है कि स्वयं आत्मा की भावना करने वाला होने से जैसे अग्नि की संगति से जल उष्णपने को प्राप्त हो जाता है, ऐसे वह साधु विकारी हो जाता है।

समीक्षा-परिणत दशा में जीव बाह्य निमित्त से अधिक परिणमन करता है जैसे-पानी अग्नि के संपर्क में उष्ण हो जाता है एवं फ्रीज में रखने पर बर्फ बन जाता है उसी प्रकार परिणत दशा वाला जीव कुसंगति से धर्मशील सदाचार से रहित हो जाता है एवं सुसंगति से सज्जन बन जाता है जिसको जो भाता है वह उसकी संगति करता है।

यदि कोई शीतलता चाहता है वह शीतल चीज जैसे, चंदन, बर्फ आदि की संगति करेगा और जिसे उष्णता चाहिए वह अग्नि, सूर्यकिरण, गरमपानी आदि की संगति करेगा। इसी प्रकार यदि श्रमण होकर भी लौकिक जन की संगति कर रहा है तो वह अंतरंग से लौकिकता (असंयम, विषयभोग) चाह रहा है। इसलिए इस गाथा में कुन्दकुन्ददेव ने कहा है जो श्रमण होकर भी लौकिक जनों की संगति करता है वह संयमी नहीं है। नीतिकारों ने कुसंगति का फल निम्न प्रकार से कहा है -

पापं वर्धयते चिनोति कुमतिं कीर्त्याङ्गना नश्यति।

धर्म ध्वंसयतेतीति विपदं सम्पत्तिमुन्मर्दति।

नीतिं हन्ति विनीतमत्रकुरुते कोपं धुनीते शमं।

किं वा दुर्जन सङ्गतिर्न कुरुते लोकद्वय ध्वंसिनी॥(स, श्लो.सं.)

कुसंगति पाप को बढ़ाती है, कुमति का संचय करती है, कीर्ति रूपी नष्ट होती है, धर्म का विध्वंस करती है, विपत्ति को विस्तृत करती है, सम्पत्ति को नष्ट करती है, नीति और विनय का घात करती है, क्रोध उत्पन्न करती है और शान्ति को दूर करती है। इस प्रकार दोनों लोकों को नष्ट करने वाली दुर्जन की संगति क्या-क्या नहीं करती है?

दुर्जनजन संसर्गात् साधुजनश्चापि दोषमायाति।

दशमुखकृतापराधे जलनिधिरपि बन्धनं प्राप्तः॥(4)

दुर्जन मनुष्य की संगति से सज्जन पुरुष भी दोष को प्राप्त करता है, जैसे रावण के द्वारा अपराध किए जाने पर समुद्र भी बंधन को प्राप्त हुआ।

अणुरप्यासतां सङ्ग सद्गुणं हन्ति विस्तृतम्।

गुण रूपान्तरं याति तक्रयोगाद् यथा पयः॥(6)

दुर्जन का थोड़ा भी संसर्ग विस्तृत सद्गुण को नष्ट कर देता है, जैसे कि तक्रछाछ के योग से दूध अन्य गुण और अन्य रूप को प्राप्त हुआ।

मलिनयति कोटिपात्रं दहित गुणं स्नेहमाशु नाशयति।

अमले मलं प्रयच्छति दीप ज्वालेव खलमैत्री॥(10)

दुर्जन की मित्रता दीपक की ज्वाला के समान करोड़ों पात्रों को मलीन कर देती है, गुण (पक्ष में बत्ती) को जलाती है, स्नेह (पक्ष में तेल) को शीघ्र नष्ट करती है और निर्मल पुरुष में मल दोष प्रदान करती है अर्थात् निर्दोष को सदोष बना देती है। कुन्द कुन्द देव ने दर्शनपाहुड में कहा है -

जे दंसणेसु भद्दा णाणे भद्दा चरित्तभद्दा य।

एदे भद्दुविभद्दा सेसं पि जणं विणांसति॥(8)

जो मनुष्य सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट है, ज्ञान से भ्रष्ट है और चारित्र से भ्रष्ट हैं वे भ्रष्टों में विशिष्ट भ्रष्ट हैं अर्थात् अत्यन्त भ्रष्ट हैं तथा अन्य मनुष्यों को भी भ्रष्ट कर देते हैं। लौकिक जन की परिभाषा करते हुए आचार्य जयसेन ने कहा है जो स्वेच्छाचारी है वह लौकिक जन है अर्थात् जो आगम, नीति, आदर्श, मर्यादाओं का उल्लंघन करके

स्वेच्छाचारी होते हैं वे दूसरों के उपदेश को सत्यार्थ मार्ग को भी जानते नहीं हैं मानते नहीं है, और न ही आचरण करते हैं। जैसे प्रबल वेग में बहती हुई नदी स्रोत में गिरने वाले प्राणियों तथा तटस्थ वृक्ष आदि को भी बहाकर ले जाती है उसी प्रकार स्वेच्छाचारी व्यक्ति दूसरों की भी स्वेच्छाचार में प्रवृत्ति कराता है। मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त है कि व्यक्ति अपने परिसर के व्यक्तियों को भी स्वयं के समान बनाना चाहता है। जैसा-जो मद्यपायी होता है उसकी संगति में आने वाले को मद्य पिलाता है तथा जो धूम्रपायी होता है वह अपने मित्रों को धूम्रपान कराता है। इसलिए तो व्यसन सीखने का एक कारण व्यसनी संगति भी है। सभी प्रायोगिक रूप में देखा जाता है कि क्लब, होस्टल, परिवार, मित्रमंडल, प्रीतिभोज आदि में अधिकांश व्यक्ति जिस आचार, विचार, खान-पान के होते हैं वे दूसरों को भी उसी प्रकार बनाना चाहते हैं। अधिकांश व्यक्ति अशुद्ध खान-पान वाले हैं। वे दूसरों को भी अपने समान बनाना चाहते हैं और वह नहीं बनता है तो उसकी कटु आलोचना करते हैं। अधिकांश दुर्बल मानसिक, दृढ़संकल्प हीन व्यक्ति अशुद्ध आचार-विचार वालों के जैसे ही बन जाते हैं। इतना ही नहीं दुर्जन संगति से वाद-विवाद कलह आदि भी बढ़ता है क्योंकि सबकी विचार धारा अलग-अलग होती है और जब नहीं मिलती तो उसमें टकराव व संघर्ष होता है। इसलिए नियमसार में कुन्दकुन्द आचार्य ने कहा है-

णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लब्धी।

तम्हा वयणविवादं, सगपरसमएहि वज्जिज्जो।।(156)

नाना प्रकार के जीव हैं नाना प्रकार के कर्म हैं, और नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं, इसलिए स्व और पर समय सम्बन्धी वचन विवाद वर्जित करना चाहिए।

लब्धुणं णिहि एक्को, तस्स फलं अणुहवेइ सुजणते।

तह णाणी णाणाणिहिं, भुजेइ चइतु परतत्तिं।।(157)

जैसे कोई निर्धन निधि को पाकर सुजनरूप से गुप्तरूप से उसके फल का अनुभव करता है जैसे की ज्ञानीजन परजनों के समुदाय को छोड़कर ज्ञाननिधि का अनुभव करता है। समाधि तंत्र में भी पूज्यपाद स्वामी ने लौकिक जन का संसर्गत्याग एवं सम्भाषण त्याग करने को कहा है। यथा-

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मानसश्चित्तविभ्रमाः।

भवन्ति तस्मात्संसर्ग जनैर्योगी ततस्यजेत्॥(72)

मनुष्यों में अनेक प्रकार की बातें सुनने को मिलती है उन बातों को सुनने से, आत्मा में हलन-चलन होता है, उससे मन में विविध प्रकार के क्षोभ या चित्त विक्लेष होते हैं। इस कारण से आत्मध्यान करने वाला मुनि अन्य मनुष्यों के साथ सम्बन्ध रखना छोड़ दें।

अज्ञापितं न जानन्ति यथा मां ज्ञापितं तथा।

मूढात्मानस्ततस्तेषां वृथा में ज्ञापनश्रमः॥(58)

मूर्ख बहिरात्मा जीव बिना बतलाये मेरे आत्मस्वरूप को जिस तरह नहीं जानते हैं, उसी प्रकार बतलाने पर भी आत्मस्वरूप को नहीं जानते इस कारण उन मूर्ख बहिरात्माओं के लिए मेरा आत्मा शुद्ध स्वरूप समझाने का परिश्रम व्यर्थ है।

अभवत्तत्तदभिव्यक्तिः एकांते तत्त्वसंस्थितिः।

अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः॥(36)

जिसके चित्त में रागद्वेष आदि का क्षोभ नहीं है तथा हेय उपादेय तत्त्व विचार में जिसकी बुद्धि स्थिर है, ऐसा आत्मध्यानी मुनि अकेले निर्जन स्थान में आलस्य तथा निद्रा त्यागकर सावधानी से अपने आत्मा में शुद्ध स्वरूप के चिन्तन का अभ्यास करें।

बौद्ध ग्रंथ धम्मपद में कहा है-

चरञ्जे नाधिगच्छेय्य सेय्यं सदिसमत्तनो।

एक चरियं दल्हं कयिरा नत्थि बाले सहायता॥(2)

विचरण करते यदि अपने श्रेष्ठ या अपने समान व्यक्ति को न पाये, तो दृढ़ता के साथ अकेला ही विचारे। मूर्ख से मित्रता अच्छी नहीं।

यावजीवमिं चे बालों पण्डितं पयिरूपासति।

न सो धम्मं विजानाति दब्बी सूपरसं यथा॥(5)

यदि मूर्ख जीवन भर पण्डित के साथ रहे, तो वह भी धर्म को वैसे ही नहीं जान सकता है, जैसे कि कछली दाल (सूप) के रस को।

न भजे पापके भित्ते न भजे पुरिसाधमे।

भजेथ मित्ते कल्याणे भजेथ पुरिसुत्तमे॥(3)

बुरे मित्रों का साथ न करें, न अधम पुरुषों का सेवन करे। अच्छे मित्रों का साथ करें, उत्तम पुरुषों का सेवन करें।

बालसंगतिचारी हि दीधमद्यान सोचति।

दुक्खो बालेहि संवासो अभितेनेव सव्वदा।

धीरो च सुखसंवासो जातीनं न समागमो॥(11)

मूढ़ों की संगति में रहने वाला दीर्घकाल तक शोक करता है, मूढ़ों का सहवास शत्रु की तरह सदा दुःखदायक होता है। बन्धुओं के समागम के भाँति धीरों का सहवास सुखद होता है।

रयणसार में कहा भी है-

लोइय जण संग्गादो होइ मइमुहर कुडिल दुब्भावो।

लोइय संग तम्हा जोइवि तिविहेण मुंचा हो॥(42)

मिथ्यादृष्टि विधर्मी लौकिक जनों की संगति से ज्ञान विपरीत होता है जिससे अपने परिणामों में कुटिलता आ जाती है और खोटी भावना होने लगती है। अतः साधु भी इस कारण लौकिक मिथ्यादृष्टियों की संगति मन, वचन और काय से छोड़ दे।

जैनाभास यति के साथ क्रियाओं का निषेध

विसंघैस्सममध्यात्मं प्रायश्चित विधिक्रियाः।

सिद्धान्ताचार भावास्य नालोच्या यतिना सदा॥(73) नीति सार

मुनिराज को जैनाभास (विसंघ) संघ के यतियों के साथ अध्यात्म, प्रायश्चित विधि (अनुष्ठान) क्रियाओं को और सिद्धांताचार ग्रन्थ के अभिप्राय के सम्बन्ध में आलोचना (विचार) नहीं करना चाहिए।

भद्रोविभेति दुःसंगत परः संगच्छते तथा।

अभद्रेण संम नित्यं यथा स्यात् तत्कुटुम्बभाक्॥(कु.का.)

योग्य पुरुष कुसंग से डरते हैं पर क्षुद्र प्रकृति के आदमी दुर्जनों से इस रीति से मिलते जुलते हैं मानों वे उनके कुटुम्ब के ही हों।

यथाभूमौ वहत्यम्भस्तत्था परिवर्तते।

यादृशी संगतिस्तस्य पुरुषोऽपि तथाविधः॥(2)

पानी का गुण बदल जाता है, वह जैसे धरती पर बहता है वैसे ही गुण उसका हो जाता है। इसी प्रकार मनुष्य की जैसी संगति होती है, उसमें वैसे ही गुण आ जाते हैं।

बुद्धेर्यद्यपि सम्बन्धो मस्तकादेव वर्तते।

यशसः किन्तु सम्बन्धो गोष्ठ्या उपरिनिर्भरः॥(3)

आदमी की बुद्धि का सम्बन्ध तो उसके मस्तक से है, पर उसकी प्रतिष्ठा तो उन लोगों पर पूर्ण अवलम्बित है जिनकी संगति में वह रहता है।

जिनका संसर्ग नहीं करना चाहिए ऐसे श्रमण का स्वरूप मूलाचार में निम्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

चंडो चवलो मंदो तह साहू पुट्टिमंसपडिसेवी।

गारवकसायबहुलो दुरासओ होदि सो समणो॥(957)

जो साधु क्रोधी, चंचल, आलसी, चुगलखोर है एवं गौरव और कषाय की बहुलता वाला है वह श्रमण आश्रय लेने योग्य नहीं है।

वेज्जावच्चविहूणं विणयविहूणं च दुस्सुदिकुसीलं।

समणं विरागहीणं, सुजमो साधू ण सेविज्ज॥(958)

सुचारित्रवान् साधु वैयावृत्य से हीन, विनय से हीन, खोटे शास्त्र से युक्त, कुशील और वैराग्य से हीन श्रमण का आश्रय न लेवें।

दंभं परिपरिवादं णिसुणत्तण पावसुत्तपडिसेवं।

चिरपव्वइदं पि मुणी आरंभजुदं ण सेविज्ज॥(959)

मायायुक्त, अन्य का निन्दक, पैशुन्यकारक, पापसूत्रों के अनुरूप प्रवृत्ति करने वाला और आरम्भ सहित श्रमण चिरकाल से दीक्षित क्यों न हो तो भी उसकी उपासना न करें।

चिरपव्वइदं पि मुणी अपुट्ठधम्म असंपुडं णीचं।

लोइय लोगुत्तरियं अयाणमाणं विवज्जेज्ज॥(960)

मिथ्यात्वयुक्त, स्वेच्छाचारी, नीचकार्ययुक्त, लौकिक व्यापारयुक्त, लोकोत्तर व्यापार को नहीं जानते ऐसे चिरकाल से भी दीक्षित मुनि को छोड़ दें।

आयरियकुलं मुच्चा विहरदि समणो य जो दु एगागी।

ण य गेणहदि उवदेसं पावस्ससमणोति वुचदि दु॥(961)

जो श्रमण आचार्य संघ को छोड़कर एकाकी विहार करता है और उपदेश को ग्रहण नहीं करता है वह पापश्रमण कहलाता है।

आयरियत्तणं तुरिओ पुव्वं सिस्सत्तणं अकाऊणं।

हिंडई दुंढायरिओ णिरंकुसो मत्तहत्थित्व॥(962)

जो पहले शिष्यत्व न करके आचार्य होने की जल्दी करता है वह ढोंगाचार्य है। वह मदोन्मत्त हाथी के समान निरंकुश भ्रमण करता है।

अंबो णिबत्तणं पत्तो दुरासएण जहा तथा।

समणं मंदसंवेगं अपुट्टुधम्मं ण सेविज्ज॥(963)

जैसे आम खोटे संसर्ग में नीमपने को प्राप्त हो जाता है वैसे ही आचरण से हीन और धर्म से आलसी श्रमण का आश्रय न लें।

बिहेदव्वं णिच्चं दुज्जणवयणा पलोट्टुजिब्भस्स।

वरणयरणिग्गमं पिव वयणकयार वहंतस्स॥(964)

दुर्जन के सदृश वचन वाले यद्वा तद्वा बोलने वाले, नगर के नाले के कचरे को धारण करते हुए के समान मुनि से हमेशा डरना चाहिए।

आयरित्तणमुवणायइ जो मुणि आगमं ण याणंतो।

अप्पाणं पि विणासिय अण्णे वि पुणो विणसेई॥(965)

जो मुनि आगम को न जानते हुए आचार्यपने को प्राप्त हो जाता है वह अपने को नष्ट करके पुनः अन्यो को भी नष्ट कर देता है।

घोडयलछिसमाणस्स बाहिर बगणिहुदकरणचरणस्स।

अब्भंतरग्घि कुहिदस्स तस्स दु किं बज्झजोगेहिं॥(966)

घोड़ों के लीद के समान अन्तरंग में निन्द्य और बाह्य से बगुले के सदृश हाथ-पैरों को निश्चल करने वाले साधु के बाह्य योगों से क्या प्रयोजन?

पासत्थादिपणयं णिच्चं वज्जेइ सव्वथा तुम्हे।

हंदि हु मेलणदोसेण होइ पुरिसस्स तम्मयदा॥(341) भ.आ.

पार्श्वस्व, अवसन्न, संसक्त, कुशील और मृगचारित्र इन पाँच प्रकार के कुमुनियों से तुम सदा दूर रहो। उनसे मेल रखने से पुरुष उनके समान पार्श्वस्थ आदि रूप हो जाता है।

लज्जं तदो विहिसं णिव्विसंकदं चव।

पियधम्मो वि कमेणारुहंतओ तम्मओ होइ।।(342)

पार्श्वस्व आदि का संसर्ग करने की इच्छा रखते हुए भी लज्जा करता है। पश्चात् असंयम के प्रति ग्लानि करता है कि मैं कैसे इस प्रकार व्रत भंग करूँ, यह तो दुरन्त संसार में गिराने वाला है। पश्चात् चारित्र मोह के उदय से परवश होकर असंयम का प्रारम्भ करता है। असंयम का प्रारम्भ करके यति, आरम्भ, परिग्रह आदि में निःशंक होकर प्रवृत्ति करता है। इस प्रकार धर्म का प्रेमी भी मुनि क्रम से लज्जा आदि करते हुए पार्श्वस्व आदि रूप हो जाता है।

संविग्गस्सवि संसग्गीए पीदी तदो य विसंभो।

सदि वीसंभे य रदि होई रदिए वि तम्मयदा।।(343)

संसार से भयभीत भी मुनि पार्श्वस्व आदि के संसर्ग से उनसे प्रीति करने लगता है। प्रीति करने से उनके प्रति विश्वासी हो जाता है। उनका विश्वास करने से उनका अनुरागी हो जाती है और उनमें अनुराग करने से पार्श्वस्थादिमय हो जाता है।

धर्ममंगल 2.9.2019

दि. 2.8.19

समाज में पनपती विसंगतियों पर

ऐतिहासिक विद्वत् संगोष्ठी

संकलन-साध्य महालक्ष्मी टाईम्स, दिल्ली

प्रीतिविहार-दिल्ली में जैन धर्म महासंघ द्वारा आयोजित विद्वत् संगोष्ठी में विभिन्न मंदिरों के पदाधिकारी एवं विद्वान 500 के करीब लोग उपस्थित थे।

विद्वानों द्वारा प्रस्तुत आगमयुक्त आलेख प्रस्तुति-

डॉ. शीतलचन्द्र जैन (जयपुर) - जिस अर्थ में शिथिलाचार शब्द का आज प्रयोग हो रहा है, उस रूप में तो आगम में इसका उल्लेख तक नहीं है, फिर अतिचार, अनाचार, व्यभिचार जैसे शब्दों की बात तो बहुत दूर है।

डॉ. श्रेयांस प्रसाद जैन, (अध्यक्ष, शास्त्री परिषद)-साधुओं से हजार गुना गिरावट आज श्रावकों में आ गयी है। समाज कई अश्लीलता के कार्यक्रम करवाने लगी है। कई अध्यक्ष, उपाध्यक्ष सारे बुरे कार्य करते हैं, वो फिर साधु से भी राग, श्रृंगार, अश्लील बातें ही करेंगे तो एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर असर तो पड़ता है। इस गिरावट में मूल कारण परिग्रह है। यह परिग्रह पिशाच से विलास तक पहुँच जाता है।

साधु तो गिरा है, पर श्रावकों ने ज्यादा योगदान दिया है। जितना प्रतिमा को गिराने में दोष है, उतना ही साधु को परिग्रही बनाने में दोष लगता है। सरागता नहीं, वीतरागता पूज्य हैं। विद्वत् वर्ग ने आह्वान किया कि एकल साधु के साथ आर्यिका या ब्रह्मचारिणी रहे, तो उनका चातुर्मास नहीं करायें। जो तीर्थ या धर्मशाला बनाने में लिप्त रहे, उनसे दूर रहें।

ब्र. मनीषभैया-रीति, नीति, दंड व्यवस्था बननी चाहिए। आज सबसे बड़ा साधु वह होता है, जिसके पास ज्यादा पैसा होता है। साधुओं की तीर्थयात्रा व्यवस्था में खर्च, बोली बोलना, पंचकल्याणकों में प्रतिस्पर्धा हो रही है। महाव्रतों को धारण करने से पहले कोई परीक्षा जैसा स्केल होना चाहिए।

डॉ. सुरेन्द्र भारती - (महामंत्री विद्वत् परिषद)-नेगेटिव ही नहीं पाजिटिव भी सोचना चाहिए। आज सभी दोषों का कारण सामाजिक संगठनों का अभाव है। अपने को अच्छा बनायें।

डॉ. चींरजीलाल बगड़ा (पत्रकार-कोलकाता)-चारित्रिक शिथिलाचार के दोषों को उनके आचार्य प्रायश्चित देकर समाप्त कर दें, तो क्या यह लोकहित में है? आज सौ से भी अधिक आचार्य हैं। साधुओं का श्रावकों पर वर्चस्व है। हर एक का अपना-अपना प्रभाव क्षेत्र है। समाज में व्यवस्था ही नहीं, कुशील नेतृत्व का अभाव है।

ब्र. जय निशांत जैन- (महामंत्री, शास्त्री परिषद) साधनों के कारण विसंगतियाँ होती हैं। अंधभक्ति छोड़िए, होड़ में तीर्थ बन रहे हैं। हर साधु के साथ विद्वान्, श्रावक निश्चित हैं। पंचकल्याणक के नाम पर करोड़ों इकट्ठे होते हैं, पर इससे जिनशासन की कितनी प्रभावना होती है? समाज को क्या मिलता है? कभी सोचा है? आज तो साधु का शरीर भी तपस्या के योग्य नहीं बचा है।

प्रो. वीरसागर जैन-परिष्कार करो बहिष्कार न करो, संवाद जरूरी है।

डॉ. राकेश (सागर)-व्यावहारिक कुशलता, सामाजिक प्रभाव रूपी दबाव, पारिवारिक प्रभाव के साथ साधुओं से मिलकर हम हल निकालें, पर राजनीतिक व प्रशासनिक प्रभाव का कभी उपयोग न करें।

संगोष्ठी में एक मत से लिये गये निर्णय-इस संगोष्ठी में जैनधर्म राष्ट्रीय कार्यकारिणी के प्रमुख एवं अनेक विद्वान उपस्थित थे, फिर भी जो आये, बोले, वह समाज व धर्म के हित में आज के परिप्रेक्ष्य में कुछ विद्वानों ने दबी आवाज में चुप्पी तोड़ी व एक आवश्यक आरंभ तो हुआ। इसमें एक मत से निर्णय लिया गया-चारित्रिक शिथिलता गंभीर है, यह साधुसंस्था को ही नष्ट कर देगी। साख लगातार गिर रही है। विद्वत् वर्ग 5 विद्वानों की एक समिति बनायेगी। विभिन्न आचार्यों के पास व्यावहारिक कुशलता से 'दीक्षा से पहले परीक्षा' पर चर्चा कर एक नियमावली बनायेंगे। उनकी इस पहल पर जैन महासंघ ने पूरी व्यवस्था कर देने का तुरन्त आश्वासन दिया। विद्वानों ने यह संकल्प लिया कि कुचारित्रिक साधु की सभा में उपस्थित नहीं होंगे। समाज के लिए निम्न छह नियम भी बनाकर सभी मंदिरों में जल्द लगाने की अपील की गयी।

1. **अकेली महिला**-व्रती या श्राविका को संतों के पास एकांत में वार्ता नहीं करनी चाहिए, न ही उनके पास जायें।
2. **साधु-संतों, त्यागी-व्रतियों को धार्मिक कार्यक्रमों तथा पंचकल्याणकों, चातुर्मास आदि में आयोजन संबंधी हस्तक्षेप एवं मंदिर कमेटी में दखल नहीं करनी चाहिए।**
3. रात्रि कार्यक्रमों में साधुसंतों को मौन पालना चाहिए।
4. चौके में साधुसंतों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए सात्विक एवं संयमित आहार बनाया जाना चाहिए। चौका लगाने में दिखावे एवं परस्पर होड़ की वृत्ति नहीं हो।
5. मंदिरों में पहले की पूजा पद्धति के साथ कोई छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए।
6. जैन धर्मावलम्बियों के विवाह में मदिरा या अश्लील-भौड़े नृत्य का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नरेन्द्रकुमार जैन, बीना का अभिमत-(संपादक, स्वतंत्र जैन चिंतन-अजमेर से साभार) - यह संगोष्ठी इतिहास के सुवर्ण अक्षरों में दर्ज हो जायेगी। मंच पर मौजूद 20 ख्याति प्राप्त विद्वानों का जो देश की राजधानी में संभवतः पहली बार मंच पर आये थे, बेहद संवेदनशील विषय पर किसी साधु की उपस्थिति के बिना 500 से अधिक गणमान्य लोगों की उपस्थिति भी स्पष्ट कर रही थी कि समाज कहीं न कहीं इस विषय को लेकर चिंतित है और हर कोई इसका समाधान चाहता है। इस प्रकार की संगोष्ठियाँ होती रहनी चाहिए, परन्तु इस प्रकार की गोष्ठियों से किसी प्रकार की उपलब्धि प्राप्त करने के लिए बहुत कुछ करना होगा। वर्तमान रूप में इस प्रकार की गोष्ठियाँ कोई परिवर्तन लाने में सक्षम साबित नहीं हो सकती। गोष्ठी में विद्वानों द्वारा आलेख प्रस्तुत करना कोई नयी बात नहीं है, परन्तु मूल बात यह है कि क्या पूरी गोष्ठी में किसी ने भी किसी साधु-साध्वी या उनकी विसंगतियों की ओर इशारा किया है? सभी ने इस बात से बचकर चलना ही उचित माना है। जब तक विकृति जहाँ पनप रही है, उसे नामजद नहीं किया जाएगा, तब तक ये प्रयास किसी प्रकार के कोई नतीजे निकाल सकेगे, संभव नहीं लगता। सफलता के पैमाने पर इस गोष्ठी को सौ में से सौ नंबर दिये जाये तो गलत नहीं होगा। विद्वानों द्वारा जो साहसिक निर्णय लिये गये, वही समाज के भी हैं। छह नियमों को सर्व सम्मति से पारित किया गया। जिस पर जैन सभा के अध्यक्ष चक्रेश जैन की भी संस्तुति रही।

सूक्ष्म जीव रक्षक V/s मानव घातक भी

क्षुद्र-पापी-मिथ्यादृष्टि जीवों की रक्षा हेतु

(अहिंसा-शाकाहार-रात्रिभोजनत्याग, अमर्यादित भोजन त्याग से सचित्त त्याग, जलगालन, ईर्या-आदाननिक्षेपण-प्रतिष्ठापन समिति, संयम उपकरण रूपी पिच्छी धारण आदि)

(चाल : 1. क्या मिलिए...2. आत्मशक्ति...)

क्षुद्र व पापी जीवों का, वर्णन है जैनधर्म में।

निगोद से ले असंज्ञी पंचेन्द्रिय, होते पापी निश्चय से।।

संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य, तिर्यच नारकी व स्वर्ग के देव।

होते हैं पुण्यशाली जीव, अन्य सभी पापी जीव।।(1)

ऐसे क्षुद्र पापी जीव होते, अनन्तानन्त (अधिसंख्य) विश्व में।
इनकी रक्षा हेतु भी विशेष वर्णन है जैन शास्त्रों में।।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक होते, सभी सम्मूर्च्छन जीव।

बिना माता-पिता के संयोग से, उत्पन्न होते वे जीव।।(2)

अचाक्षुष से ले चाक्षुषस्थूल होते हैं उपरोक्त जीव।

इनकी रक्षा हेतु भी व्रत नियम है जैनधर्म में।।

पानी छानकर प्रयोग से, रात्रिभोजन व अभक्ष्यत्याग।

अमर्यादित भोजन व पंचउदम्बर से ले कन्दमूल त्याग।।(3)

ईर्या-आदाननिक्षेपण व प्रतिष्ठापन समिति पालन।

पिच्छी धारण से ले श्वेताम्बर श्रमण के मुखपट्टी धारण।।

रात्रि में गमनागमन त्याग से ले वर्षायोग का धारण।

पैदल चलना, केशलोचन करना, वस्त्रादि परिग्रह त्याग।।(4)

गृहस्थ सम्बन्धी समस्त आरम्भ परिग्रह त्याग करना।

यान-वाहन से ले धर्मशाला मठ-मन्दिर निर्माण त्याग।।

ये सभी करणीय है क्षुद्र-पापी-मिथ्यात्वी जीव रक्षार्थे।

इससे भी अधिक रक्षा करणीय स्थूल सम्यक्त्वी जीव हेतु।।(5)

किन्तु अनुभव प्रयोग में आता है बहुत विरोधाभास।

सूक्ष्म पापी के रक्षक भी स्थूल सुदृष्टि मानव तक के घातक।।

इनसे ईर्ष्या द्वेष घृणा वैर विरोध से ले करते निंदा।

शोषण मिलावट ठगी से लेकर करते हैं पीड़ित से हत्या।।(6)

ये सभी करते हैं संकीर्ण पंथ-मत परम्परा पूजा हेतु।

सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि से लेकर वर्चस्व प्रतिस्पर्द्धा हेतु।।

मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यम से यथायोग्य आचरणीय।

कट्टर संकीर्ण भाव व्यवहार परे 'कनक' अहिंसा पालनीय।।(7)

नन्दौड़ दि. 24.11.2019, रात्रि 8:07

मिथ्यात्व गुणस्थान को जाना तो ऐसा जाना... ?

(सत्य विश्वास-आत्मविश्वास से रहित जीव मिथ्यादृष्टि-अंधविश्वासी)

- आचार्य कनकनन्दी

(चाल : एक लड़की को देखा...)

मिथ्यात्व (को) जाना तो ऐसा पाया....

आत्मश्रद्धान/(सत्यश्रद्धान) रहित जीवों को जाना...

निगोदिया/(सूक्ष्म जीव) से ले स्थूल जीवों को पाया...

मनुष्य तिर्यच नारकी देवों को पाया...मिथ्यात्व...(1)

सत्य श्रद्धान रहित जो जीव होते...

वे सभी जीव मिथ्यादृष्टि होते....

भले वे होते हो सूक्ष्म से स्थूल जीव...

मनुष्य से लेकर देव तक जीव...मिथ्यात्व...(2)

वे सत्य-असत्य को नहीं जानते/(मानते)...

आत्मा-परमात्मा भी न पहचानते...

द्रव्य-तत्त्व-पदार्थों को नहीं मानते...

स्वयं को शरीरमय ही मानते...मिथ्यात्व...(3)

मैं हूँ जीव द्रव्य सच्चिदानंदमय...

अनादि अनिधन स्वयंभू स्वयंपूर्ण...

अनादि कर्म से बना हूँ संसारी जीव/(शरीर युक्त)...

तथापि शुद्धनय से मैं हूँ शरीर मुक्त/(कर्म मुक्त)...मिथ्यात्व...(4)

ऐसा श्रद्धान सह जो न होते जीव...

उन्हें सर्वज्ञ देव ने कहा मिथ्यात्वी जीव...

मिथ्यादृष्टि न होते सही धर्मात्मा...

भले करते हो बाह्य धार्मिक क्रिया...मिथ्यात्व...(5)

मिथ्यादृष्टि की न होती आत्मशुद्धि...

समता-शांति व आत्म-उन्नति....

राग द्वेष मोह व ईर्ष्या-घृणा सहित...
 सत्ता-संपत्ति-भोगोपभोग मोहित...मिथ्यात्व...(6)
 चौदह (14) जीव समासों में मिथ्यादृष्टि संभव...
 चार से दश प्राण तक इनमें संभव...
 चार गति चार संज्ञा पाँच इन्द्रिय संभव...
 छहों काय तीनों वेद होना संभव...मिथ्यात्व...(7)
 पच्चीस (25) कषाय व तीन कुज्ञान होते...
 दो दर्शन सहित असंयमी ही होते...
 छःहों लेश्या युक्त भव्य-अभव्य होते...
 संज्ञी-असंज्ञी आहारक-अनाहारक होते...मिथ्यात्व...(8)
 पाँच उपयोग युक्त आठ ध्यान सहित...
 पचपन (55) आम्रव युक्त आठ ध्यान सहित...
 चौरासी (84) लाख जाति इनकी होती...
 एक सौ निन्यानवे (199) लाख कुल कोटि होते...मित्यात्व...(9)
 ऐसे जीवों को न मिलती आत्मिक शांति...
 मिथ्यात्व सहित जीव न पाते परम मुक्ति....
 भव्य मिथ्यात्वी जीव क्रमशः पाते हैं मुक्ति...
 'कनकनन्दी' का लक्ष्य है परम मुक्ति....मिथ्यात्व...(10)
 सन्दर्भ-

मिथ्यात्व गुणस्थान

सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य, तत्त्व पदार्थों पर विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत श्रद्धान करता है। सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोमट्टसार में कहते हैं-

मिच्छाद्दृष्टी जीवों उवड्डुं पवयणं ण सहहदि।

सहहदि असब्भावं उवड्डुं वा अणुवड्डुं।। (18) (गो.सार.)

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते हैं तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

पदमक्खरं च एक्कं पि जो ण रोचेदि सुत्त णिद्धिं।

सेसं रोचंतो वि हु मिच्छाद्दृष्टी मुणेयव्वा।।(39) (भगवती आराधना)

श्रुत में कहा गया है कि एक पद का अर्थ अथवा एक अक्षर का भी अर्थ जो प्रमाणभूत मानकर श्रद्धा नहीं करता है वह बाकी के श्रुतार्थ को या श्रुतांश को प्रमाण जानता हुआ भी मिथ्यादृष्टि ही है। बड़े पात्र में रखे हुए बहुत दूध को भी छोटी सी विषकणिका बिगाड़ती है। इसी तरह अंधश्रद्धा का छोटा सा अंश भी आत्मा को मलीन करता है।

मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवट्ठिं।

जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग मग्गरवो।।(2) (स्यणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छंद होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।

ण य धम्मं रोचेदि हु महरं खु रसं जहा जरिदो।।(17)

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत

दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है, अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसन्द नहीं करता।

दृष्टान्त-पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसन्द नहीं करता, उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

इंदिय विसय सुहादिसु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्व।

बहुदुःखमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।।(29)(रयणसार)

जो मूढमति इन्द्रिय जनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयंमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते हैं उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में लीन ही रहता है। बाह्य-भौतिक आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यात्ववादियों के 363 भेद होते हैं।

ए-इंदिया, बे-इंदिया, ते-इंदिया, चतुरिंदिया, पंचिंदिया, पुढवि-काइया-आउ-काइया, तेउ-काइया, वाउ-काइया, वणप्फदि-काइया, तस-काइया, एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं, उवघादो, कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा में दुक्कड़ं।

भावार्थ : हे जिनेन्द्र देव ! मैंने एकेन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीव को मारना, पीड़ा देना, एकदेश प्राणों का घात करना, विराधना करना आदि पाप-कार्यों को स्वयं किया हो, दूसरों से कराया हो अथवा करने वालों की अनुमोदना की हो तो मेरे पाप मिथ्या होंगे।

वद-समि-दिंदिय रोधो, लोचावासय-मचेल-मण्हाणं।

खिदि-सयण-मदंतवणं, ठिदि-भोयण-मेयभत्तं च।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।

एत्थ पमाद कदादो अइचारादो णियत्तोऽहं।। छेदोवट्ठावणं होदु मज्झं

भावार्थ : जो महान व्रत है उन्हें महाव्रत कहते हैं। अथवा महापुरुषों के द्वारा जिनका आरचण किया जाता है वे महाव्रत हैं। अथवा स्वतः ही मोक्ष को प्राप्त कराने वाले होने से ये महान व्रत महाव्रत कहलाते हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच महाव्रत हैं।

पञ्चानां पापानां हिंसादीनां मनो वचः कायैः।

कृतकारितानु-मोदैस्त्यागस्तु महाव्रतं महताम्।।72।।र.श्रा.।।

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।

जं च महल्लाणि तदो महल्लया इत्तहे ताइं।।30।।चा.पा.।।

महापुरुष जिनका साधन करते हैं, पूर्ववर्ती महापुरुषों ने इनका आचरण किया है और ये स्वयं ही महान है अतः इन्हें महाव्रत कहते हैं।

काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणा, कुल, आयु और योनि इनमें जीवों को जानकर इनमें प्रमत्तयोग से होने वाली हिंसा का परिहार करना अहिंसा महाव्रत है।

आलोचना

इच्छामि भंते! चरित्तायारो तेरस-विहो, परिविहा-विदो, पंच-महव्वाणि, पंच-समिदीओ तिगुत्तीओ चेदि। तत्थ पढमे महव्वदे, पाणा-दिवादादो वेरमणं से पुढवि-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, आउ-काइया-जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, तेउ-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, वाउ-काइया-जीवा-असंखेज्जा-संखेज्जा, वणप्फदि-काइया-जीवा-अणंताणंता, हरिया,

बीआ, अंकुरा, छिण्णा-भिण्णा एदेसिं उद्दावणं, परिदावणं, विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ : हे भगवन्! अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह रूप पाँच व्रत, ईर्या, भाषा एषणा, आदान-निक्षेपण, व्युत्सर्ग पाँच समिति और मन, वचन, काय, गुप्ति इस प्रकार तेरह प्रकार का जो चारित्र है उसकी मेरे द्वारा अवहेलना, उनका खंडन किया गया हो तो मैं दोषों की आलोचना करने की इच्छा करता हूँ।

हे प्रभो! अहिंसा महाव्रत की आराधना में एकेन्द्रिय पृथ्वीकायिकादि जीवों की विराधना की हो, कराई हो, या करने वाले की मेरे द्वारा अनुमोदन हुई हो तो मेरा पाप मिथ्या हो।

बे-इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा-कुक्खि-किमि संख-खुल्लय, वराडय, अक्ख-रिदुय-गण्डवाल-संबुक्क सिप्पि, पुलवि-काइया एदेसिं उद्दावण परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ : दो इन्द्रिय कुक्षि, शंख आदि जीवों की मैंने विराधना की हो, कराई हो या अनुमोदना की हो तो तत्संबंधी मेरे पाप मिथ्या हों।

ते इंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, कुन्थुद्देहिय-विंच्छिय-गोभिंद-गोजुव-मक्कुण-पिपीलियाइया एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ : हे भगवन्! मैंने असंख्यातसंख्यात तीन इन्द्रिय जीव कुन्थु, खटमल, मक्कड, जूँ आदि का उत्तापन, परितापण, विराधन आदि किया हो, कराया हो, करते हुए की अनुमोदना की हो तो मेरे खोटे कार्य मिथ्या हों।

चउरिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, दंसमसय-मक्खि-पयंग-कीड-भमर-महुयर, गोमच्छियाइया, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणु-मण्णदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ : हे भगवन्! मैंने डांस-मच्छर-मक्खी-आदि चतुरिन्द्रिय जीवों की विराधना, उत्तापन, परिदावण किया हो, कराया हो या अनुमोदन की हो तो मेरे दुष्कार्य मिथ्या हों।

पंचिंदिया जीवा असंखेज्जा-संखेज्जा, अडांइया, पोदाइया, जराइया, रसाइया, संसेदिमा, सम्मुच्छिमा, उब्भेदिमा, उववादिमा, अविचउरासीदिजोणि-पमुह-सद-सहस्सेसु, एदेसिं उद्दावणं परिदावणं विराहणं उवघादो कदो वा, कारिदो वा, कीरंतो वा, समणुमण्णिदो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं।

भावार्थ : हे भगवन्! असंख्यातसंख्यात पञ्चेन्द्रिय जीव अंडज, पोतज, जरायुज, उद्भेदिय आदि का उत्तापन, विराधन मैंने स्वयं किया हो, कराया हो या अनुमोदना की हो तो मेरा पापकार्य मिथ्या होवे।

अंडज-अण्डों से उत्पन्न होने वाले कबूतर आदि।

पोतज-पैदा होते ही चलने-फिरने व भागने लगते हैं उत्पन्न होते समय जिन जीवों के शरीर के ऊपर किसी प्रकार का आवरण नहीं होता उन्हें पोतज कहते हैं यथा-सिंह, हिरण आदि।

जरायुज-जर सहित पैदा होने वाले गाय, भैंस, मनुष्य आदि। जाली के समान माँस और खून से व्याप्त एक प्रकार की थैली से लिपटा जो जीव जन्म लेता है वह जरायुज है।

संस्वेदिम-पसीना से उत्पन्न होने वाले जूँ आदि।

उद्भेदिय-भूमि को भेदकर उत्पन्न होने वाले।

84 लाख योनि-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायुकायिक 7-7 लाख, नित्य निगोद, इतर निगोद 7-7 लाख, वनस्पतिकाय 10 लाख, दो-तीन-चार इन्द्रिय 2-2 लाख, पञ्चेन्द्रिय पशु 4 लाख, देव-नारकी 4-4 लाख और मनुष्य 14 लाख। इस प्रकार कुल 84 लाख योनि हैं।

उत्तापनं-त्रस व स्थावर जीवों के प्राणों का वियोग रूप मारण उत्तापन कहलाता है।

परितापनं-त्रस-स्थावर जीवों को संताप पहुँचाना परितापन है।

विराहणं-त्रस-स्थावर जीवों को पीड़ा पहुँचाना, दुखी करना विराधन है।

उपघात-त्रस स्थावर जीवों को एकदेश अथवा पूर्ण रूप से प्राणों से रहित करना उपघात है। सामान्य से ये चारों शब्द प्रायः एकार्थवाचक हैं।

अध्ययन; प्रकाश प्रदूषण पर 200 से ज्यादा अध्ययनों की समीक्षा के बाद दावा

कीटों को विनाश की ओर धकेल रहा प्रकाश प्रदूषण

नई दिल्ली। रात के समय कृत्रिम प्रकाश से होने वाला प्रकाश प्रदूषण कीटों को विनाश की ओर धकेल रहा है। प्रकाश प्रदूषण पर 200 से ज्यादा अध्ययनों की समीक्षा के बाद वैज्ञानिकों का दावा है कि एक दशक में हम बग के 40 प्रतिशत प्रजातियों को खो देंगे।

रात के समय कृत्रिम प्रकाश से जब हम अपने जीवन में प्रकाश फैलाते हैं, उसी समय कई कीट प्रजातियों को खोते भी जाते हैं।

हमारा यह कृत्रिम प्रकाश कई तरीकों से कीटों के जीवन को प्रभावित करता है। यह उन्हें हमसे कहीं दूर जाने के लिए विवश करता है तो कई बार उनके जीवनचक्र को ही बदल देता है। इस घटते कीट संख्या से वैश्विक परिस्थितिकी तंत्र के बिगड़ने की आशंका जताई जा रही है। जैसे कि पिछले 50 वर्षों में उत्तरी अमेरिकी पक्षियों की संख्या में 30 करोड़ की कमी आई है। हालांकि शोधकर्ताओं को कहना है कि प्रकाश प्रदूषण को कम करना हमारे लिए बहुत आसान है। कृत्रिम प्रकाश का उपयोग कम करने के साथ ही हम कम रोशनी में भी अपना काम चला सकते हैं। गैर जरूरी रोशनी के उपयोग से भी हम बच सकते हैं।

बदल रहा कीटों का जीवनचक्र

मैसाचुसेट्स में टप्ट्स विश्वविद्यालय के जीवविज्ञानी एवलॉन ओवेन्स और सहयोगियों ने 200 से अधिक अध्ययनों में पाया है कि प्रकाश प्रदूषण कीटों के जीवनचक्र को प्रभावित करते हैं। उनके अनुसार प्रदूषण का असर दुनिया भर के कीटों पर है।

जूलॉजिकल लाइटिंग इन्स्टीट्यूट के जेम्स कार्ल फिशर का कहना है कि हमें कीटों के विनाश की इस प्रक्रिया को गंभीरता से लेना होगा। उनके अनुसार कीट हमारे जीवन के लिए बहुत उपयोगी हैं। अन्य जीवों के लिए भी मददगार हैं।

2017 के अध्ययन में भी हो चुका है खुलासा

2017 के एक अध्ययन में बताया गया है कि जर्मनी में 63 प्राकृतिक संरक्षण स्थलों पर उड़ने वाले कीटों की संख्या पिछले 27 सालों में 76 प्रतिशत कम हो गई है। इसके अलावा विभिन्न अध्ययनों में बताया गया है कि 40 प्रतिशत कीट-प्रजातियाँ अगले कुछ दशकों में विलुप्त हो सकती हैं। शोधकर्ताओं का कहना है कि हर तरह के जीवों के लिए प्रकाश जीवन का स्रोत है। प्राकृतिक प्रकाश हर किसी के जीवन को प्रभावित करता है। इससे विकास के नए-नए रास्ते भी बनते हैं।

योनियों के भेद

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः॥(32) मो.शा.

सचित्त, शीत और संवृत्त तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत्त तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवत्तविवृत्त ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं।

संसारी जीव के योनिभूत स्थान या आधार को 'योनि' कहते हैं। चित्त सहित योनि को सचित्त योनि कहते हैं। आत्मा के चैतन्य रूप विशेष परिणाम को चित्त कहते हैं। शीतल स्पर्श युक्त योनि को शीत योनि कहते हैं। भले प्रकार ढकी योनि को संवृत्त योनि कहते हैं। 'संवृत्त' का अर्थ है जो देखने में नहीं आये उभयरूप योनि को मिश्र कहते हैं अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण, संवृत्त विवृत्त योनि कहते हैं।

योनि और जन्म में आधार अर्थात् दृष्टि से भेद है। ये सचित्त आदिक योनियाँ आधार हैं और जन्म के भेद आधेय हैं। क्योंकि सचित्त आदि योनिरूप आधार में समूच्छन आदि जन्म के द्वारा आत्मा, शरीर, आहार और इन्द्रियों के योग्य पुद्गलों का ग्रहण करता है। देव और नारकियों की अचित्त-योनि होती है, क्योंकि उनके उपपाददेश के पुद्गल प्रचयरूप योनि अचित्त है। गर्भजों की मिश्र योनि होती है, क्योंकि उनकी माता के उदर में शुक्र और शोणित अचित्त होते हैं जिनका सचित्त माता की आत्मा से मिश्रण है इसलिए वह मिश्र योनि है। समूच्छनों की तीन प्रकार की योनियाँ होती हैं इसलिए वह मिश्र योनि है। किन्हीं की सचित्त योनि होती है, किन्हीं की अचित्तयोनि होती है और किन्हीं की मिश्र योनि होती है। साधारण शरीर जीवों की सचित्त योनि होती है। क्योंकि ये एक-दूसरे के आश्रय से रहते हैं। इनसे अतिरिक्त शेष समूच्छन

जीवों के अचित्त और मिश्र दोनों प्रकार की योनियाँ होती हैं। देव और नारकियों की शीतल और उष्ण दोनों प्रकार की योनियाँ होती हैं, क्योंकि इनके कुछ उपपादस्थान शीत हैं और कुछ उष्ण। तेजस्कायिक जीवों की उष्णयोनि होती है। इनसे अतिरिक्त जीवों की योनियाँ तीन प्रकार की होती हैं। किन्हीं की शीत योनियाँ होती हैं, किन्हीं की उष्णयोनियाँ होती हैं और किन्हीं की मिश्रयोनियाँ होती हैं। देव, नारकी और एकेन्द्रियों की संवृत योनियाँ होती हैं। विकलेन्द्रियों की विवृत योनियाँ होती हैं। तथा गर्भजों की मिश्र योनियाँ होती हैं। इन सब योनियों के चौरासी लाख भेद हैं यह बात आगम से जाननी चाहिए। कहा भी है-

‘णिच्छिरधादु सत्त य तरू वियलिंदिएसु छच्चेव।

सुरणिरयतिरिय चउरो चोदस मणुए सदसहस्सा।।’

नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों की सात-सात लाख योनियाँ हैं। वृक्षों की दस लाख योनियाँ हैं। विकलेन्द्रियों की मिलाकर छह लाख योनियाँ हैं। देव, नारकी और तिर्यचों की चार-चार लाख योनियाँ हैं तथा मनुष्यों की चौदह लाख योनियाँ हैं।

गर्भ जन्म किसके होता है?

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः।।(33)

1. **जरायुज**-जाल के समान प्राणियों के परिआवरण को जरायु कहते हैं। गर्भाशय में प्राणी के ऊपर जो मांस और रक्त का जाल के समान आवरण होता है उसे जरायु कहते हैं। मनुष्य गाय, भैंस आदि के जन्म जरायुज हैं। जरायुज प्राणी आधुनिक विज्ञान के अनुसार और जैनधर्म के अनुसार उन्नतशील जीव होते हैं। विशेषतः ये जीव स्थलचर होते हैं।

2. **अण्डज** - शुक्र और शोणित से परिवेष्टित नख के ऊपरी भाग के समान कठिन और गोलाकार अण्डा होता है। जो नख की छाल के समान कठोर हो, पिता के वीर्य और माता के रक्त से परिवेष्टित होता है तथा श्वेत वर्ण तथा गोलाकार हो उसका नाम अण्डा है। इस अण्डे में जन्म लेने वाले को अण्डज कहते हैं। चील, कबूतर, तोता, मैना (सारिका) आदि अण्डज प्राणी हैं। यह प्राणी विशेषतः आकाशचर होते हैं। कुछ अण्डज जलचर भी होते हैं जैसे-घड़ियाल (मगरमच्छ)।

3. **पोतजन्म**-सम्पूर्ण अवयव तथा परिस्पन्द सामर्थ्य से उपलक्षित पोत है। जो गर्भाशय से निकलते ही चलने-फिरने के सामर्थ्य से युक्त हैं-सम्पूर्ण अवयव वाला है और जिसके ऊपर कोई आवरण नहीं है वह पोत कहलाता है। जरा में उत्पन्न होने वाला जरायुज, अण्डे में उत्पन्न होने वाला अण्डज और आवरण रहित पोत है।

उपपाद जन्म किसके होता है?

देवनारकरणामुपपादः।(34)

देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है।

सम्मूर्च्छन जन्म किसके होता है?

शेषाणां सम्मूर्च्छनम्।।(35)

शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है।

गर्भ जन्म जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का ही होता है। या जरायुज, अण्डज और पोत जीवों के गर्भ जन्म ही होता है। देव और नारकियों के उपपाद जन्म ही होता है। सम्मूर्च्छन जन्म शेष जीवों के ही होता है या शेष जीवों के सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है।

एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक तिर्यचों का नियम से सम्मूर्च्छन जन्म ही होता है। अन्य जीवों के गर्भ और सम्मूर्च्छन दोनों होता है। लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के भी सम्मूर्च्छन जन्म होता है। चारों तरफ से पुद्गल का इकट्ठा होकर शरीर बनने को सम्मूर्च्छन कहते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म अन्यत्र स्थानों में होता है। सम्मूर्च्छन जन्म में सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों तरह की योनियाँ होती हैं। सम्मूर्च्छन जन्म में शीत, उष्ण और मिश्र तीनों योनियाँ होती हैं। पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन जीवों की विकलत्रयों की तरह विवृत्त योनि ही होती है। पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छन तिर्यच कर्मभूमियाँ ही होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यच गर्भज तथा सम्मूर्च्छन ही होते हैं। सम्मूर्च्छन जीवों के उदाहरण-काइ, शैवाल, छत्रक (कुकुरमुक्ता) अनाज के कीड़े, गोबर आदि में उत्पन्न होने वाले कीड़े। देखने में आते हैं कि शीत ऋतु में सेम की लता एवं पत्ते में शाम तक कीड़े नहीं होते हैं परन्तु सुबह होने पर सैकड़ों कीड़े लता एवं पत्ते में हो जाते हैं। यह सब जीव कहाँ से आये? यह सब उसी वातावरण के कारण वहाँ उत्पन्न हो रहे हैं। इसका मतलब यह

नहीं कि उस वातावरण से जीव की उत्पत्ति हुई है परन्तु उस वातावरण में विग्रह गति से अन्य स्थान से आकर जीव जन्म लेते हैं। डार्विन आदि वैज्ञानिक लोग जो रासायनिक प्रक्रिया से जीव की सृष्टि मानते हैं वह सिद्धान्त शरीर की अपेक्षा एवं जन्म की अपेक्षा सत्य होते हुए भी अविद्यमान जीव की उत्पत्ति मानना मिथ्या है। क्योंकि रासायनिक सत्व भौतिक है और शरीर भी भौतिक है इसलिए शरीर की संरचना रासायनिक द्रव्य व परिवर्तन से संभव है परन्तु जीव (आत्मा) अभौतिक, अमूर्तिक, चैतन्य युक्त होने के कारण इसकी उत्पत्ति भौतिक द्रव्य से नहीं हो सकती।

अविरत सम्यग्दृष्टि नाम के चौथे गुणस्थान का स्वरूप

हवइ चउत्थं ठाणं अविरइ सम्मेत्ति णामयं भणियं।

तत्थ हु खइओ भावो खय उवसमिओ समोचेव।।(259)

चौथे गुणस्थान का नाम अविरत सम्यग्दृष्टि है। इस गुणस्थान में क्षायिक भाव होते हैं, क्षायोपशमिक भाव होते हैं और औपशमिक भाव होते हैं।

ए ए तिण्ण वि भावा दंसणमोहं पडुच्च भणिआ हु।

चारित्तं णत्थि जदो अविरिय अंतेसु ठाणेसु।।(260)

इस गुणस्थान में जो तीनों प्रकार के भाव बतलाये हैं वे दर्शन मोहनीय के क्षय, क्षयोपशम और उपशम को लेकर बतलाये हैं। इसका भी कारण यह है कि पहले गुणस्थान से लेकर चौथे गुणस्थान तक चारित्र का सर्वथा अभाव रहता है।

भावार्थ : यद्यपि इस चौथे गुणस्थान में चारित्र मोहनीय का उदय है इसलिये चौथे गुणस्थान वाले औदयिक भाव भी कहे जा सकते हैं परन्तु चौथे गुणस्थान तक चारित्र होता ही नहीं है इसलिये यहाँ पर चारित्र मोहनीय की अपेक्षा ही नहीं रखी है। दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय की अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ इन प्रकृतियों का उपशम होने से उपशम सम्यक्त्व इस गुणस्थान में होता है। इन्हीं प्रकृतियों का क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व होता है और इन्हीं प्रकृतियों का क्षयोपशम होने से क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। इस गुणस्थान में ये तीनों प्रकार के सम्यग्दर्शन हो सकते हैं, इसलिये दर्शन मोहनीय के क्षय क्षयोपशम या उपशम की मुख्यता को लेकर तीनों प्रकार के भाव बतलाये हैं। अनंतानुबंधी कषायों का क्षयोपशमादिक दर्शन

मोहनीय के साथ हो सकता है परन्तु चारित्र मोहनीय की शेष प्रकृतियों का उदय ही रहता है इसलिये इस गुणस्थान में चारित्र मोहनीय की मुख्यता नहीं रखी है। केवल दर्शन मोहनीय को अपेक्षा में ही तीनों प्रकार के भाव बतलाये हैं।

णो इंदिएसु विरओ णो जीवथावरे तसे वावि।

जो सहहइ जिणुत्तं अविइ सम्मोत्ति णायव्वो।।(261)

इस गुणस्थान में रहने वाला जीव न तो इन्द्रियों से विरक्त रहता है न त्रस स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग करता है। वह भगवान् जिनेन्द्र देव के कहे हुए वचनों पर गाढ़ श्रद्धान करता है। इस प्रकार उसके यथार्थ देव शास्त्र गुरु के श्रद्धान करने को अथवा जीवादिक तत्त्वों के यथार्थ श्रद्धान करने को चौथा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते हैं।

भावार्थ : यद्यपि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियों से विरक्त नहीं होता और न त्रस स्थावर जीवों की रक्षा करने का नियम लेता है। तथापि सम्यग्दर्शन के प्रगट होने से उसके संवेग वैराग्य अनुकंपा आदि आगे लिखे हुए गुण प्रगट हो जाते हैं इसलिये त्याग न होने पर भी चित्त में वैराग्य उत्पन्न होने के कारण वह अभक्ष्य भक्षण नहीं करता और अनुकंपा होने के कारण जीवों की हिंसा नहीं करता। यदि वह अभक्ष्य भक्षण करता है और जीवों की हिंसा करता है तो उसके संवेग वैराग्य और अनुकंपा आदि गुण नहीं हो सकते तथा बिना इन गुणों के उसके सम्यग्दर्शन नहीं रह सकता। और बिना सम्यग्दर्शन के यह चौथा गुणस्थान नहीं हो सकता। इसके सिवाय यह भी समझना चाहिये कि अविरत सम्यग्दृष्टि पुरुष देव शास्त्र गुरु का यथार्थ श्रद्धान करता है। भगवान् अरहंत देव के कहे हुए वचनों पर अर्थात् जैन शास्त्रों पर पूर्ण विश्वास करता है। शास्त्रों में अभक्ष्य भक्षण का त्याग और हिंसा का निषेध लिखा ही है, यदि वह शास्त्रों का श्रद्धान करता है तो भी वह अभक्ष्य भक्षण नहीं कर सकता तथा जीवों की हिंसा नहीं कर सकता। वर्तमान समय में बहुत से विद्वान् वा विद्वान् त्यागी शास्त्रों के विरुद्ध उपदेश देते हैं, अयोग्यों को जिन मंदिर में जाने का उपदेश देते हैं, मुनि होकर भी दस्साओं के यहाँ आहार लेते हैं, शास्त्रों में कही हुई भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा की विधि का निषेध करते हैं, अपनी इच्छानुसार ही शास्त्रों में कही हुई पूजा की विधि के प्रतिकूल मनमानी विधि का प्रतिपादन करते हैं, वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था

को मानते नहीं, वर्णसंकर वा जातिसंकर अथवा वीर्यसंकर संतान उत्पन्न करने का उपदेश देते हैं, वे सर्व सम्यग्दृष्टि नहीं कहला सकते, क्योंकि वे भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए वचनों पर श्रद्धान नहीं करते किन्तु उसके विपरीत श्रद्धान करते हैं।

हिंसा रहिए धम्मे अट्टारह दोस वज्जिए देवे।

णिगगंथे पव्वयणो सहहणं होइ सम्मत्तं।।(262)

धर्म वही है जो हिंसा से सर्वथा रहित हो, देव वही है जो अठारह दोषों से रहित हो और गुरु वा मुनि वे ही हैं जो बाह्य-अभ्यन्तर परिग्रहों से रहित सर्वथा निर्ग्रन्थ हो। इस प्रकार देव शास्त्र गुरु का यथार्थ श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कहलाता है।

सम्यग्दर्शन के गुण

संवेओ णिव्वेओ णिद्वा गरुहाइं उवसमो भत्ती।

वच्छल्लं अनुकंपा अट्टागुणा होंति सम्मत्ते।।(263)

संवेग निर्वेद निंदा गर्हा उपशम भक्ति वात्सल्य अनुकंपा ये सम्यग्दर्शन के आठ गुण होते हैं। संसार के दुःखों से भयभीत होने तथा धर्म में अनुराग होना संवेग है, संसार शरीर और भोगों से विरक्तता धारण करना निर्वेद है, अपने किये हुए पापों की निंदा अपने आप करना निंदा है, गुरु के समीप जाकर अपने दोषों का निराकरण करना गर्हा है। क्रोधादिक पच्चीसों कषायों का त्याग करना उपशम है, दर्शन ज्ञान चारित्र और तप का वा इनको धारण करने वालों का विनय करना भक्ति है, व्रतों के धारण करने में अनुराग धारण करने या व्रतियों में अनुराग धारण करना वात्सल्य है, त्रस स्थावर इन छहों प्रकार के जीवों की रक्षा करना, उन पर दया धारण करना अनुकंपा है। सम्यग्दर्शन के ये आठ गुण कहलाते हैं। सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होने पर ये आठ गुण अवश्य प्रगट होते हैं। जिसके ये गुण प्रकट न हो, समझना चाहिये कि उसके सम्यग्दर्शन भी नहीं है।

सम्यग्दर्शन के भेद

दुविहं त्तं पुण भणियं अहवा तिविहं कहंति आयरिया।

अण्णाय अधिगमे वा सहहणं जं पयत्थाणं।।(264)

आचार्यों ने उस सम्यग्दर्शन के दो भेद बतलाये हैं अथवा तीन भेद बतलाये हैं। भगवान् जिनेन्द्र देव के कहे हुए पदार्थों का जो श्रद्धान भगवान् की आज्ञा प्रमाण

कर लिया जाता है, उसको आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं और किसी के उपदेश द्वारा जो पदार्थ का श्रद्धान किया जाता है, उसको अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं। इसके सिवाय सम्यग्दर्शन के निसर्गज और अधिगमज ये भी दो भेद हैं। जो सम्यग्दर्शन बिना किसी उपदेश के प्रगट हो जाता है उसको निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं और जो सम्यग्दर्शन किसी के उपदेश से प्रगट होता है उसको अधिगमज कहते हैं।

अरहंत देव के कहे हुए पदार्थ

तेणुत्त णवपयत्था अण्णे पंचस्थिकाय छह्व्वा।

आणाए अधिगमेण य सद्वहमाणस्स सम्मत्तं।।(278)

भगवान् जिनेन्द्र देव ने नौ पदार्थ बतलाये हैं, पाँच अस्तिकाय बतलाये हैं और छह द्रव्य बतलाये हैं, इन समस्त पदार्थों को जो भगवान् की आज्ञा प्रमाण श्रद्धान करता है अथवा इन सबका स्वरूप जानकर श्रद्धान करता है उस श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं।

भावार्थ : ये सब पदार्थ भगवान् जिनेन्द्र देव ने कहे हैं तथा इनका स्वरूप भी भगवान् जिनेन्द्र देव ने कहा है, भगवान् जिनेन्द्र देव वीतराग सर्वज्ञ है। जो वीतराग सर्वज्ञ होता है वह कभी मिथ्या उपदेश नहीं देता। इस प्रकार भगवान् की आज्ञा जो तत्त्वों का श्रद्धान करता है उसको आज्ञा सम्यक्त्व कहते हैं तथा तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझकर श्रद्धान करता है वह अधिगम सम्यक्त्व है।

सम्यग्दर्शन का और भी स्वरूप...

संकाइदोसरहियं णिस्संकाईगुणज्जुअं परमं।

कम्मणिज्जरणहेउं तं सुद्धं होइ सम्मत्तं।।(279)

जो सम्यग्दर्शन शंका आदि आठ दोषों से रहित होता है और निःशंकित आदि आठ गुणों से सुशोभित होता है उसको परम शुद्ध सम्यग्दर्शन कहते हैं। ऐसा परम शुद्ध सम्यग्दर्शन कर्मों की निर्जरा का कारण होता है।

भावार्थ : शंका, आकांक्षा विचिकित्सा, मूढ़ दृष्टि, अनुपगूहन अस्थिति करण अवात्सल्य और अप्रभावना ये आठ दोष हैं तथा इनके विपरीतका त्याग करने से निःशंकित, निकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना ये आठ गुण प्रगट होते हैं। भगवान् जिनेन्द्रदेव के कहे हुए मोक्ष मार्ग में

वा देव गुरु शास्त्र के स्वरूप में वा तत्त्वों में यह सत्य है वा नहीं इस प्रकार की शंका करना दोष है। तथा ऐसी शंका कभी नहीं करना उस पर अटल श्रद्धान रखना निःशंकित गुण है,

इसको निःशंकित अंग कहते हैं। धर्म सेवन कर वा भगवान् की पूजा कर वा दान देकर किसी प्रकार की इच्छा करना आकांक्षा दोष है तथा ऐसी आकांक्षा न करना निःकांक्षित गुण है। किसी मुनि के मलीन शरीर को देखकर ग्लानि करना विचिकित्सा दोष है और ग्लानि न करना किन्तु उनके गुणों में अनुराग रखना निर्विचिकित्सा गुण है। सब देवों को वा सब साधुओं को मानना मूढदृष्टि दोष है और भगवान् जिनेन्द्र देव के सिवाय किसी को देव नहीं मानना, निर्ग्रन्थ गुरु के सिवाय अन्य किसी को गुरु नहीं मानना, भगवान् जिनेन्द्र देव के वचनों को ही शास्त्र मानना अमूढ दृष्टिगुण है। किसी बालक वा अशक्त पुरुष के द्वारा धर्म कार्य में कोई दोष आ भी जाय तो उसको प्रगट कर देना अनुपगूहन दोष है और प्रगट न करना अपगूहन अंग गुण है। यदि कोई धर्मात्मा अपने कार्यों से श्रद्धान वा चारित्र से गिरता हो, उसे छोड़ता हो तो उसे गिरने देना अस्थितिकरण दोष है और उसको धर्म में लगा देना चारित्र या श्रद्धान से भ्रष्ट न होने देना स्थिति करण गुण व अंग है। धर्मात्मा पुरुषों में रत्नत्रय धारण करने वाले पुरुषों में अनुराग न रखना दोष है और अनुराग रखना वात्सल्य नाम का गुण व अंग है। धर्म की प्रभावना नहीं करना दोष है और धर्म की प्रभावना करना प्रभावना गुण है। इस प्रकार संक्षेप में आठ दोष और आठ गुण बतलाये हैं। ये ही आठ गुण सम्यग्दर्शन के आठ अंग कहलाते हैं।

इसके सिवाय सम्यग्दर्शन में आठ मद तीन मूढता और छह अनायतन ये सत्रह दोष और हैं तथा इनका त्याग सत्रह गुण हो जाते हैं इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष और पच्चीस गुण कहलाते हैं। संक्षेप में इनका स्वरूप इस प्रकार है। ज्ञान का अभिमान करना, अपने बड़प्पन का मद करना, कुल का मद, जाति का मद, बल का मद, ऋद्धि वा विभूतियों का मद करना, तपश्चरण का मद और अपने शरीर का मद करना ये मद दोष हैं तथा इन आठों का मद न करना आठ गुण हो जाते हैं। देव मूढता गुरु मूढता और लोक मूढता ये तीन मूढता है।

कुदेवों की सेवा करना वालू पत्थर के ढेर लगाकर पूजना देव मूढ़ता है, निर्ग्रन्थ मुनियों को छोड़कर अन्य रागी द्वेषी गुरुओं को मानना गुरु मूढ़ता है और नदी समुद्र में नहाना, पर्वत से गिरकर नदी में डूबकर मर जाना, सती होना आदि सब लोक मूढ़ता है।

इन तीनों मूढ़ताओं का त्याग कर देना तीन गुण हो जाते हैं। कुदेव कुशास्त्र और कुगुरुओं को मानना तथा उनकी सेवा करने वालों को मानना छह अनायतन है और इन छहों का त्याग कर देना छह आयतन सम्यग्दर्शन के गुण हो जाते हैं। इस प्रकार सम्यग्दर्शन के पच्चीस दोष और पच्चीस गुण बतलाये हैं।

विरताविरत गुणस्थान का स्वरूप

पंचमयं गुणठाणं विरयाविरत्ति णामयं भणियं।

तत्थवि खयउवसमिओ खाइओ उवसमो चेव।।

भगवान् जिनेन्द्रदेव ने पाँचवें गुणस्थान का नाम विरताविरत बतलाया है। तथा उसमें औपशमिक क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

विरताविरत का अर्थ

जो तसवहाउ विरओ णो विरओ तह य थावरवहाओ।

एक्क समयम्मि जीवो विरयाविरत्ति जिणु कहई।

जो जीव त्रस जीवों की हिंसा त्याग कर देता है और स्थावर जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करता वह जीव ही एक समय में विरत और अविरत या विरताविरत कहलाता है ऐसा भगवान् जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

इलयाइथावराणं अत्थिपवित्ति विरदि इयराणं।

मूलगुणठ्ठ पउत्तो बारह वयभूसिओ हु देसजइ।।

अर्थ : पाँचवें गुणस्थान में रहने वाले विरताविरत जीवों की प्रवृत्ति पृथ्वी जल अग्नि वायु वनस्पति आदि स्थावर जीवों के घात करने में होती है इसलिये वह इन स्थावर जीवों के घात का त्याग नहीं कर सकता शेष त्रस जीवों के घात का त्याग कर देता है इसलिये एक देशविरत अथवा विरताविरत श्रावक कहलाता है वह श्रावक आठों मूलगुणों को धारण करता है और बारह व्रतों से विभूषित रहता है। मद्य का

त्याग, माँस का त्याग, शहद का त्याग, रात्रिभोजन का त्याग, वडफल, पीपलफल, गूलर, पाकर फल, अंजीर फल इन पाँचों उदंबरों का त्याग, प्रतिदिन प्रातःकाल पंच परमेष्ठी को नमस्कार करना, जीवों की दया पालन करना और पानी छान कर पीना ये आठ मूलगुण कहलाते हैं। श्रावकों के लिए इनका पालन करना आवश्यक है।

बारह व्रतों का स्वरूप

हिंसाविरई सच्चं अदत्तपरिवज्जणं च थूलवयं।

परमहिलापरिहारो परिमाणं परिग्गहस्सेव।।

त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना, सत्य बोलना, बिना दिये हुए पदार्थ को कभी ग्रहण न करना, परस्त्री सेवन त्याग और परिग्रह का परिमाण करना ये पाँच अणुव्रत कहलाते हैं।

दिसिविदिसि पच्चखाणं अणत्थदंडाण होइ परिहारो।

भाओपभोयसंखा ए एह गुणव्वया तिणि।।

दिशा विदिशाओं में आने जाने का नियम धारण करना उनकी सीमा नियम कर शेष दिशा विदिशा में आने जाने का त्याग करना, पाँचों अनर्थ दण्डों का त्याग करना, भोगोपभोग पदार्थों की संख्या नियत कर शेष भोगोपभोग पदार्थों का त्याग कर देना ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं।

भावार्थ : चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ, ऊपर नीचे ये दश दिशाएँ कहलाती हैं इनकी सीमा की मर्यादा नियतकर उनके बाहर नहीं जाना चाहिए। पाप रूप कार्यों का उपदेश देना, हिंसा करने के उपकरणों का दान देना, दूसरे का बुरा चिंतन करना मिथ्याशास्त्रों का पढ़ना सुनना और पंच स्थावरों की व्यर्थ हिंसा करना ये पाँच अनर्थ दण्ड कहलाते हैं। इनमें पाप तो अधिक लगता है परन्तु लाभ कुछ नहीं होता। ऐसे इन अनर्थ दण्डों का त्याग कर देना चाहिये। जो एक बार काम में आवे ऐसे भोजनादिक भोग है और जो बार-बार काम आवे ऐसे वस्त्रादिक उपभोग है। इन सब की संख्या नियत कर लेनी चाहिए। ये तीन गुणव्रत कहलाते हैं। इनसे अणुव्रतों के गुण बढ़ते हैं इसलिए इनको गुणव्रत कहते हैं।

देवे थुवइ तियाले पव्वे पव्वे सुपोसहोवासं।

अतिहीण संविभागो मरणंते कुणइ सल्लिहणं।।

प्रातःकाल मध्याह्न काल संध्याकाल इन तीनों समय में परमेष्ठी की स्तुति करना, प्रत्येक महीने को दो अष्टमी दो चतुर्दशी इन चारों पर्वों में प्रोषधोपवास करना, प्रतिदिन अतिथियों को दान देना और सल्लेखना धारण करना ये चार शिक्षाव्रत कहलाते हैं। इस प्रकार पाँच अणुव्रत तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ये बारह अणुव्रत कहलाते हैं। देशव्रती श्रावक को आठ मूलगुण और ये बारह व्रत अवश्य धारण करना चाहिये। इन बारह व्रतों को उत्तरगुण भी कहते हैं।

मित्र कलत्रे विभवे सौख्ये तनुजे गृहे यत्र विहाय मोहं।

संस्मर्यते पंचपदं स्वचित्ते सल्लेखना सा विहिता मुनीन्द्रैः॥

मित्र स्त्री विभूति पुत्र सुख गृह आदि सबसे मोह का त्याग कर अपने हृदय में पंच परमेष्ठी का स्मरण करना सल्लेखना है। ऐसा भगवान् जिनेन्द्र ने कहा है।

मूलगुण

महुमज्जमंस विरई चाओ पुण उयंबराण पंचण्हं।

अठ्ठेदे मूलगुणा हवंति फुडु देश विरयम्मि॥

मद्य मांस मधु का त्याग और पाँच उदंबरों का त्याग ये देशविरतियों के आठ मूलगुण कहलाते हैं।

इस गुणस्थान में होने वाले ध्यान

अट्टरउद्धं झाणं भद्दं अत्थित्ति तम्मि गुणठाणे।

बहु आरंभपरिग्रह जुत्तस्स य णत्थि तं धम्मं।।

इस पाँचवें गुणस्थान में आर्त्तध्यान रौद्रध्यान और भद्रध्यान ये तीन प्रकार के ध्यान होते हैं। इस गुणस्थान वाले जीव के बहुतसा आरंभ होता है और बहुत सा ही परिग्रह होता है इसलिये इस गुणस्थान में धर्मध्यान नहीं होता।

धम्मेदण्ण जीवो असुहं परिचयइ सुहगई लेई।

कालेण सुक्ख मिल्लइ इंदियवलकारणं जाणि।।

धर्म सेवन करने से इस जीव के अशुभ परिणाम और अशुभ गतियाँ आदि नष्ट हो जाती हैं और शुभ गति प्राप्त होती है तथा समयानुसार इन्द्रियों को बल देने वाला सुख प्राप्त होता है।

आर्तध्यान

इद्विओए अट्टं उप्पजइ तह अणिट्ठसंजोए।

रोयपकोवे तइयं णियाण करणे चउत्थं तु।।

किसी इष्ट पदार्थ के वियोग होने पर उसके संयोग का चिंतवन करना पहला आर्तध्यान है।

किसी अनिष्ट पदार्थ के संयोग होने पर उसके वियोग होने का बार-बार चिंतवन करना दूसरा आर्तध्यान है। किसी रोग के प्रकोप होने पर उसको दूर करने के लिए बार-बार चिंतवन करना तीसरा आर्तध्यान है और निदान करना चौथा आर्तध्यान कहलाता है।

अट्टज्झाणपउत्तो बंधइ पावं णिरंतरं जीवो।

मरिण्ण य तिरियगई कोवि णरो जाइ तज्झाणे।।

इस आर्तध्यान के करने से यह जीव निरन्तर पाप कर्मों का बंध करता रहता है तथा कोई-कोई मनुष्य इस आर्तध्यान के करने से तिर्यच गति को प्राप्त करता है।

रुहं कसाय सहियं जीवो संभवइ हिंसयाणंदं।

मोसाणंदं विदियं थेयाणंदं पुणो तइयं।।

हवइ चउत्थं झाणं रुहं णामेण रक्खणाणंदं।

जस्स य माहप्पेण य णरयगई भायणो जीवो।।

जिस जीव की कषायें अत्यन्त तीव्र होती हैं उसके रौद्रध्यान होता है। उस रौद्रध्यान के चार भेद हैं। हिंसा में आनन्द मानना हिंसानन्द रौद्रध्यान है। झूठ बोलने में आनन्द मानना मृषानन्द आर्तध्यान है। चोरी में आनन्द मानना स्तेयानन्द नामक तीसरा आर्तध्यान है तथा बहुत से परिग्रह की रक्षा में आनन्द मानना रक्षणानन्द वा परिग्रहानन्द नाम का चौथा आर्तध्यान है। इन रौद्रध्यान का चिंतवन करने से वह जीव नरक का पात्र होता है।

जिनेज्या पात्रदानादिस्तत्र कालोचितो विधिः।

भद्रज्यानं स्मृतं तद्वि गृहवधर्माश्रयात् वुधैः।।

भगवान् जिनेन्द्रदेव की पूजा करना, पात्रदान देना तथा समयानुसार पूजा और

दान की विधि करना भद्रध्यान कहलाता है। ऐसा ध्यान यथोचित गृहस्थ धर्म में ही होता है। इसलिये विद्वान लोग इसे धर्मध्यान कहते हैं।

गिहवावाररयाणं गेहीणं इंदियत्थ परिकलियं।

अट्टज्झाण जायइ रद्दं वा मोहछण्णाणं।

जो गृहस्थ घर के व्यापार में लगे रहते हैं और इन्द्रियों के विषयभूतपदार्थों में संकल्प विकल्प करते रहते हैं उनके आर्तध्यान होता है तथा जिनके मोहनीय कर्म का तीव्र उदय होता है उनके रौद्रध्यान होता है।

झाणेहिं तेहिं पावं उप्पणं तं खवइ भद्दझाणेण।

जीवो उवसमजुत्तो देसजई णाणसंपण्णो।।

ध्यानै स्तैः पापं उत्पन्नं तत्क्षपयति भद्रध्यानेन।

जीवः उपशम युत्तो देशयतिः ज्ञानसम्पन्नः।।(364)

इन आर्तध्यान और रौद्रध्यान से जो पाप उत्पन्न होता है उसको यह उपशम परिणामों को धारण करने वाला और सम्यग्ज्ञान का धारण करने वाला देशव्रती श्रावक अपने भद्रध्यान से नाश कर देता है।

भद्रध्यान

भद्दस्य लक्खणं पुण धम्मं चिंतेइ भोयपरिमुक्को।

चिंतिय धम्मं सेवइ पुणरवि भोए जहिच्छाए।।

जो जीव भोगों का त्याग करता धर्म का चिंतवन करता है और धर्म का चिंतवन करता हुआ फिर भी अपनी इच्छानुसार भोगों का सेवन करता उसके भद्रध्यान समझना चाहिये।

भावार्थ : भोगों का सेवन करता हुआ भी जो धर्मध्यान करता है उसे भद्रध्यान समझना चाहिये।

धर्मध्यान के भेद

धम्मज्झाणं भणियं आणापायाविवायविचयं च।

संठाणं विचयं तह कहियं झाणं समासेण।।

आज्ञा विचय, अपाय विचय, विपाक विचय और संस्थान विचय ये चार अत्यन्त संक्षेप में धर्मध्यान के भेद हैं।

आगे आज्ञाविचय धर्मध्यान का स्वरूप कहते हैं।

छद्द्वणवपयत्था सत्तवि तच्चाइं जिणवराणाए।

चिंतइ विसयविरत्तो आणा विचयं तु तं भणियं।।

जो मनुष्य इन्द्रियों के विषयों से विरक्त होकर भगवान की आज्ञा प्रमाण छह द्रव्य नौ पदार्थ और सात तत्वों का चिंतवन करता है उसको आज्ञा विचय नाम का पहला धर्मध्यान कहते हैं। आगे अपाय विचय को कहते हैं।

असुहकम्मस्स गासो सुहस्स वा हवेइ केणुवाएणा।

इय चिंतंतस्स हवे अपाय विचयं परं ज्ञाणं।।

अपाय शब्द का अर्थ नाश है। इन अशुभ कर्मों का नाश किस उपाय से होगा अथवा शुभ कर्मों का आस्रव किस उपाय से होगा इस प्रकार जो जीव चिंतवन करता है उसका वह ध्यान अपाय विचय नाम का दूसरा उत्तम धर्मध्यान कहलाता है।

विपाक विचय

असुहसुहस्स विवाओ चिंतइ जीवाण चउगइगयाणं।

विवायविचयं ज्ञाणं भणियं तं जिणवरिंदेहिं।।

चारों गतियों में परिभ्रमण करने वाले जीवों के शुभ कर्मों के उदय को तथा अशुभ कर्मों के उदय का जो चिंतवन करता है उसका वह ध्यान विपाकविचय कहलाता है। ये जीव अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्मों के उदय से ही सुख दुःख भोगते हैं ऐसा चिंतवन करना विपाक विचय नाम का तीसरा धर्मध्यान है।

संस्थान विचय

अह उड्ढतिरियलोए चिंतेइ संपज्जयं ससंठाणं।

विचयं संठाणस्स च भणियं ज्ञाणं समासेणा।।

अध ऊर्ध्वं तिर्यग्लोकं चिन्तयति सपर्ययं संस्थानम्।

विचयं संस्थानस्य च भणितं ध्यानं समासेन।।(370)

संस्थान आकार को कहते हैं। लोक के तीन भाग है अधोलोक, मध्यलोक वा

तिर्यग्लोक और ऊर्ध्व लोक इनका चिंतवन करना तथा इनमें भरे हुए पदार्थों का उनकी पर्यायों का उन सबके आकारों का चिंतवन करना अत्यन्त संक्षेप से संस्थान विचय नाम का चौथा धर्मध्यान कहलाता है।

धर्मध्यान कहाँ होता

मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पमायविरहिए ठाणे।

देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।।

यह धर्मध्यान मुख्यता से प्रमाद रहित सातवें गुणस्थान में होता है तथा देशविरत पाँचवें गुणस्थान में और प्रमत्त संयत छोटे गुणस्थान में भी यह धर्मध्यान उपचार से होता है। ऐसा समझना चाहिये।

दूसरे प्रकार के धर्मध्यान का स्वरूप

दहलक्खणसंजुत्तो अहवा धम्मोत्ति वणिणओ सुत्ते।

चिंता जा तस्स हवे भणियं तं धम्मज्झाणुत्ति।।

अथवा सिद्धान्त सूत्रों में उत्तमक्षमा आदि दश प्रकार का धर्म बतलाया है उन दशों प्रकार के धर्मों का चिंतवन करना भी धर्म्य ध्यान कहलाता है।

अहवा वत्थुसहावो धम्मं वत्थू पुणो व सो अप्पा।

झायंताणं कहियं धम्मज्झाणं मुणिदेहिं।।

वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं तथा वस्तुओं में वा पदार्थों में मुख्य वस्तु वा मुख्य पदार्थ आत्मा है।

इसलिये उस आत्मा का ध्यान करना और उसके शुद्ध स्वरूप का ध्यान करना धर्म्यध्यान है। ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है।

धर्म्यध्यान के दूसरे प्रकार के भेद

तुं फुडु दुविहं भणियं सालवं तह पुणो अणालवं।

सालवं पंचणहं परमेंट्ठीणं सरूवं तु।।

वह धर्म्यध्यान दो प्रकार है एक आलंबन सहित और दूसरा आलंबन रहित। इन दोनों में से पंच परमेष्ठी के स्वरूप का चिंतवन करना उसको सालम्ब ध्यान कहते हैं।

पूजादि सम्बन्धी शोधपूर्ण कविता
पूज्य के गुण प्राप्ति हेतु पूजा अन्यथा याचना
(पूजा से सांसारिक लाभ, धन, नाम चाहना भिखारीपना
न कि भक्त के गुण)

[चाल : आत्मशक्ति.../क्या मिलिए.../भातुकली.../सायोनारा....]

“वन्देतद्गुणलब्धये” हेतु, होती है पूजा, अर्चना।

तीर्थयात्रा से ले प्रतिष्ठा, विधान, आरती, प्रार्थना।।

पूज्य होते आध्यात्मिक गुणयुक्त जिससे मिले मोक्ष।

अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु परमेष्ठी पंच।।(1)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्ययुक्त, होते हैं पंचपरमेष्ठी।

आत्मविशुद्धि समता शान्ति, निस्पृहता, आदि आत्मशक्ति।।

उक्तगुणों की उपलब्धि हेतु, होती पूजा से ले प्रार्थना।

इससे होती आत्माविशुद्धि, जिससे सातिशयपुण्य बन्ध।।(2)

इससे अशुभभाव होते दूर, जिससे पाप होते क्षीण।

जिससे होता आत्मविकास, जो सभी विकास का मूल।।

ख्यातिपूजालाभप्रसिद्धि बोली, वर्चस्व हेतु न होती भावना।

धनजनमानसम्मानसत्ता, सम्पत्ति आदि की न कामना।।(3)

यदि ख्याति आदि के हेतु, होती पूजा से ले प्रार्थना।

वे नहीं है यथार्थ से पूजा, वे व्यापार से ले याचना।।

इससे न होती आत्मविशुद्धि, जिससे न बन्धे सातिशयपुण्य।

भले पापानुबन्धीपुण्य हो, किन्तु न होता आत्मविकास।।(4)

भले पापानुबन्धीपुण्य से, थोड़ा मिले सांसारिक वैभव।

भूतप्रेतादि नीच देव बने, तथा संसार में ही होता भ्रमण।।

पुण्यानुबन्धी पुण्य से बनते, राजा से ले चक्री से इन्द्र।

गणधर तीर्थकर बनकर, अन्त में पाते विमोक्ष॥(5)

पापानुबन्धीपुण्य से प्राप्त, भोगों में लीन होते जीव।

दयादानसेवापूजापरोपकार से, रहित दूषित भाव।।

पुण्यानुबन्धी पुण्य प्राप्त भोगों में, लीन न होते हैं जीव।

दानदयासेवापूजापरोपकार से, सहित प्रशस्त भाव॥(6)

पापानुबन्धीपुण्य मानो, फूल तोड़कर भोग करना।

पुण्यानुबन्धीपुण्य मानो, पक्वफलों का भोग करना॥

पूज्य बनने हेतु पूजा, पूजक बनो न बनो भिखारी।

जिनगुण सम्पत्ति प्राप्ति हेतु, पूजा करे 'कनकसूरी'॥(7)

नन्दौड़, दि. 15.11. 019, रात्रि : 12.27

सन्दर्भ

पूजा-फल

अरहन्तादि पंचपरमेष्ठी या नव देवता यथायोग्य राग-द्वेष से रहित होने के कारण वे पूजा आदि से प्रसन्न होकर वर प्रदान नहीं करते हैं तथा निन्दा अवमानना आदि से अभिशाप नहीं देते हैं। तब स्वाभाविक प्रश्न होता है कि यदि वे प्रसन्न होकर या रूष्ट होकर हमारा कुछ लाभ-हानि नहीं करते हैं तो उनकी अर्चना से क्या लाभ है? इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर समन्तभद्र स्वामी के वचन में निम्न प्रकार है :-

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरै।

तथापि ते पुण्य गुण स्मृतिर्नः पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः॥(57)

हे जिनेन्द्र भगवान्! आप वीतरागी होने के कारण आपको पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है तथा निन्दा करने वालों से आपका किसी प्रकार का वैरत्व नहीं है तथापि आपके पुण्य श्लोक, गुणों के स्मरण मात्र से चित्त पवित्र हो जाता है एवं पाप रूपी कलंक दूर हो जाते हैं।

परिणत दशा में बाह्य शुभाशुभ द्रव्यों का परिणाम जीवों पर भी शुभाशुभ रूप से पड़ता है जैसे स्वच्छ स्फटिक मणि विभिन्न रंग की संगति से विभिन्न रूप से परिणत करता है, जैसे लौह खण्ड चुम्बक के घर्षण से चुम्बक रूप परिणगमन कर लेता है,

बुझा हुआ दीप प्रज्वलित दीपक की संगति से प्रज्वलित हो जाता है, वीर पुरुषों के फोटों देखने से उनकी जीवनगाथा सुनने से, स्मरण करने से अन्तरंग में वीरत्व भाव जागृत होता है कामी पुरुष द्वारा अश्लिल चित्र, संगीत, सिनेमा, नाटक देखने से तथा तद्विषयक पुस्तक पढ़ने से, स्मरण करने से उसके मन में काम चेतना जागृत होती है। महापुरुष, धर्मात्मा पुरुष, वीतराग पुरुष की मूर्ति देखने से, उनके गुणगान करने से, उनकी स्तुति करने से, मन में भी उनके आदर्श गुण जागृत हो जाते हैं। यह ही मनोवैज्ञानिक अनुभवगम्य सिद्धान्त पूजा-अर्चना-स्तुति में निहित है। पूज्य पुरुष पूजक के लिए आदर्श (दर्पण) के समान होते हैं। जैसे-स्वमुख को देखने की इच्छा रखने वाला स्वच्छ दर्पण को देखता है उसी प्रकार स्वात्मा गुणों को देखने के इच्छुक आदर्श पुरुष का दर्शन करता है।

आचार्य-कुंदकुंद स्वामी ने प्रवचन सार में स्वआत्मद्रव्य परिज्ञान का उपाय बताते हुए वर्णन किया है:-

जो जाणदि अरहंत दव्वत्तगुणत्त पञ्जयत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं।।(80)

जो अरहंत भगवान् को द्रव्य-दृष्टि, गुण-दृष्टि, पर्यायदृष्टि से जानता है वह स्वआत्मद्रव्य को जानता है और उसका मोह विलय हो जाता है। भक्त जब भगवान् के पास जाता है तब वह भगवान् के स्वरूप रूपी दर्पण से अपने स्वरूप का दर्शन करता है जब वह द्रव्य दृष्टि से स्वयं को एवं भगवान् को देखता है तब दोनों में कोई अंतर दृष्टिगोचर नहीं होता है क्योंकि पूज्य भी जीव द्रव्य है तथा पूजक भी जीव द्रव्य है। गुण दृष्टि से भी कोई विशेष अंतर परिलक्षित नहीं होता है किन्तु जब पर्याय दृष्टि से अवलोकन करता है तब दोनों में महान् अन्तर परिलक्षित होता है क्योंकि भगवान्, पर्याय दृष्टि से अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य के अक्षय भण्डार है एवं पूजक स्वयं अनन्त अज्ञान, दुखादि को भोगने वाला है।

इंग्लिश में एक नीतिवाक्य है :-

There is no difference between God and us.

But there is so difference between God and us.

अर्थात् द्रव्यदृष्टि से भगवान् और हमारे में कोई अन्तर नहीं है किन्तु अवस्था दृष्टि (पर्याप्त दृष्टि) से भगवान् और हमारे में महान् अंतर है। भक्त भगवान् के पास

एक अलौकिक उपादेय प्रशस्त स्वार्थ को लेकर जाता है। उसका स्वार्थ यह है कि मेरा भगवत् स्वरूप होते हुए भी मैं अभी दीन-हीन भिखारी के समान हूँ। मैं भगवान् के पास जाकर उनसे वही शिक्षा प्राप्त करूँगा जिस मार्ग पर चलते हुए भगवान् ने इस परमोत्कृष्ट नित्यानन्द अवस्था को प्राप्त किया है। इसीलिए भक्त की आद्यन्त भावना एवं परिणति निम्न प्रकार की होती है-

दासोऽहं रटता प्रभो आया जब तुम पास।

“द” दर्शत हट गयो, “सोऽहं रहो प्रकाश”।।

सोऽहं सोऽहं ध्यावतो रह न सको सकार।

दीप “अहं” मय हो गयो अविनाशी अविकार।।

जब भक्त भगवान् के पास आता है तब वह स्वयं को दास (पूजक) एवं भगवान् को प्रभु (पूज्य) मानता है। जब भगवान् का दर्शन करके भगवान् का स्वरूप एवं स्व-स्वरूप का तुलनात्मक विश्लेषण करता है, जब वह पूज्य के गुणों का अनुकरण करके आध्यात्मिक साधना करता है तो उस साधना के फलस्वरूप निर्विकल्प अवस्था को प्राप्त करता है तब सोअहं रूप विकल्प भी विलय हो जाता है, तब अहं रूप अविनाशी, अविकार स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। यह ही पूजा का परमोत्कृष्ट फल है। आचार्य प्रवर उमास्वामी ने कहा है-“वन्दे तद्गुणलब्धये” अर्थात् मैं वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, भगवान् को उनके गुणों की प्राप्ति के लिए वन्दना करता हूँ।

पूजा, वंदना, अर्चना, विनय, समर्पित भाव में ऐसी एक शक्ति है जिससे पूजक के मन में पूज्य के गुण संचार करते जाते हैं तथा धीरे-धीरे पूजक भी पूज्य बन जाता है। विद्वद्वर श्री आशाधर जी ने अध्यात्म रहस्य के मंगलाचरण में कहा है:-

भव्येभ्यो भजमानेभ्यो यो ददाति निजपदम्।

तस्मै श्री वीरनाथाय नमः श्री गौतमाय च।।

जो भजमान भव्यों को भक्ति में अनुरक्त सुपात्र भव्य जीवों को अपना पद प्रदान करते हैं-जिनके भजन आराधन से भव्य प्राणियों को उन जैसे पद की प्राप्ति होती है-उन श्री वीर स्वामी को अक्षय ज्ञान लक्ष्मी एवं भारती विभूतिरूप “श्री” से सम्पन्न भगवान् महावीर को तथा श्री गौतम स्वामी को नमस्कार हो।

वीतराग सर्वज्ञ भगवान् के पास जो गुण होते हैं वे ही गुण पूजक को देते हैं। भगवान् के पास स्वरूप को छोड़कर और कुछ उनके पास है ही नहीं। इसलिये वे भक्त को स्व-स्वरूप ही दे देते हैं। पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।

ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्ध मिदं वचः॥

आत्मज्ञान से शून्य अज्ञानियों की सेवा उपासना अज्ञान को देती है और ज्ञानियों की सेवा उपासना ज्ञान उत्पन्न करती है क्योंकि यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि जिस मनुष्य के पास जो कुछ होता है उसी को वह देता है।

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः।

वर्त्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशीः॥(97)

अपने आत्मा से भिन्न अर्हन्त, सिद्ध परमात्मा की उपासना-आराधना करके आत्मा उनके समान परमात्मा बन जाती है। जैसे-दीपक से भिन्न बत्ती दीपक की उपासना करके यानी-साथ रहकर दीपक के समान प्रकाशमान बन जाती है।

येन भावेन यद्रूपं ध्यायेत्तत्मानमात्मवित्।

तेन तन्मयता याति सोपधिः स्फटिको यथा॥

जिस भाव से जिस प्रकार यह आत्मा का ध्यान करता है वह उस स्वरूप हो जाता है जैसे-स्फटिक मणि विभिन्न रंगों के सम्पर्क से उस वर्ण रूप परिणमन करता है।

परिणमते येनात्मा भावेन स तेन तन्मयो भवति।

अर्हत्ध्यानाविष्टो भवार्हन् स्यात् स्वयं तस्मात्॥

यह आत्मा जिस भाव से परिणमन करता है वह उस स्वरूप हो जाता है।

अर्हत् के ध्यान सहित ध्याता स्वयं अर्हत् रूप हो जाता है।

जिनाचरणा से बहुआयामी लाभ होता है। इससे महान् आत्मा के प्रति विनय भाव प्रकट होता है।

मानसिक शान्ति मिलती है जिससे मानसिक तनाव दूर होने के कारण शारीरिक एवं मानसिक आरोग्य प्राप्त होता है। पूज्य पुरुषप्रति प्रशस्त राग होने के कारण पाप कर्म के संवर के साथ-साथ असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा एवं सातिशय पुण्य बन्ध होता है। जिससे अभ्युदय के साथ-साथ अन्त में मोक्ष सुख की उपलब्धि होती है।

पूज्य पुरुष का नामोच्चारण, गुणगान, नामस्मरण स्वयं मंगल स्वरूप है। वीरसेन स्वामी ने धवला में तथा यति वृषभाचार्य ने तिलोयपण्णत्ति में मंगल का विस्तृत वर्णन करते हुए निम्न प्रकार कहा है:-

पुण्ण पूदपवित्ता पसत्थ सिवभद्धसेग कल्लाणा।

सुहसोक्खादी सव्वेणिद्धिट्ठा मंगलस्स पञ्जाया।।(8)

पुण्य, पूत, पवित्र, प्रशस्त, शिव, भद्र, क्षेम, कल्याण, शुभ और सौख्य इत्यादि सब मंगल के ही पर्याय अर्थात् समानार्थक शब्द कहे गये हैं।

गालयदि विणासयदेघादेदि देहदि हंति सोधयदे।

विध्दंसेदि मलाई जम्हा तम्हा य मंगलं भणिदं।।(9)

क्योंकि यह पाप-या मलों को गलाता है, विनष्ट करता है, घातता है, दहन करता है, हनता है, शुद्ध करता है और विध्वंस करता है इसीलिए इसे मंगल कहा गया है।

शुभःशुभानुबन्धीति बन्धच्छेदाय जायते।

पारंपर्येण यो बन्धः स प्रबन्धाद्विधीयते।।(54) (धर्मरत्नाकर)

अर्थ : शुभ भाव से शुभानुबन्धी होता है और शुभानुबन्धी परम्परा से बन्ध छेद के लिये कारण हो जाता है। इसलिए शुभानुबन्धी कर्म को प्रचुर रूप से करना चाहिये।

विशेषार्थ : शरीर में काँटा घुसने के बाद उस काँटे को निकालने के लिये एक सुदृढ़ काँटा चाहिये, शरीर स्थित काँटे को जब तक नहीं निकालते तब तक इस सुदृढ़ काँटे की परम आवश्यकता है। शरीर स्थित काँटा निकालने के बाद उस सुदृढ़ काँटे की आवश्यकता स्वयमेव नहीं रहती, उसी प्रकार कर्म देह स्थित पाप कर्म को निकालने के लिए सुदृढ़ पुण्यरूपी काँटा चाहिये, पापरूपी काँटा निकालने के बाद पुण्यरूपी काँटे की आवश्यकता स्वयमेव हट जाती है। जैसे-मलिन वस्तु के संपर्क से वस्त्र अस्वच्छ हो जाता है। उस अस्वच्छता को हटाने के लिए पानी, साबुन, टिनोपॉल चाहिये। पानी और साबुन के प्रयोग से जब वस्त्र स्वच्छ हो जाता है तब उस वस्त्र पर लगे हुए साबुन को स्वच्छ पानी से धोकर निकाल देते हैं। वस्त्र से साबुन और पानी अलग वस्तु है (परद्रव्य है)। तो भी बिना पानी और साबुन के मलीन वस्त्र स्वच्छ नहीं होता है। परन्तु स्वच्छ होने के बाद साबुन और पानी की

आवश्यकता नहीं रहती है। मलीन अवस्था में टीनोपॉल वस्त्र को लगाने पर उसमें चमक नहीं आ सकती है। इसी प्रकार आत्मा को स्वच्छ करने के लिए शुभभावरूपी पानी और पुण्यरूपी साबुन चाहिये। इसके माध्यम से मलीन पापात्मा का पवित्र पुण्यात्मा होने के बाद शुक्लध्यानरूपी टीनोपॉल से उसको केवलज्ञान रूपी प्रकाश से चमकाना चाहिये। जब तक आत्मा को शुभ भाव और पुण्य से स्वच्छ नहीं करते तब तक शुक्लध्यान रूपी टीनोपॉल का किसी प्रकार परिणाम नहीं हो सकता है। वस्त्र स्वच्छ होने के बाद उस वस्त्र में स्थित पानी को भी निकाल देते हैं। इसी प्रकार अयोग केवली 14वें गुणस्थान की अवस्था में व्युपरत क्रियानिवृत्ति रूपी परम शुक्ल ध्यान से पुण्यरूपी कण को भी सुखाकर पृथक् करना चाहिये तब जाकर आत्मा निरंजन निष्कलंक होता है।

अहो पुण्यवन्ता पुंसां कष्टं चापि सुखायते।

तस्माद्भव्यैः प्रयत्नेन कार्यं पुण्यं जिनोदितः।।

अर्थ : अहो आश्चर्य की बात है कि पुण्यवान् के लिये कष्ट भी सुखकर हो जाता है, इसलिए हे भव्य! जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित पुण्य को तुम प्रयत्नपूर्वक करो।

यस्य पुण्यं च पापं च निष्फलं गलति स्वयम्।

स योगी तस्य निर्वाणं तस्य पुनरास्रवः।।(246)

अर्थ : जिनका कर्म उदय में आकर भी बिना फल दिये खिर जाता है वह योगी है। वह परम वीतरागी होता है। परम वीतरागी मुनि उग्र तप के माध्यम से भविष्य में उदय में आने योग्य कर्म को गला देता है। उसी प्रकार मुनीश्वरों को नवीन आस्रव या बन्ध नहीं होता है। उस परम वीतरागी मुनीश्वरों के पाप एवं पुण्य स्वयमेव निष्फल होकर खिर जाते हैं और उनको नवीन कर्मास्रव बन्ध नहीं होता है। उन्हीं को परम निर्वाण की प्राप्ति होती है।

असुहाण पयडीणं अणंत भागा रस्सस खंडाणि।

सुहपयडीणं णियमा णत्थि त्ति रसस्स खण्डाणि।।(80)

अर्थ : अप्रशस्त अर्थात् पाप प्रकृतियों के अनंत बहुभाग का घात नियम से होता है क्योंकि विशुद्धि के कारण प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग उत्तरोत्तर वृद्धि को

प्राप्त होता है परन्तु घात नहीं होता है। तथा विशुद्धि के कारण पाप प्रकृतियों का अनुभाग उत्तरोत्तर ह्रास को प्राप्त होता है परन्तु वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है।

पढमापुव्वरसादो चरिमे समये पसत्थइदराणां।

रससतमणंत गुण अणंतगुण हीणयं होदि।।(82)

अर्थ : अपूर्व करण में प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि के कारण प्रशस्त प्रकृतियों का अनंतगुणा बढ़ता अनुभाग सत्व है। तथा विशुद्धि के कारण अनुभाग काण्डक घात के महत्त्व से अप्रशस्त प्रकृतियों का अनन्तवाँ भाग सत्व चरम समय में होता है। इस प्रकार अधःकरण के प्रथम समय संबंधी प्रशस्त प्रकृतियों का जो अनुभाग सत्व है उससे अधःकरण के चरम समय में प्रशस्त प्रकृतियों का अनुभाग सत्व अपूर्वकरण के प्रथम समय में जितना है उससे अनंतगुणा हीन अपूर्णकरण के चरम समय में है।

इससे सिद्ध होता है कि आत्म विशुद्धि से पुण्य कर्म चौदहवाँ गुणस्थान के नीचे नाश नहीं होते हैं परन्तु वृद्धि को प्राप्त होते हैं। तथा पाप कर्म आत्म विशुद्धि से नाश होता है किन्तु वृद्धि को प्राप्त नहीं होता है। (लब्धि सार)

विशेषार्थ : चतुर्थ गुणस्थान से आगे उत्तरोत्तर पापकर्म का संवर और निर्जरा की वृद्धि हो जाती है। और पुण्य कर्म का आस्रव और बन्ध उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होता है। इस प्रकार क्रिया सकषाय गुणस्थान तक (10वें गुणस्थान तक) चलती रहती है। क्षीणकषाय आदि गुणस्थान में पुण्यास्रव होता है फिर भी बन्ध नहीं होता है परन्तु पुण्य कर्म तेरहवें गुणस्थान तक नष्ट नहीं होता है किन्तु बढ़ता ही रहता है। परन्तु परम योगी शैलेश अवस्था को प्राप्त अयोगी केवली गुणस्थान के चरम समय और द्विचरम समय में संपूर्ण पुण्य और पाप कर्मों का समूल विनाश हो जाता है। पाप प्रकृति की यथायोग्य द्वितीयादि गुणस्थान में संवर एवं निर्जरा होती है। परन्तु विशिष्ट पुण्य कर्मों का संवर निर्जरा 14वें गुणस्थान के नीचे होती नहीं है। परन्तु उत्तरोत्तर गुणस्थान में अनुभाग शक्ति बढ़ती जाती है। परन्तु परिनिर्वाण के पूर्ववर्ती समय में संपूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।

किनके पुण्य हेय है?

पुण्णेण होइ विहवो विहवेण होई मइ-मोहो।

मइ मोहेण य पाव ता पुण्णं अम्ह मा होड।।(60)

अर्थ : पुण्य से घर में धन होता है और धन से अभिमान, मान से बुद्धि भ्रम होता है। बुद्धि में भ्रम होने से (अविवेक से) पाप होता है। इसलिए ऐसा पुण्य हमारा न हो।

“सत्यं वाचि मतौ श्रुतं हृदि दया शौर्यं भुजे विक्रमे”।

लक्ष्मीर्दानमनूनमर्थिनिचये मार्गे गतिनिर्वृते: ॥

प्राग्जनीहं तेऽपि निरहंकाराः श्रुतेर्गोचराश्चित्रं संप्रति।

लेशतोऽपि न गुणास्तेषां तथाप्युद्धताः ॥ (60)

भेदाभेद रत्नत्रय की आराधना से रहित देखें, सुने अनुभवे भोगों की वांछारूप निदान बन्ध के परिणामों से सहित जो मिथ्यादृष्टि संसारी अज्ञानी जीव हैं। उससे पहले उपार्जन किये भोगों की वांछारूप पुण्य उसके फल से प्राप्त हुई घर में सम्पदा होने से अभिमान (घमण्ड) होता है, अभिमान से बुद्धिभ्रष्ट होती है, बुद्धि भ्रष्ट कर पाप कमाता है और पाप से भव-भव में अनंत दुःख पाता है। इसलिये मिथ्यादृष्टियों का पुण्य, पाप का ही कारण है। जो सम्यक्त्वादिगुणसहित भरत, राम, पाण्डवादिक विवेकी जीव है उनको पुण्य बन्ध अभिमान उत्पन्न नहीं करता, परम्परा से मोक्ष का कारण है। जैसे-अज्ञानियों को पुण्य का फल विभूति गर्व कारण है, वैसे सम्यग्दृष्टियों के नहीं हैं। वे सम्यग्दृष्टि पुण्य के पात्र हुये चक्रवर्ती आदि की विभूति पाकर मद अहंकार आदि विकल्पों को छोड़कर मोक्ष को गये अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीव चक्रवर्ती बलभद्र पद में भी निरहंकार रहे। ऐसा ही कथन आत्मानुशासन ग्रंथ में श्री गुणभद्राचार्य ने किया है कि पहले समय में ऐसे सत्पुरुष हो गये हैं जिनके वचन में सत्य बुद्धि में शास्त्र मन में दया, पराक्रम रूप भुजाओं में शूरवीरता, याचकों को पूर्ण लक्ष्मी का दान और मोक्षमार्ग में गमन है। वे निराभिमानी हुए जिनको किसी गुण का अहंकार नहीं हुआ। उनके नाम शास्त्रों में प्रसिद्ध है। परन्तु अब बड़ा अचम्भा है कि इस पंचमकाल में लेश मात्र भी गुण नहीं है तो भी उद्धतपना है, यानी गुण तो रंच मात्र भी नहीं और अभिमान में बुद्धि रहती है। (परमात्म प्रकाश)

पाप भी उपादेय है।

वर जिय पावड़ सुन्दरड़ णावड़ ताई भणांति।

जीवहँ दुक्खड़ जाणिवि लहु सिवमड़ जाई कुणाति ॥ (56)

अर्थ : आगे जिस पाप के फल से यह जीव नरकादि में दुःख पाकर उस दुःख

को दूर करने के लिये सन्मुख होता है, वह पाप का फल भी श्रेष्ठ (प्रशंसा योग्य) ही है। ऐसा दिखलाते हैं।

हे जीव ! जो पाप के उदय से जीव को दुःख देकर शीघ्र ही मोक्ष के जाने योग्य उपायों में बुद्धिकर दे तो वे पाप भी बहुत अच्छे हैं, ज्ञानी ऐसा कहते हैं।

कोई जीव पाप करके नरक में गया वहाँ पर महान् दुःख भोग उससे कोई समय किसी भी जीव के सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है क्योंकि उस जगह सम्यक्त्व की प्राप्ति के तीन कारण हैं। पहला तो यह है कि तीसरे नरक तक देवता उसे संबोधन को (चेतावने को) जाते हैं। कभी कोई जीव को धर्म सुनने से सम्यक्त्व उत्पन्न हो जावे, दूसरा कारण-पूर्व भव का स्मरण और तीसरा नरक की पीड़ाकारी दुःख से दुःखी होना, नरक को महान् दुःख का स्थान जानकर नरक के कारण जो हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह और आरम्भादिक हैं उनको खराब जान के पाप से उदास होना।

तीसरे नरक तक ये तीन कारण हैं। आगे के चौथे, पाँचवें, छठवें, सातवें नरक में देवों का गमन न होने से धर्मश्रवण तो है ही नहीं लेकिन जातिस्मरण है तथा वेदना कर दुःख हो के पाप से भयभीत होना वे दो ही कारण हैं। इन कारणों को पाकर किसी जीव के सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है। इस नय से कोई भव्य जीव पाप के उदय से खोटी गति में गया वहाँ जाकर यदि सुलट जावे तथा सम्यक्त्व पावे तो वह कुगति भी श्रेष्ठ है। यही योगीन्द्राचार्य ने मूल में कहा है जो पाप जीवों को दुःख प्राप्त करा करके फिर शीघ्र ही मोक्षमार्ग में बुद्धि को लगावें, तो वे अशुभ भी अच्छे हैं। तथा जो अज्ञानी जीव किसी समय अज्ञान तप से देव भी हुआ और देव से मरकर एकेन्द्रिय हुआ तो वह देवपना किस काम का? अज्ञानी का देवपना भी वृथा है। जो कभी ज्ञान के प्रसाद से उत्कृष्ट देव हो के बहुत काल तक सुख भोग के देव से मनुष्य होकर मुनिव्रत धारण करके मोक्ष को पावे तो वह भी अच्छा है।

ज्ञानी पुरुष उन पापियों को भी श्रेष्ठ कहते हैं, जो पाप के प्रभाव से दुःख भोगकर उस दुःख से डर के दुःख के मूल कारण पाप को जानके उस पाप से उदास होवे, वे प्रशंसा करने योग्य हैं और पापी जीव प्रशंसा के योग्य नहीं हैं। क्योंकि पाप क्रिया हमेशा निन्दनीय है। भेदाभेदरत्नत्रय स्वरूप श्री वीतराग देव के धर्म को जो धारण करते हैं तब भी ठीक, क्योंकि शास्त्र का वचन है कोई महाभाग दुःख हुए ही धर्म में लवलीन होते हैं। (परमात्म प्रकाश)

दुःख में सुमिरन सब करै, सुख में करे न होय।

जो सुख में सुमिरन करे, दुःख काहे को होय।।

अर्थ : साधारण संसारी जीव दुःख के समय में धर्म का आचरण करता है। परन्तु धर्म के कारण किंचित् सुख प्राप्त होने से धर्म को ही भूल जाता है। पापादिक क्रियाओं में लग जाता है, तब पुनः दुःख प्राप्त होता है। यदि जीव सुख के समय में भी धर्म आचरण करने लगेगा तो कभी भी दुःख नहीं होगा।

कृत्वा धर्मविघातं विषयासुखान्यनुभवन्ति ये मोहात्।

आच्छिद्य तरुन् मूलात् फलानि गृणान्ति ते पापाः।।(24)

अर्थ : जो मोही कामअंधा, विषयासक्त, जीव अज्ञानता से धर्म को नष्ट करके विषय सुखों का अनुभव करते हैं वे पापी वृक्ष को जड़ से उखाड़करफल को ग्रहण करना चाहते हैं। अर्थात् पूर्व पुण्य कर्म के उदय से जो कुछ वैभव मिला है उस वैभव में लीन होकर जो केवल भोगासक्त होता है वह पूर्व उपार्जित पुण्य को पूर्णरूप से भोग करता है। परन्तु नवीन पूर्याजन नहीं करता जिससे पाप ही पाप उसके पल्ले में रहता है। उससे वह नरक निगोद में जाता है। इसलिये पूर्वार्जित पुण्य से वैभव मिला उसको बिना त्यागे भोग करने से उस पुण्य से उसकी दुर्गति हुई इस प्रकार से पुण्य हेय हैं। (आत्मानुशासन)

मिथ्यादृष्टि को पापानुबन्धी पुण्य से जो वैभव की प्राप्ति होती है उस वैभव में मिथ्यादृष्टि लीन होकर आसक्तिपूर्वक भोग करता है किन्तु त्याग नहीं करता उसका वैभव अर्थात् पुण्य फल संसार का कारण है। इसलिये उसका पुण्य कर्म उसका वैभव अर्थात् पुण्य फल संसार का कारण है। उसका पुण्य कर्म परम्परा से मोक्ष का कारण नहीं है। किन्तु संसार का कारण होता है अर्थात् पुण्य फल रूप वैभव को प्राप्त कर जो आसक्तिपूर्वक भोगता है वह मिथ्यादृष्टि है। रागी बहिरात्मा है। सम्यग्दृष्टि का पुण्य ही पुण्यानुबन्धी पुण्य है, सम्यग्दृष्टि पुण्यरूप वैभव को प्राप्त कर उसमें आसक्तिपूर्वक लीन नहीं होता है। वह सोचता है, जानता है, मानता है कि वैभव मेरे आत्म स्वरूप से पृथक् है पुण्य कर्म का फल है कुछ चारित्र कर्म के उदय से आत्मिक शक्ति अभाव से रोगी जैसे तित्त औषध सेवन करता है। अनासक्तपूर्वक उसी प्रकार वह सम्यग्दृष्टि

भोग को रोग मानकर निरुपाय होकर अनासक्तपूर्वक भोगता है। वह अनासक्तपूर्वक भोगते हुए कर्म को बाँधता ही है परन्तु जितने अंश में अनासक्त भाव है उतने अंश में कर्म बन्ध नहीं होता है। परन्तु अंतरंग में सतत भोगों की निन्दा गर्हा करते हुए उन भोगों से छूटने के लिए रास्ता ढूँढ़ता रहता है।

जब तक जीव सम्पूर्ण भोग, आरंभ, परिग्रहों से विरक्त नहीं हो पाता है तब तक स्वशक्ति के अनुसार दान, पूजा, गुरु सेवादि करते हुए पूर्व पुण्य का सदुपयोग करता है और अंत में समस्त अंतरंग-बहिरंग परिग्रह को त्याग कर निर्ग्रथ होकर व्यवहार-निश्चय रत्नत्रय का साधन कर मोक्ष पदवी को प्राप्त करता है। इसलिये सम्यग्दृष्टि का पुण्य परम्परा से मोक्ष का कारण है तथा मिथ्यादृष्टि का पुण्य परम्परा से संसार का कारण है।

“आर्त नरा धर्मपरा भवन्ति” पाप कर्म के उदय से जीव को जब कष्ट उठाना पड़ता है उस समय में वह पाप कर्मों का स्वरूप समझकर पाप से निवृत्त होकर धर्म में लगता है। जैसे नरक में तीव्र वेदना का अनुभव कर नारकी पाप फलों का चिंतवन करके सम्यग्दृष्टि हो जाता है, इसी प्रकार जीव पापकर्म के फल से संतप्त होकर पाप से डरकर अधर्म छोड़कर धर्म करने लगता है। इसलिये संसार में विरक्त होने के लिये एवं धर्म में प्रवृत्ति होने के लिये पापकर्म भी निमित्त है अर्थात् जिस पाप फल से दुःखों से, संताप से, संकटों से जीव भयभीत होकर धर्म में लगते हैं वह पाप भी उपादेय है। इसलिये भव्य जीवों को संबोधन करते हुए आचार्यों ने प्रेरणा दी है।

“सुखितस्य दुःखितस्य च संसारे धर्म एव तव कार्य।

सुखितस्यतभ्दिवृद्धयैदुःखभुजस्तदुपघाताय॥(18)

अर्थ : हे जीव! तू चाहे सुख का अनुभव कर रहा हो, चाहे दुःख का अनुभव कर रहा हो, किन्तु संसार में इन दोनों ही अवस्था में एक मात्र कार्य धर्म ही होना चाहिये। कारण यह है कि वह धर्म यदि तू सुख का अनुभव कर रहा है तो तेरे उस सुख का कारण होगा और यदि तू दुःख का अनुभव कर रहा है तो वह धर्म तेरे उस दुःख के विनाश का कारण होगा।

न्याय V/s अन्याय

विनाशनाय साधुनां परित्राणाय च दुष्कृतानाम्!?

(किसान पराली जलाकर दूसरों को नहीं मार सकते, हमें उनसे सहानुभूति नहीं-सुप्रीम कोर्ट)

(किन्तु बुचड़खाना, मद्य बनाना, अफीम-तम्बाकु हेतु लाइसेन्स कैसे देते?)

-आचार्य कनकनन्दी

[चाल : 1. क्या मिलिए....2. आत्मशक्ति....]

श्रद्धा प्रज्ञा दया रिक्त होते हैं मोही स्वार्थी।

किसी भी धर्म जाति राष्ट्र (भाषा) से ले न्याय व राजनीति।।

स्वप्रकाशी बिना यथा न संभव होता परप्रकाशी।

तथाहि श्रद्धा प्रज्ञा दयादि निज धर्म से ले राजनीति।।(1)

रावण कंस दुर्योधन हिटलर चैंगजखाँ से ले लादेन।

शोषणकारी क्रूर तानाशाही बगदादी से सदाम हुसैन।

“जानामि धर्म न मे भजामि, जानामि अधर्म न मे त्यजामि”।

ऐसी होती है दुर्बुद्धि विनाशकाल होती विपरीत-बुद्धि।।(2)

“बन्दर बाँट सम वे न्याय करते” “गोमुखव्याघ्र” सम वे होते।

“मुँह में प्रभु नाम बगल में छूरी” संकीर्ण स्वार्थान्ध वे होते।।

यथा आक्रान्ता अन्य को हराकर बन जाते हैं सिकन्दर।

अन्याय अत्याचार से ले करते हत्या से ले पराधीन।।(3)

वहाँ के शासक बनकर वे बनते वहाँ के कर्ता भोक्ता।

नीति-निर्माता से ले बनते वहाँ के उद्धार-कर्ता।।

कुछ दयालु परोपकारी सुयोग्य राजा से ले न्यायाधीश नेता/(मंत्री)।

होते हैं यथार्थ से न्यायकर्ता अन्यथा होते अन्यायकर्ता।।(4)

ये सभी संभव है लोकतंत्र से, राजतंत्र व साम्यवाद (समाजवाद) में।

भले नाम व तंत्र कुछ भी हो, अन्य का शोषण होता हर तंत्र में।।

गरीब असहाय दुर्बल प्रजा, गुलाम, कृषक, ग्वाला महिलाओं के।

शोषण से ले अत्याचार होते, श्रमिकों से ले बालश्रमिकों के।।(5)

ये सभी तो प्रायः होते सर्वत्र, अभी भारत के सुप्रीमकोर्ट।

ऋषिप्रधान कृषिप्रधान देश के, अन्नदाता कृषक कहा कुवचन॥
 प्रदूषणों के प्रमुख कारण हैं धनी मानी नामी उद्योगपति।
 मिलमालिक, गाडीमालिक, खानमालिक, बिल्डर से ले भोगी-व्यसनी॥(6)
 लाखों वर्षों से कृषक तो अन्न फल सब्जी तिलहन दूध उत्पादन कर रहे।
 इससे ही राजा से प्रजा तक जीवित रहते अन्यथा न जीवन रहे॥
 इसके साथ-साथ उनके कारण धरती भी बनती सस्यश्यामला।
 प्राणवायु अधिक बनती तथाहि, प्रदूषण शोषण होता प्रचुर॥(7)
 ऐसा ही सूखी लकड़ी से भी भोजन, बन रहा है लाखों वर्षों से।
 (यदि) कृषि लकड़ी से भोजन बनाने से प्रदूषण होता तो क्यों न हुआ पूर्व में?॥
 इन सब सत्य-तथ्य-साक्ष्यों को सुप्रीमकोर्ट क्या न जानता है?
 अन्नदाता कृषकों को अभद्र शब्दों से अन्यायपूर्ण कटु कहता है॥(8)
 पराली जलाने को प्रदूषणकारी मानकर उन्हें अन्य को मारने वाला कहता है।
 किसान स्व-आजीविका हेतु दूसरों को जानबूझकर ऐसा कर रहे कहता है॥
 अतएव हमें किसानों से कोई सहानुभूति नहीं ऐसा कहता है।
 किन्तु बुचड़खाना, मद्य बनाना, अफीम, तम्बाकु को लाइसेन्स देते हैं॥(9)
 आजीविका हेतु ये तो करोड़ों पशु से मनुष्यों को मार सकते हैं।
 क्योंकि इससे सरकार को अरबों रुपये कर रूप में मिलते हैं॥
 'परित्राणाय साधुनां विनाशनाय च दुष्कृतां' से विपरीत हो रहा है।
 "लोभ पाप का बाप बखाना" व, विनाशकाले विपरीतबुद्धि हो रहा है॥(10)
 केवल नौकरी सत्ता-सम्पत्ति से, स्वपरविश्वकल्याण न संभव है।
 अतएव स्वपरविश्वकल्याण हेतु, "सूरी कनक" आह्वान कर रहे हैं॥(11)

नन्दौड़, दि. 12.11.2019,

पराली बने प्रॉफिट वाली

प्रदूषण के लिए किसानों को दोष देते रहने की बजाय उन्हें उपयोगी विकल्प देना जरूरी

(प्रो. माथुर देरी महानिदेशक)

मौजूदा प्रदूषण में पराली का कितना योगदान है?

इस मौसम में उत्तर भारत के बड़े हिस्से में वायु प्रदूषण अचानक जो बढ़ता है, उसकी वजह पंजाब और हरियाणा में फसलों के अवशेषों को जलाया जाना ही है। इसे तुरन्त रोकना होगा। कई कोशिशें हो रही हैं। भारत सरकार ने इसके लिए उपकरणों पर सब्सिडी दी है। लेकिन आवश्यक प्रभाव नहीं हुआ है। कृषि अनुसंधान विभाग का शोध है कि पराली को जमीन में मिलाने से अगली पैदावार में 15 प्रतिशत बढ़ोतरी होती है। लेकिन किसानों को इसका विश्वास दिलाना होगा।

पहले धान हाथ से काटे जाते थे तो जमीन से एक इंच ऊपर से फसल काटी जाती थी। अब थ्रेशर सिर्फ ऊपर के आठ इंच काटता और बाकी छोड़ देता है। इसी तरह धान की कटाई और गेहूँ की बुआई के बीच का अंतराल बहुत कम हो गया है, ऐसे में किसान जल्दबाजी में पराली जलाता है। उसे कई विकल्प देने होंगे। **पर ऐसा समाधान क्या होगा, जिससे किसानों को इसकी कीमत मिले?**

जरूरी है कि किसानों की आधी पराली की बिक्री हो जाए और आधी वह खेत में मिला दे। पराली से किसान कुछ धन हासिल कर सके। उसे प्रॉफिट हो सके। इसके लिए तकनीक तैयार है। और उसका उपयोग किसानों की फसलों के भण्डारण में किया जा सकता है। पराली के ब्रिकेट बनाने होंगे, उससे गैस पैदा की जाएगी और उससे बिजली बनेगी। उस बिजली से कोल्ड स्टोरेज चलेगे। अभी बिजली की कमी की वजह से गाँवों में बहुत कम कोल्ड स्टोरेज हैं। लखनऊ में ऐसा कोल्ड स्टोरेज चलाया जा रहा है। यह कारोबार के लिहाज से भी फायदेमंद हैं।

इसके अलावा पंजाब और हरियाणा प्रावधान करें कि पॉवर स्टेशन 10 प्रतिशत तक पराली के ब्रिकेट का इस्तेमाल कर सकते हैं। साथ ही बायोमास गैसीफायर और कोल्ड स्टोरेज बनाने के लिए कमर्शियल लोन दें।

सरकार पराली काटने के उपकरणों पर सब्सिडी दे रही है, वे कितने प्रभावी और फायदेमंद हैं?

खेती ऐसा व्यवसाय है जिसमें पैसा लगता ही चला जाता है, जबकि किसान की जेब में ज्यादा पैसा होता नहीं। ऐसे में उसे इस मशीन को चलाने पर भी खर्च करना होता है और उसे लगता है कि तुरन्त उसके पास पैसा नहीं आ रहा।

किसान की क्रय-शक्ति से पता चलता है मंदी का

वैश्विक मंदी तेजी से भारत को भी अपने लौहपाश में जकड़ सकती है। सरकार सक्षमता और सही सोच से इस संकट से देश को निकाल सकती है, बशर्ते वह हकीकत के प्रति 'शुतुरमुर्गी भाव' न रखें। 2009 में ऐसा संकट था, लेकिन भारत उससे उबर गया था। आज भी जरूरत है इस मंदी के चक्र को तोड़ने की और तरीका एक ही है। कृषि और उससे जुड़े लोगों के हाथ में पैसा जाए, जो देश की आबादी का 67 प्रतिशत है। सरकार की ही ताजा रिपोर्ट के अनुसार ट्रैक्टर, मोटरसाइकिल ही नहीं, रोजाना प्रयोग वाली उपभोक्ता सामग्री (तेल, साबुन आदि) की मांग ग्रामीण भारत में लगातार घटती जा रही है। यह क्षेत्र देश में 5 प्रतिशत रोजगार देता है। अगर माँग कम होगी तो उद्योग उत्पादन कम करेंगे और बेरोजगारी बढ़ेगी। उधर, देश की वित्तमंत्री ने एक साक्षात्कार में कहा है कि बड़ी कार कंपनियों का कहना है कि उनके उद्योग में कोई दिक्कत नहीं है। शायद कृषिमंत्री उन्हें बता सकें कि धान के बाद अब गेहूँ की खेती का क्षेत्र भी घट गया है। मंदी बड़ी कार के उपभोक्ता से नहीं, बल्कि ग्रामीण भारत की क्रय-शक्ति से तय होती है।

एक अन्य सरकारी आँकड़ा भी सरकार को चिंतित करने के लिए काफी होना चाहिए। विद्युत उत्पादन गिर रहा है, क्योंकि शहरी मध्यम वर्ग ही नहीं उद्योगों से भी माँग कम आ रही है, वे अपना उत्पादन कम करने लगे हैं। करीब 133 विद्युत इकाइयाँ ठप करनी पड़ी हैं। आज देश में 3.63 लाख मेगावाट बिजली की उत्पादन क्षमता के मुकाबले पिछले 7 नवम्बर को माँग मात्र 1.88 लाख युनिट लाख मेगावाट की थी।

अरबों रूपए से बने पॉवर प्लांट अगर बंद हैं तो स्थिति समझना मुश्किल नहीं होगा। औद्योगिक राज्य महाराष्ट्र और गुजरात में यह माँग सबसे ज्यादा (क्रमशः 22 और 19 प्रतिशत) गिरी है। लब्बो-लुआब यह कि सरकार खुशफहमी छोड़कर देश को आसन्न आर्थिक मंदी के अभेद्य चक्रव्यूह में फंसने से पहले बाहर लाए वरना देरी महँगी पड़ेगी। सीएमआईई की रिपोर्ट ने कुछ हफ्ते पहले ही आगाह किया था कि मनरेगा में युवकों की संख्या अचानक बढ़ रही है अर्थात् शहरों में नौकरियाँ जाने के बाद ये युवा फिर गाँव की ओर पलायन कर रहे हैं।

मंदी की मार सबसे ज्यादा गरीब झेलता है, क्योंकि उसकी आजीविका चली जाती है। सकेत बेहद चिंताजनक है। (दैनिक भास्कर)

विश्व मौसम संगठन (डब्ल्यूएमओ) ने जारी की सालाना रिपोर्ट 2010-19 सबसे गर्म दशक; धरती का पारा 1.1° बढ़ा, एक चौथाई समुद्र अम्लीय हुआ, भोजन-नौकरी का खतरा

मैड्रिड। विश्व मौसम विज्ञान संगठन (डब्ल्यूएमओ) ने मंगलवार को अपनी सालाना रिपोर्ट जारी की। इसमें कहा गया है कि साल 2010-19 का दशक इतिहास में सबसे गर्म होगा। बीते 40 वर्षों में इस दशक ने गर्मी के सभी रिकॉर्ड तोड़ दिए हैं। इस साल वैश्विक तापमान औद्योगिकीकरण से पहले के दौर की तुलना में 1-1 डिग्री सेल्सियस बढ़ा है। बढ़ते कार्बन उत्सर्जन को इसका मुख्य कारण मानते हुए चेतावनी दी गई है कि इससे तापमान में और इजाफा होगा और यह स्थिति पृथ्वी के लिए बहुत खतरनाक साबित हो सकती है। समुद्रों का पारा व उसका जलस्तर भी रिकॉर्ड स्तर पर बढ़ा है।

दुनिया के समुद्र 150 साल पहले की तुलना में 26 प्रतिशत अम्लीय हो गए हैं। भोजन व नौकरियों पर असर पड़ सकता है। डब्ल्यूएमओ के महासचिव पेटरी तलास ने कहा- 'एक और साल, एक और रिकॉर्ड। साल 2015 में जो हमने सबसे ऊँचा तापमान दर्ज किया गया था, वह 2020 में टूटने वाला है। लू, बाढ़, सूखा और चक्रवात की घटनाएँ पहले सदियों तक नहीं होती थीं, लेकिन बढ़ते कार्बन उत्सर्जन और ग्रीन हाउस गैसों के कारण तापमान बढ़ने से आए दिन इसके दुष्परिणाम देखने को मिल रहे हैं।'

असर : मानसून देरी से आया और गया; जून में बारिश कम, बाद में ज्यादा डब्ल्यूएमओ ने कहा कि जलवायु परिवर्तन का ही असर है कि भारत में मानसून का आना और जाना देरी से हुआ। जून के महीने में बारिश में भारी कमी रही, जबकि अगले महीनों में भारी बारिश हुई। इसके अलावा मध्य अमेरिका, उत्तरी कनाडा, उत्तरी रूस और दक्षिण पश्चिम एशिया में असामान्य भारी बारिश हुई है। इसके कारण इन इलाकों में लगातार बाढ़ आ रही है। इसके उलट इंडोनेशिया ऑस्ट्रेलिया में भीषण सूखा रहा।

हाल-ए-दिल : दिल्ली-एनसीआर में एक्वूआई-700 के पार, बेहद खतरनाक सुप्रीम कोर्ट ने कहा-केन्द्र सरकार दिल्ली में चीन जैसे एयर प्यूरीफायर टॉवर लगाए

फटकार : पंजाब, हरियाणा, यूपी और दिल्ली के मुख्य सचिवों को फटकारते हुए तलब किया

प्रदूषण रोकने को 13 स्थानों पर प्यूरीफायर टॉवर लगेंगे

दिल्ली-एनसीआर में प्रदूषण का स्तर बढ़ता ही जा रहा है। इस बीच बढ़ते प्रदूषण से निपटने के लिए सुप्रीम कोर्ट ने शुक्रवार को केन्द्र सरकार को निर्देश दिया। कोर्ट ने कहा कि सरकार दिल्ली में एयर प्यूरीफाइंग टॉवर लगाने का खाका तैयार करे। कोर्ट ने दिल्ली सरकार से भी पूछा कि उसकी ऑड-ईवन योजना से वायु प्रदूषण में कमी आई है या नहीं। सरकारों को फटकारते हुए कहा कि दिल्ली के लोग बुरी तरह से कष्ट उठा रहे हैं। आज (शुक्रवार को) भी एयर क्वालिटी इंडेक्स 600 के आसपास था। आखिर लोग सांस कैसे लेंगे? ऑड-ईवन स्कीम प्रदूषण को नियंत्रित करने का तरीका नहीं है। इससे वायु प्रदूषण में कुछ कमी आई है या नहीं, ये हमें बताया जाए।

सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस अरुण मिश्रा और दीपक गुप्ता की पीठ ने दिल्ली-एनसीआर में प्रदूषण पर सुनवाई की। पीठ ने पंजाब, हरियाणा, यूपी और दिली के मुख्य सचिवों को तलब किया है। उनसे 29 नवम्बर को पेश होकर प्रदूषण को रोकने के लिए उठाए गए कदमों की जानकारी देने को कहा गया है। पीठ ने केन्द्र सरकार से प्रदूषण को कम करने के लिए 13 थानों पर एयर प्यूरीफायर टॉवर लगाने पर विचार करने को कहा है। चीन के कुछ शहरों में ऐसे टॉवर लगे हैं।

दिल्ली-एनसीआर की हवा और जहरीली हुई : देश की राजधानी दिल्ली, एनसीआर में प्रदूषण का स्तर खतरनाक से बेहद घातक स्तर पर पहुँच गया है। दिल्ली-एनसीआर के ज्यादातर इलाकों में एयर क्वालिटी इंडेक्स (एक्वूआई) 700 के ऊपर दर्ज हुआ। दिल्ली में गुरुवार को औसत एक्वूआई 472 था। गुरुग्राम में 461, फरीदाबाद में 450, गाजियाबाद में 475 दर्ज किया गया।

सुप्रीम कोर्ट

ऑड-ईवन कारगर नहीं, कचरा, धूल भी बड़ी वजह

सुप्रीम कोर्ट ने ऑड-ईवन से दो और तीन पहिया वाहनों को छूट दिए जाने पर भी सवाल उठाया। कहा कि केवल कार पर रोक लगाने से काम नहीं चलेगा, क्योंकि ये प्रभावी नहीं हैं। यह सिर्फ मध्य वर्ग पर प्रभाव डालता है, अमीरों के पास हर नंबर की कार है। ऑड-ईवन कारगर नहीं है। कचरा, निर्माण, सड़क की धूल भी प्रदूषण की बड़ी वजह हैं।

सीपीसीबी

वायु प्रदूषण में कारों का सिर्फ 3 फीसदी योगदान

केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण मण्डल बोर्ड ने कोर्ट से कहा कि प्रदूषण बढ़ाने में कारों का सिर्फ 3 प्रतिशत योगदान है, जबकि सभी वाहनों से 28 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है। उसके अध्ययन के मुताबिक ऑड-ईवन से ज्यादा फायदा नहीं हुआ। वहीं, दिल्ली सरकार की ओर से मुकुल रोहतगी ने बताया कि अगर ऑड-ईवन में दी जा रही कुछ छूटें खत्म कर दी जाएं-जैसे टू व्हीलर्स।

दिल्ली सरकार

ऑड-ईवन से 5 से 15 प्रतिशत तक प्रदूषण कम हुआ

दिल्ली सरकार ने कहा कि ऑड-ईवन से 5-15 प्रतिशत घटा है। दिल्ली में प्रदूषण के लिए पंजाब और हरियाणा जिम्मेदार है। वहीं, 4 नवम्बर से चल रहा ऑड-ईवन शुक्रवार को खत्म हो गया। सीएम केजरीवाल ने कहा-मौसम विभाग का अनुमान है कि 2-3 दिन में प्रदूषण कम होगा। हम सोमवार को देखेंगे कि ऑड-ईवन को आगे बढ़ाना है या नहीं।

प्रदूषण पर चर्चा : स्थाई समिति की बैठक में 28 में से 4 सांसद आए

पोहा-जलेबी पर चर्चा :

गौतम गंभीर ने ट्विटर पर वीवीएस लक्ष्मण के साथ इंदौर में पोहा-जलेबी खाते हुए एक फोटो शेयर की। इसके बाद सोशल मीडिया कई लोग उन्हें ट्रोल करने लगे।

शहरी विकास के लिए बनी संसदीय समिति ने प्रदूषण पर चर्चा के लिए बैठक बुलाई थी। भाजपा सांसद जगदम्बिका पाल की अध्यक्षता वाली समिति की बैठक में

पर्यावरण मंत्रालय के कई बड़े अधिकारी भी नहीं पहुँचे। इनमें एमसीडी के 3 आयुक्त, डीडीए के उपाध्यक्ष, पर्यावरण विभाग के सचिव शामिल थे। इसके अलावा इस समिति में 28 सांसद सदस्य हैं, इनमें से सिर्फ 4 सांसद ही पहुँचे। इसके कारण बैठक टाल दी गई। संसदीय समिति के सदस्य भाजपा सांसद गौतम गंभीर भी नहीं पहुँचे। वे इंदौर में टेस्ट मैच की कमेंट्री कर रहे थे।

आगे क्या : दिल्ली-एनसीआर में प्रदूषण से रविवार के बाद ही राहत की उम्मीद

दिल्ली में शुक्रवार को लगातार चौथे दिन धुंध के कारण वायु प्रदूषण में सुधार नहीं हुआ। केन्द्र सरकार की संस्था सफर के अनुसार गुरुवार रात हुई बूँदाबांदी के कारण हवा में प्रदूषण बढ़ा है। वहीं, मौसम विभाग के अनुसार अभी रविवार तक दिल्ली-एनसीआर के लोगों को प्रदूषण से राहत नहीं मिलने वाली है। इसके बाद सुधार संभव है।

चीन का फॉर्मूला : 74 शहरों में पाँच साल में 33 प्रतिशत घटाया प्रदूषण, एक्यूआई-225

चीन ने वायु प्रदूषण पर काफी हद तक काबू पा लिया है। देश के 74 शहरों में 2013 से 2017 तक पीएम 2.5 बहुत खतरनाक स्थिति में पहुँच गया था। यहाँ पिछले 5 साल में 33 प्रतिशत तक की प्रदूषण की कमी आई है। वहीं, देश में 2017 और 2018 के बीच प्रदूषण में 10 प्रतिशत की कमी आई है। चीन के अधिकांश शहरों में शुक्रवार को एक्यूआई 225 तक रहा।

दोष दूर हेतु भारतीयों को आह्वान (दिशाबोध 2019 के आधार पर)

ब्रायन की दृष्टि में भारतीयों के अन्धकार पक्ष

भारतीय लोग होब्स विचारधारा वाले हैं अर्थात् अनियन्त्रित असभ्य स्वार्थ की संस्कृति वाले

(चाल : 1. सुनो सुनो ऐ! दुनिया वालों 2. क्या मिलिए...)

- आचार्य कनकनन्दी

सुनो भारतीय तुम्हारी संस्कृति, आध्यात्मिक संस्कृति वाली।

तीर्थंकर बुद्ध ऋषि मुनि द्वारा, संस्कारित आत्मिक वाली।।(स्थायी)

जिस संस्कृति का महान् लक्ष्य ही, आत्मा को परमात्मा बनाना।
 इस हेतु “धर्म अर्थ काम मोक्ष पुरुषार्थ” द्वारा परम विकास करना।।
 इस हेतु ही चार आश्रम हैं, जिससे उक्त काम करना।
 धर्म सह ही अर्थ काम पुरुषार्थ भी, मोक्ष लक्ष्य से करना।।(1).....
 मोक्ष से समस्त राग द्वेष मोह, काम क्रोध ईर्ष्या तृष्णा को नाशना।
 सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि वर्चस्व ही क्या?, तन-मन इन्द्रिय भी नाशना।।
 विदेही अवस्था ही मोक्ष अवस्था, जो है आत्मा की शुद्धावस्था।
 इस अवस्था में जीव पाते हैं, शुद्ध-बुद्ध अमृत दशा।।(2)
 इसके अतिरिक्त सभी बन्धन, जिसे कहते हैं संसार।
 संसार को पार करना ही, भारतीय संस्कृति का सार।।
 किन्तु हाय रे! तुम इण्डियन, स्व-संस्कृति से करते हो विपरीत।
 सत्ता सम्पत्ति प्रसिद्धि वर्चस्व, हेतु बनते हो विकृत।।(3)
 व्यापार राजनीति शिक्षा कानून में तो, तुम हो संकीर्ण स्वार्थी।
 किन्तु धर्म में भी त्याग के बदले, बनते हो संकीर्ण स्वार्थी।।
 ब्रायन लिखते हैं “भारत के लोग, धर्म के बदले धन को देते महत्त्व।”
 धर्म भी संकीर्ण स्वार्थ हेतु पालते, त्याग को न देते महत्त्व।।(4)
 धर्म के बदले धन मान ख्याति चाहते, यहाँ से ही भ्रष्टाचार शुरु।
 ऐसे ही व्यापारादिक में करते, धर्म तक में नैतिकता से दूर।।
 नैतिकता से होता विकास ऐसा, विश्वास नहीं है भारतीयों का।
 विदेशी आक्रान्ताओं को भी प्रश्रय, मिला ऐसे भ्रष्ट लोगों का/(से)...(5)....
 भारतीयों की जाति प्रथा उन्हें, भेदभाव-पक्षपात सिखाती।
 अन्य जाति वालो को वे मानव तक न मानते ऐसी भ्रष्ट बुद्धि।।
 ब्रायन के उक्त विचार नहीं है, सदा सर्वदा सर्वत्र सत्य।
 किन्तु सम्पूर्ण असत्य भी नहीं, सत्य को स्वीकारना योग्य।।(6)
 “सत्य स्वीकारो असत्य परिहारो”, यह ही सत्यमेव जयते।
 “अनैतिक त्यागों नैतिक बनो”, नैतिक से बनो है धार्मिक।।
 धर्म साधना से आध्यात्मिक बनो, जिससे बनोगे परमात्मा।
 पतित से तुम परमात्मा बनो, इस हेतु ‘कनक’ करे आह्वान।।(7)

सन्दर्भ :

भारतीय लोग होब्स विचारधारा वाले हैं (सिर्फ अनियंत्रित असभ्य स्वार्थ की संस्कृति वाले)

- ब्रायन, न्यूजीलैण्ड

(दुनिया के भ्रष्टाचार मुक्त देशों में शीर्ष पर गिने जाने वाले न्यूजीलैण्ड के एक लेखक ब्रायन ने भारत में व्यापक रूप से फैलें भ्रष्टाचार पर एक लेख लिखा है। यह लेख सोशल मीडिया पर काफी वायरल हो रहा है। लेख की लोकप्रियता और प्रभाव को देखते हुए विनोद कुमार जी ने इसे हिन्दी भाषीय पाठकों के लिए अनुवादित किया है। लेखक से पूर्ण रूप से सहमत न होते हुए भी तथ्य विचारणीय एवं चिंतनीय है। (सम्पादक) डॉ.बगडा

भारत में भ्रष्टाचार का एक कल्चरल पहलू है। भारतीय भ्रष्टाचार में बिलकुल असहज नहीं होते, भ्रष्टाचार यहाँ बेहद व्यापक है। भारतीय भ्रष्ट व्यक्ति का विरोध करने के बजाय उसे सहन करते हैं। कोई भी नस्ल इतनी जन्मजात भ्रष्ट नहीं होती। ये जानने के लिए कि भारतीय इतनी भ्रष्ट क्यों होते हैं उनके जीवन पद्धति और परम्परायें देखिये।

भारत में धर्म लेन-देन वाले व्यवसाय जैसा है। भारतीय लोग भगवान को भी पैसा देते हैं इस उम्मीद में कि वे बदले में दूसरे की तुलना में इन्हें वरीयता देकर फल देंगे। ये तर्क इस बात को दिमाग में बैठाते हैं कि अयोग्य लोग को इच्छित चीज पाने के लिए कुछ देना पड़ता है। मंदिर चहारदीवारी के बाहर हम इसी लेन-देन को भ्रष्टाचार कहते हैं। धनी भारतीय कैश के बाजार स्वर्ण और अन्य आभूषण आदि देता है। वो अपने गिफ्ट गरीब को नहीं देता, भगवान को देता है। वो सोचता है कि किसी जरूरतमंद को देने से धन बरबाद होता है।

जून, 2009 में द हिन्दू ने कर्नाटक मंत्री जी जनार्दन रेड्डी द्वारा स्वर्ण और हीरों के 45 करोड़ मूल्य के आभूषण तिरुपति को चढ़ाने की खबर छापी थी। भारत के मंदिर इतना ज्यादा धन प्राप्त कर लेते हैं कि वो ये भी नहीं जानते कि इसका करे क्या। अरबों की सम्पत्ति मंदिरों में व्यर्थ पड़ी है। जब यूरोपियन इंडिया आये तो इन्होंने यहाँ स्कूल बनवाये। जब भारतीय यूरोप और अमेरिका जाते हैं तो वहाँ मंदिर बनाते हैं।

भारतीयों को लगता है कि अगर भगवान कुछ देने के लिए धन चाहते हैं तो फिर वही काम करने में कुछ गलत नहीं है। इसीलिये भारतीय इतनी आसानी से भ्रष्ट बन जाते हैं। भारतीय कल्चर इसीलिये इस तरह के व्यवहार को आसानी से आत्मसात कर लेती हैं क्योंकि

1. नैतिक तौर पर इसमें कोई नैतिक दाग नहीं आता। एक अति भ्रष्ट नेता जयललिता दुबारा सत्ता में आ जाती है, जो आप पश्चिमी देशों में सोच भी नहीं सकते।

2. भारतीयों की भ्रष्टाचार के प्रति संशयात्मक स्थिति इतिहास में स्पष्ट है। भारतीय इतिहास बताता है कि कई शहर और राजधानियों को रक्षकों को गेट खोलने के लिए और कमांडरों को सरेंडर करने के लिए घूस लेकर जीता गया। ये सिर्फ भारत में है।

भारतीयों के भ्रष्ट चरित्र का परिणाम है कि भारतीय उपमहाद्वीप में बेहद सीमित युद्ध हुए। ये चकित करने वाला है कि भारतीयों ने प्राचीन यूनान और मॉडर्न यूरोप की तुलना में कितने कम युद्ध लड़े। नादिरशाह का तुर्कों से युद्ध तो बेहद तीव्र और अन्तिम सांस तक लड़ा गया था। भारत में तो युद्ध की जरूरत ही नहीं थी, घूस देना ही सेना को रास्ते से हटाने के लिए काफी था। कोई भी आक्रमणकारी जो पैसे खर्च करना चाहे भारतीय राजा को, चाहे उसके सेना में लाखों सैनिक हो, हटा सकता था।

प्लासी के युद्ध में भी भारतीय सैनिकों ने मुश्किल से कोई मुकाबला किया। क्लाइव ने मीर जाफर को पैसे दिये और पूरी बंगाल सेना 3000 में सिमट गई। भारतीय किलो को जीतने में हमेशा पैसों के लेनदेन का प्रयोग हुआ। गोलकुंडा का किला 1687 में पीछे का गुप्त द्वार खुलवाकर जीता गया। मुगलों ने मराठों और राजपूतों को मूलतः रिश्वत से जीता। श्रीनगर के राजा ने दारा के पुत्र सुलेमान को औरंगजेब को पैसे के बदले सौंप दिया। ऐसे कई कैसेज हैं जहाँ भारतीयों ने सिर्फ रिश्वत के लिए बड़े पैमाने पर गद्दारी की।

सवाल है कि भारतीयों में सौदेबाजी का ऐसा कल्चर क्यों है जबकि जहाँ तमाम सभ्य देशों में ये सौदेबाजी का कल्चर नहीं है।

3. भारतीय इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते कि यदि वो सब नैतिक रूप

से व्यवहार करेंगे तो सभी तरक्की करेंगे क्योंकि उनका “विश्वास/धर्म” ये शिक्षा नहीं देता। उनका कास्ट सिस्टम उन्हें बाँटता है। वो ये हरगिज नहीं मानते कि हर इंसान समान है। इसकी वजह से वो आपस में बँट और दूसरे धर्मों में भी गये। कई हिन्दुओं ने अपना अलग धर्म चलाया जैसे सिख, जैन, बुद्ध और कई लोग इसाई और इस्लाम अपनाये। परिणामतः भारतीय एक दूसरे पर विश्वास नहीं करते। भारत में कोई भारतीय नहीं है, वो हिन्दू इसाई मुस्लिम आदि हैं। भारतीय भूल चुके हैं कि 1400 साल पहले वो एक ही धर्म के थे। इस बँटवारे ने एक बीमार कल्चर को जन्म दिया। ये असामनता एक भ्रष्ट समाज में परिणित हुई, जिसमें हर भारतीय दूसरे भारतीय के विरुद्ध है, सिवाय भगवान के जो उनके विश्वास में खुद रिश्तखोर है।

दीपावली मनाने की सार्थकता इसका आध्यात्मिक संदेश

(साधु-श्रावकों में विकृतियाँ)

- डॉ. चीरंजीलाल बगड़ा

दीपावली जन-जन के मन में हर्षोल्लास पैदा करने वाला पर्व है। यह भारतवर्ष में मनाया जाने वाला सब पर्वों में सर्वाधिक लोकप्रिय पर्व है। दीपावली को दीवाली या आलोक पर्व भी कहते हैं। दीपावली के पूर्व लोग अपनी दुकानों और घरों की सफाई करते हैं। रंग-रोगन करते हैं और यह भावना भाते हैं कि उनके घर आँगन में धन लक्ष्मी का प्रवेश हो। जीवन में धन का अपना महत्त्व है। इससे भला कौन इंकार कर सकता है। यह अर्थ युग है। धन से ही मनुष्य का जीवन व्यवहार चलता है। आशा आकांक्षाएँ पूरी होती है। शिक्षा और स्वास्थ्य के लिए भी अर्थ की अपनी महत्ता है, परन्तु अर्थ-अनर्थ का भी जनक कहा गया है। अर्थ में बड़ा प्रमाद है, नशा है, इसके अर्जन के लिए बहुत कुछ अनैतिक कार्य करने पड़ते हैं और बहुधा अधिक धन आ जाने से यह सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। अब हम एक व्यंग्य के माध्यम से विषय प्रवेश करते हैं। दीपावली का दिन है। अमीर गरीब सभी लोग दीपों को सजाकर माँ लक्ष्मी के स्वागत के लिए तत्पर हैं। लक्ष्मीजी अपने प्रिय वाहन उल्लू पर बैठकर निकल पड़ती है और उल्लू को आदेश देती हैं कि जो मेरा तन मन धन से आह्वान कर रहा हो, तुम मुझे उनके यहाँ ले चलो।

उल्लू बोला अभी सतयुग नहीं, कलियुग है। आपकी आज्ञा हो तो मैं आपको

उन व्यापारियों के घर ले चलूँ जो घी में चरबी और अनाज में कंकड़ मिलाते हैं, जो मसालों में लकड़ी का बुरादा मिलाते हैं, नकली दवाइयाँ बेचते हैं और सरकार की आँखों में धूल झोंकर फर्जी बिल बनाते हैं, टैक्स की चोरी करते हैं, या फिर उन नेताओं और अफसरों के घर ले चलूँ, जिनका रिश्तत लेना ही धर्म है। बाढ़ हो या अकाल, उनकी पाँचों अंगुलियाँ घी में रहती है। नंबरी चोरों से उनकी यारी है, भले ही देश में महामारी है। लाखों करोड़ों हजम करके भी डकार तक नहीं लेते, या फिर उन तस्करों के घर ले चलूँ जो गाँजा, अफीम का धंधा करते हैं, और नई पीढ़ी को नया नया व्यसन सिखाते हैं या फिर समाज के उन ठेकेदारों के घर ले चलूँ जो धर्म के नाम पर अपनी दुकान चलाते हैं। सेवा और परोपकार की दुहाई देकर या फिर पुण्य के थोक विक्रेता बनकर अपना स्वार्थ साधते हैं या अहम् पोषण करते हैं।

इतना सुनने के बाद लक्ष्मीजी बोलीं-बस कर बुद्धिमान उलूकराज, यह नई इक्कीसवीं सदी का भारत है, अब मोदीजी का राज है, मुझे भी अंधेरे से उजालों में आना है। मैं अधर्म और पाप की कालिमा को दूर करूँगी और अब बेईमानों और गद्दारों का पर्दाफाश करूँगी। राम-कृष्ण, महावीर और गाँधी इन सबके सत्य और ईमान पर जीने वालों के घर पर ही अबसे वास करूँगी।

प्रायः लोग दीपावली को मात्र बाह्य प्रसंगों से जोड़कर त्यौहार मनाने की सार्थकता मान लेते हैं। श्रीराम के अयोध्या वापसी को याद करते हैं, परन्तु प्रकाश पर्व के उन आंतरिक संदेशों को अनदेखा कर देते हैं जो हमें अपनी आत्मा में निहित ज्ञान रूपी प्रकाश को आलोकित करने की प्रेरणा देते हैं। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' इसका उपदेश देते हैं। अज्ञान रूपी अंधकार को मिटाकर हमें विश्व को ज्योतिर्मय करना है। दीपावली जैन दृष्टि से त्याग और संयम का पर्व है। सांसारिक पर्व के साथ-साथ आध्यात्मिक संदेश भी छिपा है इस पर्व में। कार्तिक कृष्णा अमावस्या की ब्रह्म वेला में जैन धर्म के अन्तिम व चौबीसवें तीर्थंकर महावीर ने सिद्धावस्था को प्राप्त किया था। निर्वाण पद की प्राप्ति हुई थी। प्राचीनकाल से ही जैन समाज इस निर्वाण प्राप्ति की खुशी में दीपावली पर्व मनाता आ रहा है। वीर निर्वाण संवत् सबसे प्राचीन मनाया जाने वाला कैलेण्डर वर्ष है।

निर्वाण पद की प्राप्ति आसक्ति से नहीं विरक्ति से होती है, भोग से नहीं त्याग से होती है और वासना से नहीं साधना से होती है। आज जैन समाज इस पर्व के

आध्यात्मिक संदेश को भूलकर मात्र सांसारिक और शारीरिक कामनाओं की तृप्ति में लिप्त हो रही है। यह विडम्बना है। अच्छा खाना, अच्छा पहनना, आमोद-प्रमोद करना और जिन मंदिर जाकर भगवान महावीर की विशेष पूजा अर्चना करना, निर्वाण लाडू चढ़ाना यह सब तो दीपावली के बाहरी पक्ष हैं जो सांसारिक दृष्टि से आकर्षक जरूर लगते हैं। किन्तु आत्मिक दृष्टि से पर्याप्त कतई नहीं है। समाज, श्रमण और श्रावक दोनों से मिलकर कहलाता है। आज दोनों ही समुदायों में अवमूल्यन का दौर है। समाज को सही दिशा बोध देने का कार्य श्रमण वर्ग का हाता है। पुरानी कहावत है यथा राजा तथा प्रजा। आज उसी तर्ज पर हम कह सकते हैं, जैसा साधु वैसी समाज। श्रमण वर्ग भी आज अर्थ के आकर्षण से सम्मोहित है। समस्त या अधिकांश श्रमण चर्या का ताना बाना वर्तमान में अर्थ के इर्द-गिर्द घूमता देखा जा सकता है, चाहे चातुर्मास हो या केशलुंचन सदृश साधु की आंतरिक क्रिया। पिच्छी परिवर्तन हो या दीक्षा देने का परम वैराग्य का अवसर। जिनाभिषेक हो या शांतिधारा, सर्वत्र बढ़े सो पावे की परम्परा, आखिर वैराग्य हो तो कैसे? यहाँ तक कि शास्त्र भेंट और पाद प्रक्षालन के लिए भी अब पात्रता नहीं देखी जाती, नीलामी लगाई जाती है। अर्थ, धर्म ही हर क्रिया पर अब भारी पड़ता है। गरीब तो मात्र भीड़ का हिस्सा बन ताली बजाने के लिए जुटाई जाती है, और इसके लिए मुफ्त आवास, यातायात और भोजन का लॉलीपॉप बाँटा जाता है। साधु बने क्यों थे, अब यह भाव/उद्देश्य तिरोहित हो गया है। अधिकांश साधुओं की चर्या देखकर आज उनके उद्देश्य में भटकाव को स्पष्ट महसूस किया जा सकता है। निर्वाण का मार्ग त्याग संयम से नहीं निर्माण से होकर जाता है, यह मान्यता आधुनिक समय में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। परिग्रह को पाँचवाँ पाप मानना तो आज बात बेमानी लगती है। साधुओं को भी लोकेषणा की महामारी ने ग्रसित कर रखा है। सोशल मीडिया ने अपना दायरा साधुओं तक में फैला रखा है। भव्यातिभव्य इतिहास में प्रथम बार और भारत गौरव बनने की ललक वैराग्य पर हावी है। आध्यात्मिक प्रकाश की आज वहाँ भी जरूरत है जो समाज के दीप स्तंभ होने चाहिए थे, इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है?

अब हम बात करते हैं, समाज के दूसरे पक्ष श्रावक समुदाय की। आज हमारी नई पीढ़ी निर्वाण पक्ष की बात प्रायः भूलती जा रही है। इस दिन होटल, क्लबों में देर

रात तक पार्टी करना, अभक्ष्य सेवन करना, ताश जुआ खेलना, आतिशबाजी करना और पर्यावरण को शुद्ध करने वाले मिट्टी के दीपक को घी तेल से जलाने के बजाय मोमबत्ती का प्रयोग करना अथवा विद्युत सज्जा करना यह सब सांसारिक आयोजन हमारी आत्मा के अज्ञान रूपी अंधकार के ही पोषक एवं सूचक हैं। अज्ञानी लोग मानते हैं कि इस दिन लॉटरी या जुआ खेलने से लक्ष्मी का आगमन शुभ सूचक है। दीपक का प्रकाश, मिष्ठान्न का सेवन एवं परिजनों में वितरण, बाहरी साफ सफाई, और लक्ष्मी की आराधना इन सबसे आत्मा का कल्याण कदापि संभव नहीं है। यह सब तो तमसो मा ज्योतिर्गमय की भावना के सर्वथा विपरीत है।

आज समाज भोग और परिग्रह वृत्ति की ओर अधिक आकृष्ट है। त्याग के पर्व को हमने भोग और परिग्रह का पर्व बना दिया है। आवश्यकता हमें अपनी आत्म ज्योति को प्रज्ज्वलित करने की है। अपना दीपक स्वयं को ही बनना है। आत्मा को ही दीपक बनाकर उसे जगमगाएँ। उसके लिए जरूरी है प्रबल आत्मविश्वास।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सिद्धान्तों के परिपालन करने में अपना पुरुषार्थ जाग्रत करें तभी दीपावली होगी हमारी वास्तव में आध्यात्मिक दीपावली, हमारी अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने वाली दीपावली। तभी होगा हमारे अज्ञान अंधकार का विनाश। पुरुषार्थ करें, सफलता अवश्य मिलेगी। इति शुभम्।

मुझे वह प्रभावना-ज्ञान-तप-धर्म आदि नहीं चाहिए?

मेरी नकारात्मकता से परे सकारात्मकता (आत्मविशुद्धि)

(आत्महित युक्त परहित करूँ, किन्तु परके सन्तोष, असन्तोष, भय, आशा, अनुकरण, प्रतिस्पर्द्धा से भी आत्म अहित न करूँ)

- आचार्य कनकनन्दी

चाल : 1. छू लेने दो...2. क्या मिलिए...

वह प्रभावना मुझे नहीं चाहिए, जिस प्रभावना में प्रकृष्ट भाव न हो।

ख्यातिपूजा लाभ प्रसिद्धि वर्चस्व, धन जन मान बोली प्रधान हो।।

वह ज्ञान भी मुझे नहीं चाहिए, जिस ज्ञान से उपरोक्त काम करूँ।

परोपदेशी पण्डित बनकर, पर निन्दा अपमान वैर विभाव करूँ॥(1)

वह तप त्याग मुझे नहीं चाहिए, जिस तप से उपरोक्त काम करूँ।

समता शान्ति सहिष्णुता घटे, विष त्याग बिन सर्प काँचली त्यागे॥

वह धर्म कर्म मुझे नहीं चाहिए, जिससे उपरोक्त भाव काम हुए।

श्रद्धा प्रज्ञा आचरण विकृत बने, उदारता व्यापकता गुणग्राही नशे॥(2)

वह प्रवचन भी नहीं करना चाहूँ, जिससे उपरोक्त विभाव जन्मे।

सास बहू कथा चुटकुला मनोरञ्जन, भीड़ प्रदर्शन द्वारा लोकानुरञ्जन॥

गुण-गुणी प्रशंसा प्रोत्साहन करूँ, गुण-गण कथा दोष वादे च मौनम्।

इससे विपरीत चापलूसी ठगी न करूँ, स्व-पर-विश्व हित हेतु भावना करूँ॥(3)

मौन एकान्त में आत्म साधना करूँ, मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ धरूँ।

हित मित प्रिय सामान्य कथन करूँ, योग्य शिष्य (भक्त) हेतु योग्य कठोर भी बोलूँ।

मेरे उक्त भाव काम वचन को, (यदि) कोई ग्रहण करे तो धन्यवाद दूँ।

अच्छा माने या कहे तो प्रमोद करूँ, न माने या विरोधी से साम्य धरूँ॥(4)

सभी को सन्तोष करने का दम्भ (काम) न करूँ, असन्तोषी-विरोधी से साम्य धरूँ।

उनके कारण उक्त भाव व काम, त्याग न करूँ न प्रभावित बनूँ॥

तीर्थंकर बुद्ध ईसा गाँधी टेरेसा, मीराबाई सुकरात लिंकन मण्डेला।

अभी तक सबको सन्तोष करने वाला, न हुआ न है न आगे कभी होगा॥(5)

आत्महित पहले सच्चा-अच्छा करूँ, परहित भी यथायोग्य सही करूँ।

दोनों में प्राधान्यता से स्वहित करूँ, पर प्रकाशी के पहले स्वप्रकाशी बनूँ॥

अभी तो रागी द्वेषी कामी फैशनी व्यसनी, परिग्रहधारी अन्यायी भ्रष्टाचारी।

दया दान पूजा परोपकार हीन भी, करते निस्मृही सन्त की निन्दा-विरोध॥(6)

संकीर्ण पन्थ मत स्वार्थ हेतु, करते वे अयोग्य साधु की स्तुति।

आत्मविशुद्धि साम्य शान्ति सन्त को, न मानते श्रेष्ठ करते तिरस्कार॥

संकीर्ण पन्थ मत जाति तप त्याग को, सम्पूर्ण धर्म मानते स्वार्थ सिद्धि को।

न जानते मानते आत्मविशुद्धि धर्म, आत्मविशुद्धि समता होती कठिन॥(7)

चतुर्थकाल में भी ऐसा ही हुआ, इससे भी अधिक कुकार्य हुआ।

तीर्थंकर मुनि ऋद्धिधारी प्रति हुआ, “श्रेयांसी बहु विघ्नानि ” घटित हुआ।

अनादिकाल से जीव रागी द्वेषी मोही, एकेन्द्रिय से लेकर मनुष्य तक।
जिससे वे कर्म से परिचालित होकर, करते तदनुकूल भाव-व्यवहार॥(8)
गाय हँस सम होते गुणग्राही कम, मच्छर जोंक सम गुणद्रोही अधिक।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव के अनुसार, सन्तुलित करूँ 'कनक' भाव-व्यवहार॥(9)

ग्रन्थ रचना - प्रकाशन के फल

अस्मिन् सिद्धान्तसारे त्रिभुवनकथके ज्ञानगूढार्थ पूर्ण
यत् किञ्चित् सन्धिमात्राक्षर पदरहितं प्रोदितं स्वल्पबुद्ध्या।
अज्ञानाच्च प्रमादादशुभविधिवशादागमे वा विरुद्धम्।
तत् सर्वं शारदेऽमा विशदमुनिगणैः प्रार्थिता में क्षमस्व॥(104)
श्रुतसकलसुवेत्तारो हिता भव्य पुंसाम्।
निहितनिखिलदोषालोभगर्वादि दूराः।
विशदनिपुणबुद्ध्या सूरयः शोधयन्तु।

श्रुतमिदमिहचाल्पज्ञानिना सूरिणोक्तम्॥105॥ सिद्धान्त सार

यह सिद्धान्तसार दीपक नाम का उत्कृष्ट ग्रन्थ जिनेन्द्र के मुख से उद्भूत है, स्वर्ग, नरक आदि के भेद से अनेक प्रकार के समस्त त्रैलोक्य को उद्योत करने में दीपक के समान है। त्रैलोक्य सार आदि अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों का आडोलन कर भक्ति से मुझ सकलकीर्ति मुनि द्वारा रचा गया है। अनेक गुण समूहों से यह ग्रन्थ सदा समृद्धिमान हो।

मैंने यह ग्रन्थ ख्याति-पूजा-लाभ की इच्छा अथवा कवित्व आदि के अभिमान से नहीं लिखा, किन्तु यह ग्रन्थ आत्म विशुद्धि के लिए, स्व-पर हित के लिए एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए परमार्थ बुद्धि से लिखा है। तीन लोक के कथन में और ज्ञान गूढ़ के अर्थों से परिपूर्ण इस सिद्धान्त-सार दीपक महाग्रन्थ में बुद्धि की स्वल्पता से, अज्ञान से, प्रमाद से अथवा अशुभ कर्म के उदय से यदि किंचित् भी अक्षर, मात्रा, सन्धि एवं पद आदि की हीनता हो अथवा आगम के विरुद्ध कुछ लिखा गया हो तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि जिनवाणी माता और विशिष्ट ज्ञानी मुनिजन मुझे क्षमा प्रदान करें। मुझ अल्प बुद्धि के द्वारा लिखे गये इस शास्त्र का सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता, भव्य जीवों के

हितकारी, समस्त दोषों से रहित लाभ एवं गर्व आदि से दूर रहने वाले तथा निर्मल (समीचीन) एवं निपुण बुद्धि से युक्त आचार्य शोधन करें।

ग्रन्थ के प्रति आशीर्वचन:-

सिद्धान्तसारार्थनिरूपणाच्छि सिद्धान्तसारार्थ भृतो हि सार्थः।

सिद्धान्तसारादिकदीपकोऽयं ग्रन्थो धारित्र्यां जयतात् स्वसंघैः॥(106)

जिनागम के सिद्धान्त के सारभूत अर्थ का निरूपण करने वाला, सिद्धान्त के सारभूत अर्थ से भरा हुआ एवं सार्थक नाम को धारण करने वाला यह सिद्धान्त सार दीपक नाम का ग्रन्थ अपने संघों द्वारा पृथ्वी पर जयवन्त हो।

इस ग्रन्थ के पठन से किन-किन फलों की प्राप्ति होगी?

ये पठन्ति वरशास्त्रमिदं सद्धीधनाः सुमुनयो गुणरागात्।

ज्ञाननेत्रमचिरादिह लब्ध्वा लोकयन्ति जगतां त्रितयं ते॥(107)

तेन हस्ततलसंस्थित रेखावद् विलोक्य नरकादि समस्तम्।

यान्ति भीतिमशुभाच्च चरन्ति सत्तपश्चरणमञ्जसा विदः॥(108)

तेन वृत्तविशदा चरणेन प्राप्य नाकमसमं सुखखानिं।

राज्यभूतिमनुभोगविरक्त्या सत्तपश्चरणतोऽवपुषः स्युः॥(109)

जो समीचीन बुद्धि के धारक उत्तम मुनिराज गुणानुराग से इस ग्रन्थ को पढ़ते हैं, वे शीघ्र ही ज्ञान रूपी अनुपम नेत्र (केवलज्ञान) को प्राप्त कर तीन लोक स्वरूप समस्त जगत को देख लेते हैं। वे विद्वान् उस अनुपम ज्ञान से नरकादि समस्त दुःखमय पदार्थों को हस्ततल पर स्थित रेखा के सदृश देखकर समस्त अशुभादि क्रियाओं से भयभीत होते हैं, और समीचीन तपश्चरण आदि का आचरण करते हैं। तथा उस निर्दोष के आचरण से सुख की खानि स्वरूप स्वर्गों के अनुपम सुखों को प्राप्तकर मनुष्य पर्याय में आकर राज्य विभूति का अनुभोग करके वैराग्य को प्राप्त करते हुए सिद्ध पर्याय को प्राप्त करते हैं।

शास्त्र श्रवण करने से क्या फल प्राप्त होता है?

शृण्वन्ति ये बुधजनाः परया त्रिशुद्ध्या

त्रैतच्छ्रुतं त्रिभुवनोरुगृहप्रदीपम्॥

ते श्वभ्रदुःखकलनादघभीतचित्ता
धर्मं तपःसुचरणे च परायणाः स्युः॥ (110)

ते ज्ञानदृग्यमतपश्चरणादिधर्म-
भुक्त्वा सुखं निरूपमं दिवि मर्त्यलोके।
सम्प्राप्य रागविरतिं भवभोगकाये
सद्दीक्षया सुतपसा च भवन्ति सिद्धाः॥ (111)

अर्थ : त्रैलोक्य को प्रकाशित करने के लिए प्रदीप के सदृश इस ग्रन्थ को जो विद्वज्जन मन, वचन और काय की विशुद्धिपूर्वक श्रवण करते हैं, वे नरकों के दुःखों को भलीभाँति जान लेते हैं, इसलिए वे पापों से भयभीत चित्त होते हुए धर्म में, तप में और सम्यक्चारित्र में दत्तचित्त हो जाते हैं।

तथा वे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, यम, नियम और उत्तम तपश्चरण आदि धर्म के फल स्वरूप स्वर्ग एवं मध्यलोक के अनुपम सुखों को भोग कर संसार शरीर और भोगों से विरक्त होते हुए जैनैश्वरी दीक्षा धारण कर उत्तम तप करके सिद्ध हो जाते हैं।

जो भव्य जन इस शास्त्र को लिखते हैं, उनके फल
येऽहो लिखन्ति निपुणा वरशास्त्रमेतत्
तद् वृद्धये च पठनाय तरन्ति तूर्णम्।
ते ज्ञानवारिधिमनन्तगुणैकहेतु
सिद्धान्ततीर्थपरमोद्धरणाप्तधर्मात्॥(112)

अर्थ : शास्त्र की वृद्धि के लिए तथा दूसरों को पढ़ने के लिए जो विद्वज्जन इस उत्तम शास्त्र को अपने हाथों से स्वयं लिखते हैं, वे सिद्धान्त रूप उत्कृष्ट तीर्थ के उद्धार स्वरूप पुण्य से अनन्त गुणों के कारण भूत ज्ञानसिन्धु को शीघ्र ही तर जाते हैं। अर्थात् पूर्ण ज्ञानी बन जाते हैं।

जो धनिक जन इस शास्त्र को लिखावेंगे, उनको प्राप्त होने वाले फल
ये लेखयन्ति धनिनो धनतः किलेदम्
सारागमं भुवि सुवर्तन हेतवे ते।

सज्ञानतीर्थविमलोद्भरणान्तपुण्याद-

अप्यमुत्र सकलं श्रुतमाश्रयन्ति॥(113)

अर्थ : पृथ्वी पर आगम के सार को प्रकाशित करने के लिए जो श्रीमान् (धनवान्) अपने धन से इस शास्त्र को लिखवाते हैं, वे समीचीन और निर्मल ज्ञान रूपी तीर्थ के उद्धार स्वरूप पुण्य फल से इस लोक और परलोक में सकलश्रुतज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। अर्थात् श्रुतकेवली हो जाते हैं।

जो विद्वज्जन शास्त्र का अध्ययन कराते हैं, उनका फल

ये पाठयन्ति सुविदो वरसंयतादीन्

विश्वार्थदीपकमिमं परमागमं ते।

सज्ञानदाजहामनघपुण्यपाकाज्

ज्ञातश्रुता जगति केवलिनो भवन्ति॥ (114)

जो विद्वज्जन मुनि, आर्थिका, श्रावक एवं श्राविका जनों को सम्पूर्ण अर्थ के प्रकाशन में दीपक सदृश इस शास्त्र का अध्ययन कराते हैं अर्थात् पढाते हैं, वे उत्तम ज्ञान दान के फल से उत्पन्न अत्यन्त शुभ पुण्योदय से संसार में सर्व श्रुत के ज्ञाता होकर पश्चात् केवली हो जाते हैं।

इस महान् ग्रन्थ की रचना करके आचार्य श्री क्या चाहते हैं?

एतज्जैनवरागमं सुरचितं लोकत्रयोद्दीपकम्

तद् रागेण मया सुशास्त्ररचना व्याजेनमोक्षाप्तये।

हत्वाज्ञानतमो मदीयमखिलं सद्वर्तमानागमम्

सर्व मेऽत्र ततोप्यमुत्र विधिना दद्याच्छ्रुतं केवलम्॥(115)

अस्मिन् ग्रन्थवरे त्रिकालविषये ये वर्णिताः श्रीजिना

ग्रन्थादौ च नुताः समस्त जिनपाः सिद्धाश्च ये साधवः।

ते सर्वे कृपया ममाशुविमलं सम्पूर्णं रत्नत्रयम्

सर्वान् स्वांश्च गुणान् समाधिमरणं दद्युः स्वशत्रोर्जयम्॥(116)

यह त्रैलोक्य दीपक सदृश श्रेष्ठ जिनागम, जन कल्याण के राग से मेरे द्वारा शास्त्र की रचना के बहाने मोक्ष प्राप्ति के लिए रचा गया है, इसलिए विद्यमान यह सर्व

समीचीन जिनागम मेरे सम्पूर्ण अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट कर विधिपूर्वक इस लोक में श्रुतज्ञान को और परलोक में केवल ज्ञान देवें। इस उत्तम ग्रन्थ में जिन जिनेन्द्रों ने तीन लोक का वर्णन किया है तथा ग्रन्थ के निर्मल एवं सम्पूर्ण रत्नत्रय, अपने-अपने सर्व गुण समाधिमरण और स्वशत्रुओं पर विजय प्राप्त करने की शक्ति देवें।

अब आचार्य पुनः मंगल याचना करते हैं:-

तीर्थेशाः सिद्धनाथास्त्रिभुवनमहिताः साधवो विश्ववन्द्याः

सद्धर्मास्तत्प्रणोतार इह सुशरणाविश्वलोकोत्तमाश्च।

दातारो भुक्तिमुक्ती दुरितचयहराः सर्व माङ्गल्यदा ये।

ते मे वो वा प्रदद्युर्निजसकलगुणान् मङ्गलं पापहन्तृन्॥(117)

अर्थ : स्वर्ग-मोक्ष प्रदान करने वाले, दुष्कर्मों के समूह को हरण करने वाले तथा सर्व मंगलों को देने वाले, त्रैलोक्य पूज्य एवं विश्व वन्द्य अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, सर्व साधु परमेष्ठी एवं केवली प्रणीत सद्धर्म ही लोक में उत्तम मंगल है, उत्तमोत्तम हैं और परमोत्कृष्ट शरणभूत हैं, अतः ये सभी मुझे, आपको एवं सभी को पाप नाशक अपने-अपने सभी गुण प्रदान करें।

अब आचार्य इस सिद्धान्त ग्रन्थ के वृद्धि की वाञ्छा करते हैं:-

एतत्सिद्धान्ततीर्थ जिनवरमुखजं धारितं श्रीगणेशै-

र्वन्द्य मान्यं सदार्यं त्रिभुवनपतिभिर्दोषदूरं पवित्रम्।

अज्ञानध्वान्तहन्तृ प्रवरमिह परं धर्ममूलं सुनेत्रम्

विश्वालोके च भव्यैरसमगुणगणैर्यातु वृद्धिं शिवाय॥(118)

अर्थ : यह सिद्धान्त रूपी तीर्थ भगवान् जिनेन्द्र के मुख से निर्झरित है, गणधर देवों द्वारा धारण किया गया है, देवेन्द्र, नागेन्द्र, खगेन्द्र और चक्रवर्ती आदि त्रैलोक्य के अधिपतियों द्वारा वन्दनीय, आदरणीय एवं सदा पूज्य है। दोषों से दूर, पवित्र, अज्ञानरूपी अन्धकार के नाश में प्रवीण, धर्म का मूल और उत्तम नेत्र है, अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए भव्यों के अनुपम गुण समूहों द्वारा यह सम्पूर्ण लोक में निरन्तर वृद्धिगत होता रहे।

ग्रन्थेऽस्मिन् पञ्चचत्वारिंशच्छतश्लोकपिण्डताः।

षोडशाग्रा बुधैर्ज्ञेयाः सिद्धान्तसारशालिनि॥(119)

॥ इति श्री सिद्धान्तसार दीपक महाग्रन्थे भट्टारक श्री सकलकीर्तिविरचिते
न देऊँ सबके प्रश्नों के उत्तर, न मानूँ सबके उत्तर
(समता शान्ति मौन से करूँ मेरा आत्म-उद्धार)

- आचार्य कनकनन्दी

[चाल : आत्मशक्ति.../क्या मिलिए...]

सबके प्रश्नों के उत्तर न देऊँ, न मानूँ सभी के भी उत्तर।
समता शान्ति सत्य मौज से, करूँ सम्यक् भाव-व्यवहार।।
मैं नहीं हूँ सर्वज्ञ न शुद्ध, अतः मुझे बनना शुद्ध-बुद्ध।
तीर्थकर श्रमण भी रखते मौन, मौन से करूँ सर्वार्थ साधनम्॥(1)

समता शान्ति बुद्ध उपलब्धियों का, करूँ सदा स्वहित हेतु नियोजन।
आत्महितपूर्वक परहित करूँ, स्वपरप्रकाशक दीपक सम॥
“सिस्साणुग्गह-कुसले-धम्मा-इरिये” अर्थात् शिष्य अनुग्रह भी करूँ।
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के अनुसार, मौन रहूँ या हितमितप्रिय बोलूँ॥(2)
अहंकार ममकार या पक्षपात सह, अनादर अपमानकर निन्दा न करूँ।
संशय विपरीत भ्रमपूर्ण न कहूँ, सरल सहज अनुभवपूर्ण कहूँ॥
स्वपरविश्वहित हेतु में कहूँ, बिना पूछने पर भी स्वरूप कहूँ।
अधिक अनुभव कम लिखूँ न कहूँ, पूछने पर भी इससे भिन्न न कहूँ॥(3)
ख्याति-पूजा-लाभ-प्रसिद्धि-वर्चस्व, कलह विसंवाद प्रपंचपूर्ण न कहूँ।
लोकानुरंजन व असत्य अनुमोदन, क्रूर अनुदार व अन्धश्रद्धा न करूँ॥(कहूँ)
अन्यथा सत्यवचन व सत्यधर्म मम, होगा मलीन व दुरूपयोग।
द्वन्द्व संक्लेशपूर्ण अधिक सोचना होगा, जिससे होंगे संकल्प-विकल्प॥(4)
अधिकतर लोग होते हैं अयोग्य, संकीर्ण-स्वार्थ रूढ़ि दम्भ के कारण।
मन्यमाना होते ज्ञानी परोपदेशी, हठाग्रही दुराग्रही रायचन्द।।
न होते विनम्रसत्यग्राही उदारमना, गुणगणकथन दोषवादे च मौनम्।
दूरदृष्टि रहित व श्रद्धा-प्रज्ञा विमुक्त, छिद्रान्वेषी व संतोषी-अवचेतन॥(5)
धार्मिक से ले वैज्ञानिक जब, नहीं जानते निजात्मतत्त्व/(अहं, मैं)।

न जानते सापेक्ष-निरपेक्ष सत्य, नैतिक से ले आध्यात्मिक तक।।
 कर्मसिद्धान्त व गुणस्थान मार्गणा, कर्मफल कर्म व ज्ञानचेतना।
 भौतिक-अभौतिक मूर्तिक-अमूर्तिक, अशुभ शुभ शुद्धपरमात्मा।।(6)
 देखादेखी व सुनासुनी जानते, भाषा गणित तर्क न्याय न जानते।
 श्रद्धा-प्रज्ञा-अनुभव से रहित होते, लोकानुगतिक लोक न पारमार्थिक होते।।
 मंथरा शकुनी व जौक मच्छर सम, होते अधिकतर लोग खटमल सम।
 चालनी कैची व वहलीया ठग सम, ऐसे लोगों से रहूँ मौन-साम्य।।(7)
 मैं हूँ मुमुक्षु श्रमण व साधक, निस्पृह मुनि, निराकांक्षी, अलौकिक।
 संसार से सम्पूर्ण निवृत्त होना लक्ष्य, अतः 'सूरी कनक' करे तदनु रूप पुरुषार्थ।।(8)
 नन्दौड़, दि. 4.12.2019, रात्रि : 8:20 व प्रातः

सन्दर्भ :-

श्रुतस्कन्धनभश्चन्द्र संयमश्रीविशेषकम्।

इन्द्रभूतिं नमस्यामि योगीन्द्रं ध्यानसिद्धये।।(6) ज्ञानार्णव

अर्थ : आचार्य कहते हैं कि, योगियों में इन्द्र के समान इन्द्रभूति कहिये श्री गौतम गणधर भगवान् को ध्यान में सिद्धि के अर्थ नमस्कार करता हूँ। कैसे हैं इन्द्रभूति? श्रुतस्कन्ध कहिये द्वादशांगरूप शास्त्र, से ही हुआ आकाश, उसमें प्रकाश करने के अर्थ चन्द्रमा के समान है। फिर कैसे है? संयमरूपी लक्ष्मी को विशेष करने वाले हैं। **भावार्थ** : श्री गौतम गणधर ने श्रीवर्द्धमानस्वामी की दिव्यध्वनि सुनकर द्वादशांगरूप शास्त्र की रचना की, आप संयम पाल, ध्यान कर और केवल लक्ष्मी को प्राप्त करके मोक्ष को पधारे। पश्चात् उनसे ध्यान का मार्ग प्रवर्त्ता। इस कारण उनको इस ध्यान के (योग के) ग्रंथ को आदि में नमस्कार करना युक्त समझकर नमस्कार किया है।

प्रशान्तमतिगम्भीरं विश्वविद्याकुलगृहम्।

भव्यैकशरणं जीयाच्छ्रीमत्सर्वज्ञशासनम्।।(7)

श्रीमत् कहिये निर्बाध लक्ष्मीसहित जो सर्वज्ञ का शासन (आज्ञामत) है, सो जयवन्त प्रवर्त्तो। कैसा है सर्वज्ञ शासन? व्याकरण, न्याय, छन्द, अलंकार, साहित्य, यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, निमित्त और मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति आदि विद्याओं के

वसने का कुलगृह है; तथा भव्य जीवों को एकमात्र अद्वितीय शरण है। प्रशान्त है, तथा समस्त आकुलता और क्षोभ का मिटाने वाला है, अतएव अति गम्भीर है, मन्दबुद्धि प्राणी इसकी थाह नहीं पा सकते।

भावार्थ : सर्वज्ञ का मत समस्त जीवों का हित करने वाला है, सो जयवन्त प्रवर्तों ऐसा आचार्य महाराज ने अनुराग सहित आशीर्वाद दिया है।

सत्पुरुषों की वाणी जीवों के उपकारार्थ ही प्रवर्तती।

प्रबोधाय विवेकाय हिताय प्रशमाय च।

सम्यक्तत्त्वोपदेशाय सतां सूक्तिः प्रवर्तते।।(8)

सत्पुरुषों की उत्तम वाणी जो है, सो जीवों के प्रकृष्ट ज्ञान, विवेक, हित, प्रशमता और सम्यक् प्रकार से तत्त्व के उपदेश देने के अर्थ प्रवर्तती है।

भावार्थ : यहाँ प्रकृष्टज्ञान का अभिप्राय पदार्थों का विशेषरूप ज्ञान होता है, और विवेक कहने से आपापर के भेद जानने का अभिप्राय लेना चाहिये, क्योंकि पदार्थों के ज्ञान बिना आपा पर का भेदज्ञान कैसे हो? एवं पदार्थों का ज्ञान आपापर के ज्ञान बिना निष्फल है।

तथा हित शब्द का अभिप्राय सुख का कारण समझना, क्योंकि भेदविज्ञान भी हो, उसमें सुख नहीं उपजै तो भेदज्ञान कैसा? तथा प्रशम कहने का अभिप्राय कषायों का मंद होना है, सो जिस वाणी से कषाय मंद (उपशम भावरूप) न हो, वह वाणी दुःख का कारण होती है, उसे ग्रहण करना योग्य नहीं है। तथा सम्यक्तत्त्वोपदेश का अर्थ यथार्थ तत्त्वार्थ के उपदेश का जानना है। जिसमें मिथ्या तत्त्वार्थ का उपदेश हो, यह वाणी सत्पुरुषों की नहीं है। इस प्रकार पाँच प्रयोजनों की सिद्धि के अर्थ सत्पुरुषों की वाणी होती है। यहाँ यह आशय भी ज्ञात होता है कि, हम जो यह शास्त्र रचते हैं तो सर्वज्ञ की परम्परा से जो उपदेश चला आता है, वह ही समस्त जीवों का हित करने वाला है, उसी के अनुसार हम भी कहते हैं। सो इसमें भी उक्त पाँच प्रयोजनों का विचार लेना, और जो इन पाँच प्रयोजनों के अतिरिक्त वचन हों सो सत्पुरुषों के वचन न जानने।

तच्छ्रुत तच्च विज्ञानं तद्द्वयानं तत्परं तपः।

अयमात्मा यदासाद्य स्वस्वरूपे लयं ब्रजेत्।।(9)

वही शास्त्र का सुनना है, वही चतुराईरूप भेद विज्ञान है, वही ध्यान वा तप है, जिसको प्राप्त होकर यह आत्मा अपने स्वरूप में लवलीन होता है।

भावार्थ : आत्मा का परमार्थ (हित) अपने स्वरूप में लीन होना है, सो जो शीघ्र पढ़ना, सुनना, भेदज्ञान करना, ध्यान करना, महान् तप करना तथा स्वरूप में लीन होने का कारण होता है, वही तो सफल है, अन्य सब निष्फल खेद मात्र है।

संसार को निःसार जानकर बुद्धिमान इसमें लीन नहीं होता और अपने हित को नहीं भूलता-

दुरन्तदुरिताक्रान्तं निःसारमतिवञ्चकम्।

जन्म विज्ञाय कः स्वार्थे मुह्यत्यङ्गी सचेतनः॥(10)

जन्म अर्थात् संसार के स्वरूप को जानकर ज्ञान सहित प्राणी ऐसा कौन है, जो अपने हितरूप प्रयोजन में मोह को प्राप्त हो? अर्थात् कोई नहीं। कैसा है जन्म? दुःखकर है अंत जिसका ऐसा, तथा दुरित से (पाप से) व्याप्त है, ठग है, क्योंकि ठग के समान किंचित्सुख का लालच बताकर सर्वस्व हर लेता है, और निगोद का वास कराता है। इस प्रकार संसार का स्वरूप ज्ञान ज्ञानी पुरुष को अपना हित भूलना उचित नहीं है, ऐसी उपदेश की सूचना दी गई है।

आचार्य ग्रन्थ रचने की प्रतीज्ञा करते हैं

अविद्याप्रसरोद्भूतग्रहनिग्रहकोविदम्।

ज्ञानार्णवमिमं वक्ष्ये सतामानन्दमन्दिरम्॥(11)

आचार्य कहते हैं, कि मैं इस ज्ञानार्णव नाम के ग्रंथ को कहूँगा। कैसा होगा यह ग्रंथ? अविद्या के प्रसार से (फैलाव से) उत्पन्न हुए आग्रह (हठ) तथा पिशाच को निग्रह करने में प्रवीण, तथा सत्पुरुषों के लिये आनन्द का मंदिर।

भावार्थ : यहाँ अविद्या शब्द से मिथ्यात्वकर्म के उदय से उत्पन्न अज्ञान का ग्रहण करना चाहिए। उस अज्ञान का प्रसार अनादिकाल से जीवों के हृदय में व्याप्त होने के कारण उत्पन्न हुआ जो एकान्तरूप हठ उसको यह ज्ञानार्णव नामक शास्त्र इसका अज्ञान निराकरण करने वाला है। और यही सत्पुरुषों को आनन्दित करने वाला है, क्योंकि सर्वथा एकान्त पक्ष है सो वस्तु का स्वरूप नहीं है, और अवस्तु में ध्याता ध्यान ध्येय फल काहे का? शास्त्रों में मिथ्यात्व दो प्रकार कहा गया है, एक

अगृहीत, दूसरा गृहीत। इनमें से अगृहीत मिथ्यात्व तो जीवों के बिना उपदेश ही अनादिकाल से विद्यमान है, सो इसमें एकान्तपक्ष संसार देह भोगों को ही अपना हित समझ लेना है। इस प्रकार समझ लेने से जीवों के आर्त रौद्रध्यान स्वयमेव प्रवर्तते हैं। और गृहीत मिथ्यात्व है सो उपदेशजन्य है, उसके कारण यह जीव वस्तु का स्वरूप सर्वथा सत् अथवा असत्, सर्वथा नित्य अथवा अनित्य तथा सर्वथा एक तथा अनेक, सर्वथा शुद्ध तथा अशुद्ध इत्यादि भिन्न धर्मियों का कहा हुआ सुनकर उसी पक्ष को दृढ़ कर उसी को मोक्षमार्ग समझ लेता है, वह श्रद्धान कर लेता है, सो उस श्रद्धान से कुछ भी कल्याण की सिद्धि नहीं है। इस कारण उस एकांत हठ का निराकरण जब स्याद्वाद की कथनी सुने, तब ही सर्वथा हो। वस्तु का यथार्थ स्वरूप जाने, और श्रद्धान करे, तब ही ध्याता ध्यान ध्येय फल की संभवता वा असंभवता का निश्चय हो। इसी अभिप्राय से आचार्य महाराज ने यह ज्ञानार्णव शास्त्र रचा है इसी से समस्त संभवासंभव जाना जायेगा, ऐसा आशय व्यक्त होता है।

असंत्यागात् पापकृतामपापांस तुल्यो दण्डः स्पशते मिश्रभावात्।

शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावात्। तस्मात् पापैः संधिं न कुर्यात्।।(विदुर नीति)

पापियों का त्याग न करने के कारण धर्मात्मा पुरुष भी सहभाव के कारण वैसे ही समान दण्ड-दुःख को प्राप्त होते हैं, जैसे सूखी लकड़ी के सहभाव के कारण गीली लकड़ी भी जल जाती है। इसलिए हे राजन्! पापी अधर्मात्मा पुरुषों के साथ कभी मेल न रखे।

निजानुत्पततः शत्रून् पञ्चप्रयोजनान्।

यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद् ग्रसते नरम्।।

जो पुरुष बुरे मार्ग पर चलने वाली शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, इन पाँच प्रयोजनों वाली शत्रुरूपी पाँच इन्द्रियों को वश में नहीं रखता उसको आपत्ति प्राप्त होती है, दुःख प्राप्त होते हैं।

अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता।

दमः सत्यामनायासो न भवन्ति दुरात्मनाम्।।

दुष्ट मनुष्यों में असूया का अभाव, सरलता, पवित्रता, सन्तोष, प्रिय बोलना, इन्द्रिय-जय, सत्य और चंचलता ये गुण नहीं रहते हैं।

आत्मज्ञानमनायासस्तिक्षा धर्मनित्यता।

वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत।।

हे भरत कुल के राजन्! आत्म ज्ञान अपने जैसा अन्यो को समझना, चंचलता का अभाव, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों को सहन करना, धर्म में निरत रहना, असम्बद्ध प्रलाप आदि से गुप्त रक्षित वाणी और दान ये कर्म अन्त्य नीच पुरुषों में नहीं करते।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्युबुधा बुधान्।

वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते।।

मूर्खजन कठोर भाषण एवं निन्दा द्वारा बुद्धिमान् जनों को पीड़ा देते हैं। कठोर भाषण एवं निन्दा करने वाला पाप का भागी होता है और उन्हें क्षमा करता हुआ बुद्धिमान् दुःख से मुक्त हो जाता है।

हिंसाबलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।

शुश्रूषा तू बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम्।।

असाधु दुष्ट पुरुषों का हिंसा ही बल होता है। हिंसा से ही वे अपने विरोधियों को दबाना चाहते हैं। राजाओं का दण्ड विधान बल है। स्त्रियों का बल सेवा है और गुणीजनों का बल क्षमा है।

वाक्यसंयमोहि नृपते सुदुष्करतमो मतः।

अथवच्च विचित्रं च न शक्यं बहू भाषितुम्।।

हे राजन्! वाणी का संयम अर्थात् परिमित (जितना बोलना उचित है, उतना) भाषण अत्यन्त कठिन माना गया है। और अर्थयुक्त अर्थात् उचित और चमत्कारपूर्ण वचन भी बहुत नहीं बोला जा सकता है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।

सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते।।

हे राजन्! अच्छी बोली हुई वाणी विविध प्रकार के कल्याणों को प्राप्त कराती है और वही वाणी बुरे ढंग से बोलने पर अनर्थ का कारण बन जाती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।

वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्।।

बाणों से छेदा गया घाव फिर भर जाता है, परशु (कुल्हाड़े) से काटा गया वन भी पुनः हरा हो जाता है, परन्तु निन्दित दुर्वचन युक्त वाणी से किया गया हृदय का जो घाव है, वह तो कभी नहीं भरता।

कर्णिनालीकनानराचात्रिर्हरन्ति शरीरतः।

वक्षल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः॥

शरीर में घुसे हुए कर्णी, नालीक बाण एवं नाराच अस्त्र को भी शरीर से निकाल लेते हैं दूर कर देते हैं परन्तु कटुवाणी रूपी शल्य-बाण हृदय में चुभा हुआ नहीं निकाला जा सकता, क्योंकि वह हृदय में ही पूर्णरूप से बैठ जाता है।

वाक्सायका वदनात्रिष्यतन्ति यराहतः शोचति रात्र्यहानि।

परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः॥

कटुवाणी रूपी बाण मुख से निकलते हैं और वे दूसरों के अतिमर्म स्थानों पर ही गिरते हैं। उनसे घायल किया गया व्यक्ति रात दिन शोक करता है (दुःखी होता है)। इसलिए बुद्धिमान् दूसरों के लिए उन कटुवाणी रूपी बाणों को न छोड़े।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।

बुद्धि तस्याकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति॥

देवगण जिस पुरुष के लिए पराजय देते हैं अर्थात् जिसे नष्ट करना चाहते हैं, उसकी बुद्धि को वह खींच लेते हैं, नष्ट कर देते हैं। वह बुद्धि से रहित हुआ नीच कर्मों को ही देखता है, उन्हीं की ओर झुकता है।

बुद्धौ कलुषभूतायां विनाश प्रत्युपस्थिते।

अनयो नयसंकाशो हृदयान्नावसर्पति॥

बुद्धि के मलीन हो जाने और विनाश के उपस्थित होने पर अनीति नीति के समान प्रतीत होती हुई हृदय से नहीं निकलती।

सेयं बुद्धिः परीता ते पुत्राणां भरतर्षभ।

पाण्डवानां विरोधेन न चैनानवबुध्यसे॥

हे भरतकुल में श्रेष्ठ राजन्! तुम्हारे पुत्रों की वह बुद्धि पाण्डवों के साथ विरोध के कारण मलीन हो गई है, भ्रष्ट हो गई है। इन भ्रष्ट बुद्धि वाले अपने पुत्रों को तुम नहीं जानते हो। ये मलीन या भ्रष्टबुद्धि वाले हैं, यह ज्ञान नहीं समझ रहे हैं।

राजा लक्षणसम्पन्नस्त्रैलोक्यस्यापि यो भवेत्
शिष्यस्ते शासिता सोऽस्तु धृतराष्ट्र युधिष्ठिरः।

हे धृतराष्ट्र! राजा के लक्षणों से युक्त, जो तीनों लोकों का भी राजा होने योग्य है, वह तुम्हारा शिष्य आज्ञाकारी युधिष्ठिर शासित राजा होना चाहिए। दुर्योधन को हटाकर उसे राजा बनाओ।

अतीव सर्वान् पुत्रांस्ते भागधयपुरस्कृतः।

तेजसा प्रज्ञया चैव युक्तो धर्मार्थतत्त्ववित्।।

यह राज्यांश से पुरस्कृत, धर्म और अर्थ के तत्त्व को जानने वाला युधिष्ठिर तुम्हारे सब पुत्रों से अधिक तेज और बुद्धि से युक्त है।

अनुक्रोशादानृशंस्याद् योऽसौ धर्मभृतां वरः।

गौरवात् तव राजेन्द्र बहून् क्लेशांस्तितिक्षते।।

हे राजेन्द्र धृतराष्ट्र! धर्मात्माओं में श्रेष्ठ यह जो युधिष्ठिर है, वह तुम्हारे बड़प्पन के कारण तथा अपनी दयालुता एवं सौम्यता के कारण बहुत ही नाना प्रकार के दुःख सह रहा है।

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे।

पावको लोहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते।।(2)

सच्छिद्रनिकटे वासो न कर्तव्यः कदाचन।

वारिहारिघटीपार्श्वे ताडयते पश्य झल्लरी।।(3)

आश्चर्य है कि दुर्जन की संगति से पद-पद पर मानहानि होती है। देखो, लोह की संगति से अग्नि मुद्गरों से पीटी जाती है। सच्छिद्र-दोषसहित मनुष्य के पास कभी निवास नहीं करना चाहिये क्योंकि जलघड़ी के पास रहने वाली झालर ताडित होती है। जलघड़ी के पात्र में एक छिद्र होता है, उस छिद्र से उसमें पानी भरता जाता है, पानी भरने के निशान देखकर पहरेदार दूसरों को सूचना देने के लिए पास में लगी हुई झालर को टंकृत करते हैं।

स्पृष्टानामहिभिर्नश्येद् गात्रं खलजनेन तु।

वंशवैभवैदुष्यक्षान्तिकीर्त्यादिकं क्षणात्।।(5)

सर्पों के द्वारा डसे हुए मनुष्यों का शरीर ही नष्ट होता है परन्तु दुर्जन के द्वारा संपृक्त मनुष्यों का वंश, वैभव, पाण्डित्य, क्षमा तथा कीर्ति आदिक क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं।

पात्रमपात्रं कुरुते दहति गुणान् स्नेहमाशु नाशयति।

अमले मलप्रसूतिर्दीपज्वालेव खलमैत्री॥(11)

दुर्जन की मित्रता, दीपक की ज्वाला के समान पात्र को अपात्र कर देती है, गुणों को जलाती है, स्नेह को शीघ्र नष्ट करती है और निर्मल में मल उत्पन्न कर देती है।

परापकारनिरतैर्दुर्जनैः सह सङ्गतिः।

वदामि भवतस्तत्त्वं न विधेया कदाचन॥(12)

आपके लिए एक सार की बात कहता हूँ कि पर का अपकार करने में तत्पर दुर्जनों की कभी संगति नहीं करनी चाहिये।

मौनप्रशंसा

मुनेः कर्म सुधर्मोपदेशानारचितं वचः।

भावः शुद्धात्मध्यानं हि मौनं मुनिभिरीरितम्॥(1)

‘मुनेर्भावःकर्म वा मौनं’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार मुनि के भाव अथवा कर्म को मौन कहते हैं। मुनि का भाव क्या है? शुद्धात्मा का ध्यान करना और कर्म क्या है? समीचीन धर्म के उपदेश के लिए रचित-वचनों-जिनागम का स्वाध्याय करना। मुनियों ने इसे ही मौन कहा है।

मौनमभिमानशरणं चित्करणं पुण्यकरणमघहरणम्।

देवादिवश्यकरणं क्रुद्धरणं चित्तशुद्धिसुखकरणम्॥(2)

मौन अभिमान का रक्षक है, ज्ञान का साधन है, पुण्य को करने वाला है, पाप को हरने वाला है, देवादि को वश करने वाला है, क्रोध को हरने वाला है, चित्त की शुद्धि और सुख को करने वाला है।

आगमनविघ्नहरणं मैत्रीकरणं विवादसंहरणम्।

रत्नत्रयसंरक्षणमज्ञान-विनाशकरणमपि काले॥(3)

मौन, आगमन सम्बन्धी विघ्नों को हरने वाला है, मित्रता को करने वाला है, विवाद को हरने वाला है, रत्नत्रय का संरक्षण करने वाला है और समय पर अज्ञान का नाश करने वाला भी है।

जिनोक्तिरेव वक्तव्या वक्तव्या नेतरोक्तयः।

तच्छिष्टवाक्स्मृतिमौनं न मौनं पशुवत्परम्॥(4)

जिनवाणी को ही कहना चाहिये, अन्य रागद्वेषपूर्ण वचन नहीं कहने चाहिए अतः जिनेन्द्रप्रतिपादित वचनों का स्मरण करना मौन है। पशु के समान मौन रहना मौन नहीं है।

योऽवगम्य यथाम्नायं तत्त्वं तत्त्वैकभावनः।

वाचं यमः स विज्ञेयो न मौनी पशुवन्नरः॥(5)

आम्नाय के अनुसार तत्त्व को जानकर उसी की भावना करता हुआ जो वचनों का नियन्त्रण करता है उसी मनुष्य को मौनी जानना चाहिये; पशु के समान मूक रहने वाला मनुष्य मौनी नहीं है।

मौनफलम्

वाचो व्यापारतो दोषा ये भवन्ति दुरुत्तराः।

ते सर्वेऽपि निवार्यन्ते मौनव्रतविधायिना॥(6)

वचन के व्यापार-बोलने से जो बहुत भारी दोष होते हैं, वे सभी मौन व्रत के धारक मनुष्य के द्वारा दूर किये जाते हैं।

अर्थपतौ भूमिपतौ विद्यावृद्धे तपोऽधिके बहुषु।

मूर्खेष्वरिषु च गुरुषु च विदुषा नैवोत्तरं वाच्यम्॥(7)

विद्वान् को अर्थपति-खजानची, राजा, विद्यावृद्ध-अपने से अधिक विद्वान्, अधिक तपस्वी, बहुसंख्या में उपस्थिति मूर्ख, शत्रु तथा गुरुओं को उत्तर देना नहीं चाहिये अर्थात् उनकी भर्त्सना को चुपचाप सहन कर लेना चाहिये।

साधुसाधुकृतं मौनं कोकिले! प्रावृषि त्वया।

वक्तारो दर्दुरा यत्र कुतस्तत्र सुभाषितम्॥(8)

हे कोयल! तुमने बरसात में मौन धारण किया, यह बहुत अच्छा किया क्योंकि जहाँ मेण्डक वक्ता है वहाँ सुभाषित कैसे हो सकता है? यह अन्योक्ति है। तात्पर्य यह है कि जहाँ अनेक विरुद्ध बोलने वाले हो वहाँ चुप रहना ही श्रेयस्कर है।

कोलाहले काककुलस्य जाते, विराजते कोकिलकूजितं किम्।
परस्परं संवदतां खलानां, मौनं विधेयं सततं सुधीभिः॥(9)

काकसमूह का कोलाहल होने पर क्या कोयल की कूक सुशोभित होती है? जहाँ बहुत से दुर्जन परस्पर एक दूसरे के गीत गा रहे हों, वहाँ सुधी-ज्ञानी जनों को सदा मौन रखना चाहिये।

आत्मनो मुखदोषेण बध्यते शुकसारिकाः।

बकास्तत्र न बध्यन्ते मौनं सर्वार्थसाधनम्॥(10)

अपने मुख के दोष से अर्थात् मधुरवाणी बोलने से तोता-मैना बद्ध किये जाते हैं-पिंजड़ों में रखे जाते हैं परन्तु बगुले बद्ध नहीं होते अतः मौन सब प्रयोजन सिद्ध करने वाला है।

मौखर्यं लघुतां धत्ते मौनमुन्नतिकारणम्।

मौखर्यान् नुपुरं पादे हृदि हारो विराजते॥(11)

मौखर्य-बकवास लघुता उत्पन्न करता है और मौन उन्नति का कारण है। मौखर्य के कारण नुपूर पैरों में रखा जाता है और चुप रहने से हार हृदय पर सुशोभित होता है।

सन्तोषो भाव्यते तेन वैराग्यं तेन दृश्यते।

संयमः पोष्यते तेन मौनं येन विधीयते॥(18)

जिसके द्वारा मौन रखा जाता है उसके द्वारा संतोष प्रकट किया जाता है, वैराग्य दिखाई देता है और संयम का पोषण किया जाता है।

सागारोऽपि जनो येन प्राप्नोति यतिसंयमम्।

मौनस्य तस्य शक्यन्ते केन वर्णयितुं गुणाः॥(19)

जिससे गृहस्थ भी मुनि जैसे संयम को प्राप्त कर लेता है उस मौन के गुण किसके द्वारा कहे जा सकते हैं?

मधुराक्षरसंयुक्तं मुखपद्मं मनोहरम्।

मौनेन जायते पुंसां नानार्थरूचिभाषणम्॥ (20)

मौनव्रतफलादत्र नरो नारी सुखी भवेत्।

नरोऽमुत्रापवर्गं च पुंस्त्वं प्राप्नोति योषिता॥(21)

मौनव्रत के फल से नर-नारी इस जन्म में सुखी होते हैं और नर परभव में मोक्ष को तथा स्त्री पुरुषत्व को प्राप्त होती है।

एवं त्रिधापि यो मौनं विद्यते विधिवन्नरः।

न दुर्लभं त्रिलोकेऽपि विद्यते तस्य किञ्चन॥(22)

इस प्रकार जो मनुष्य विधिपूर्वक तीनों प्रकार से मौन करता है, तीनों लोकों में भी उसके लिए कुछ दुर्लभ नहीं है।

वाचंयमाःपवित्राणां गुणानां सुखकारिणाम्।

सर्वेषां जायते स्थानं मणीनामिव नीरधिः॥(23)

मौन रखने वाला मनुष्य पवित्र एवं सुखकारी समस्त गुणों का स्थान उस तरह होता है जिस तरह समुद्र मणियों का।

पदानि यानि विद्यन्ते वन्दनीयानि कोविदैः।

सर्वाणि तानि लभ्यन्ते प्राणिनरा मौनकारिणी॥(24)

विद्वानों के द्वारा वन्दनीय जितने पद हैं, वे सब मौन रखने वाले प्राणी के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

वाणी मनोरमा तस्य शास्त्रसन्दर्भगर्भिता।

आदेया जायते येन क्रियते मौनमुज्ज्वलम्॥(25)

जो निर्दोष मौन करता है उसकी वाणी मनोहर, शास्त्र के प्रकरणों से परिपूर्ण तथा ग्रहण करने योग्य होती है।

देवशेषामिवाशेषामाज्ञामस्य प्रतीच्छति।

मस्तकेन जनो यस्मात्तन्मौनफल - मुत्तमम्॥(26)

जिस कारण इसकी समस्त आज्ञा को मनुष्य देव के शेषाक्षत के समान मस्तक से स्वीकृत करते हैं, वह मौन का ही उत्तम फल है।

यस्मान्मौनव्रतादत्र कलहादिर्न सम्भवेत्।

केवलज्ञानसाम्राज्यं सम्भवति परत्र च॥(27)

जिस मौन से इस लोक में कलहादिक नहीं होते और परभव में केवलज्ञान का साम्राज्य प्राप्त होता है वह अवश्य ही धारण करने योग्य है।

येन मौनव्रतेनात्र पालितेन गिरः स्फुटाः।

प्राप्नुवन्ति नरोऽमुच देववाचो भवन्त्यरम्॥(28)

इस मौन व्रत के पालन करने से मनुष्य इस भव में स्पष्ट वाणी को प्राप्त होते हैं और परभव में शीघ्र ही देववाणी से युक्त होते हैं।

मृष्ट्वाक् सुरनरेन्द्रसुखेशो वल्लभश्चकवितादि गुणानाम्।

केवलद्युमणिबोधितलोको मौनसद्व्रतफलेन नरः स्यात्॥(29)

मौन रूप उत्तम व्रत के फल से मनुष्य मधुरभाषी, सुरेन्द्र-नरेन्द्र के सुख का स्वामी, कवितादि गुणों का प्रिय और केवलज्ञान रूपी सूर्य के द्वारा लोगों को संबोधित करने वाला होता है।

मातृपित्रातुराचार्यातिथिभ्रातृतपोधनैः।

वृद्धबालाबलावैद्यापत्यदायाद - किङ्करैः॥(30)

स्वसृ - संश्रितसम्बन्धिवयस्यैः सार्धमन्वहं।

वाग्विग्रहमकुर्वाणो विजयेच्च जगत्त्रयम्॥(31)

माता, पिता, बीमार, आचार्य, अतिथि, भाई, तपस्वी, वृद्ध, बालक, स्त्री, वैद्य, पुत्र, हिस्सेदार, सेवक, बहिन, आश्रित रहने वाले सम्बन्धी तथा मित्रों के साथ सदा वचन-कलह न करने वाला मनुष्य तीनों जगत् को जीत सकता है।

शरच्चन्द्रसमां कीर्ति मैत्रीं सर्वजनानुगाम्।

कन्दर्पसमरूपत्वं धीरत्वं बुधपूज्यताम्॥(32)

आदेयत्वमरोगित्वं सर्वसत्त्वानु - कम्पिताम्।

धनं धान्यं धरां धामसौख्यं सर्वजनाधिकम्॥(33)

गम्भीरां मधुरां वाणीं सर्वश्रोत्रमनोहराम्।

निःशेषशास्त्रनिष्णातां बुद्धिं ध्वस्ततमोमलाम्॥(34)

एवंविधं फलं ज्ञात्वा मौनं सर्वार्थसाधकम्।

स्वर्गापवर्गफलदं मौनं कुर्वन्तु धीधनाः॥(35)

शरद् ऋतु के चन्द्रमा के समान कीर्ति, सब जीवों की मित्रता, कामदेव के

समान रूप, धीरता, विद्वज्जनों के द्वारा पूज्यता, आदेयता, नीरोग अवस्था, सर्व प्राणियों की अनुकम्पा, धन, धान्य, पृथ्वी, मकान, सब मनुष्यों से अधिक सुख, गम्भीर एवं सबके कानों को प्रिय मधुरवाणी तथा समस्त शास्त्रों में निपुण एवं अज्ञान रूप दोष को नष्ट करने वाली बुद्धि को मौन धारण करने वाला प्राप्त होता है।

इस प्रकार का फल जानकर बुद्धिमान् मनुष्य सब प्रयोजनों के साधक एवं स्वर्ग-मोक्षरूप फल को देने वाले मौनव्रत को धारण करें।

मौनव्रतस्य दूषणानि

स्थाने यत्रोपविष्टः स्यात्तस्मात् सरणलक्षणम्।

खटिकाक्षरसंयोगं पात्रे पट्टे तथाऽवनौः॥(36)

हसनं दृष्टिविक्षेपः पुत्रपौत्र - समागमात्।

एतत्सर्वं समाख्यातं मौनव्रतविदूषकम्॥(37)

जिस स्थान पर बैठा हो वहाँ से सरकना, पात्र, पाटा अथवा पृथ्वी पर चाक, मिट्टी अथवा पेन्सिल से अक्षर लिखना, पुत्रपौत्र आदि के समागम से हँसना तथा दृष्टि को इधर-उधर डालना, ये सब कार्य मौनव्रत को दूषित करने वाले हैं।

श्रवःसुखं मनोहारि लोकप्रत्ययकारणम्।

प्रमाणभूतमादेयं वचनं मौनतो भवेत्॥(38)

मौन से मनुष्यों को कर्णसुखकारी, मनोहारी, लोकविश्वास के कारण, प्रमाणभूत और ग्रहण करने योग्य वचन प्राप्त होता है।

यदसाध्यं भवेत्कार्यमिति - संशयकारणम्।

तत्तस्य वाक्यतः सिद्धिमेति मौनफलाद्भुवि॥(39)

अपि दुःसाध्यतां प्राप्ताः सर्वलोकफलप्रदाः।

विद्याः सिद्धयन्ति सर्वेषां चिर मौनव्रतं कृतम्॥(40)

जो कार्य पृथ्वी पर असाध्य और अत्यन्त संशय का कारण हो वह भी मौन के फल से उसके कहने मात्र से सिद्ध हो जाता है। जिन्होंने चिरकाल तक मौन व्रत का पालन किया उन सब को अत्यन्त कष्टसाध्य तथा सर्वलोकफलदायी विधाएँ सिद्ध हो जाती हैं।

सामूहिक पागलपन (कलेक्टिव न्यूरोसिस)

हर युग का अपना सामूहिक पागलपन (कलेक्टिव न्यूरोसिस) होता है, जिससे निपटने के लिए एक मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता होती है। वर्तमान युग में 'अस्तित्व संबंधी खालीपन' ही सामूहिक पागलपन के रूप में सामने आ रहा है, जिसे शून्यवाद (निहीलिज़्म) के रूप में वर्णित किया जा सकता है। शून्यवाद कहता है कि अस्तित्व का अपना कोई अर्थ नहीं है। अगर साइकोथेरेपी स्वयं को शून्यवाद दर्शन के समकालीन प्रभाव से मुक्त नहीं कर सकती, तो यह व्यापक स्तर पर समाज की कोई मदद नहीं कर सकेगी। फिर यह एक संभव उपचार के बजाय स्वयं को सामूहिक पागलपन के लक्षण के रूप में ही सामने ला पाएगी। ऐसी स्थिति में साइकोथेरेपी न केवल रोगी को एक शून्यवादी दर्शन सौंपेगी, बल्कि इंसान की सच्ची तस्वीर दिखाने के बजाय उसे एक व्यंग-चित्र के रूप में पेश करेगी।

सबसे पहली बात तो यह है कि मनुष्य की इस 'कुछ न होने' की थ्योरी में बहुत खतरा छिपा है। यह कहती है कि मनुष्य जैविक, मनोवैज्ञानिक तथा समाजशास्त्रीय दशाओं के परिणाम के सिवा कुछ ओर नहीं है या फिर मनुष्य अनुवांशिकता व पर्यावरण की देन है। मनुष्य की यह मान्यता इस नकारात्मक सोच को जन्म देती है कि वह बाहरी प्रभावों तथा आन्तरिक परिस्थितियों का शिकार है। जो साइकोथेरेपी यह मानने से इनकार करती है कि मनुष्य स्वतंत्र है, वह इस सोच को बल देकर और घातक बना देती है। यह तय है कि मनुष्य नश्वर है और उसकी स्वतंत्रता में बाधाएँ आती रहती हैं। बात परिस्थितियों से आज़ादी की नहीं है, बल्कि विकट परिस्थितियों के बावजूद खड़े होने के साहस की आज़ादी की है। जैसा कि मैंने एक बार कहा था, 'न्यूरोलॉजी तथा साइकोलॉजी' का प्रोफेसर होने के नाते, मैं इस बात को लेकर सजग हूँ कि मनुष्य किस हद तक जैविक, मनोवैज्ञानिक व समाजशास्त्रीय दशाओं के अधीन होता है, लेकिन दो विषयों का प्रोफेसर होने के अलावा मैं उन लोगों में से एक भी हूँ, जो यातना शिविरों से जीवित लौटे हैं। मैं मनुष्य की उस अद्भुत साहस व सहनशक्ति का साक्षी रहा हूँ, जिसके बल पर वह बद से बदतर दशा में भी विजयी बनकर उभरता है।

नकारात्मक-नियतिवाद (पैन-डिटरमिनिज़्म) की समीक्षा

मनोविश्लेषण को अकसर इसके नकारात्मक यौनवाद (पैन-सेक्षुअलिज़्म) के लिए दोषी ठहराया जाता है। हालाँकि मुझे लगता है कि यह तार्किक नहीं है। मुझे तो इसके बजाय एक और शब्द कहीं ज्यादा भ्रातिपूर्ण व खतरनाक लगता है, जिसे हम पैन-डिटरमिनिज़्म (नकारात्मक-नियतिवाद) कह सकते हैं। यह मनुष्य का वह नजरिया है, जिसके द्वारा वह हालातों का सामना करने की अपनी योग्यता का अनादर करता है और उसे मानने से इनकार कर देता है।

मनुष्य पूरी तरह से किन्हीं निश्चित दायरों व शर्तों से बँधा हुआ नहीं है। वह स्वयं को इस बात से तौलता है कि क्या वह अपने सामने आए हालातों का सामना कर सका? दूसरे शब्दों में, मनुष्य अपनी स्थिति स्वयं ही तय करता है। **मनुष्य अपने जीवन को सिर्फ जीता ही नहीं है, बल्कि निरंतर तय करता रहता है कि आगे उसका जीवन, उसका अस्तित्व कैसा होगा और अगले क्षण क्या बनेगा?**

इसी सोच के आधार पर, मनुष्य के पास यह आज्ञादी होती है कि वह उसी एक क्षण में अपने आपमें बदलाव ला सके। इसलिए हम केवल एक विशाल समूह के सर्वेक्षण आँकड़ों के आधार पर ही उसके भविष्य का अनुमान लगा सकते हैं; हालाँकि निजी व्यक्तित्व किसी भी तरह के अनुमान से परे होता है। किसी भी भविष्यवाणी का आधार जैविक, मनोवैज्ञानिक या समाजशास्त्रीय परिस्थितियों पर निर्भर होता है। जबकि मनुष्य के अस्तित्व की सबसे अहम बात यही है कि क्या वह अपने हालातों से और स्वयं की सीमाओं से ऊपर उठने की योग्यता रखता है? ज़रूरत पड़ने पर मनुष्य संसार में बेहतरी के लिए बदलाव लाने की योग्यता रखता है और वह चाहे तो इस बेहतरी के लिए अपने भीतर भी बदलाव ला सकता है।

मैं यहाँ आपके डॉक्टर जे. की मिसाल देना चाहूँगा। मेरे पूरे जीवन में केवल वे ही एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनसे भेंट होने के बाद मैं उन्हें 'मैपहिस्टोफीलियन प्राणी', यानी एक 'शैतानी शख्स' कहने का साहस कर सकता हूँ। उसी समय उन्हें विएना के सबसे बड़े मनोरोग अस्पताल 'स्टेनहाफ का जनसंहारक' कहा जाता था। जब नाज़ियों ने उनका 'इच्छामृत्यु कार्यक्रम' आरंभ किया, तो उन्होंने इस काम की बागडोर अपने हाथ में ले ली और इतनी कट्टरता से काम को अंजाम दिया कि एक भी मनोरोगी गैस चैंबर तक जाने से बच नहीं सका। जब मैं युद्ध के बाद, विएना

वापस आया तो मैंने पूछा कि “डॉक्टर जे. का क्या हुआ?” मुझे बताया गया कि “रूसियों ने उन्हें स्टेनहाफ के एकांत में बनी कोठरी में बंदी बना लिया था लेकिन अगले ही दिन कोठारी का दरवाजा खुला पाया गया और उसके बाद डॉक्टर जे. को किसी ने नहीं देखा।”

बाद में, मुझे पूरा विश्वास हो गया कि वे भी अपने साथियों की मदद से दक्षिण अमेरिका चले गए होंगे। हाल ही में, मैं एक भूतपर्व ऑस्ट्रियन राजदूत का सलाहकार बना, जिन्हें कई सालों तक बंदी बनाकर रखा गया था। वे सबसे पहले साइबेरिया में और फिर मास्को की प्रसिद्ध लुबियां का जेल में बंदी रहे। जब मैं उनकी तंत्रिका-रोग संबंधी जाँच (न्यूरोलॉजिकल चेकअप) करा रहा था तो उन्होंने अचानक मुझसे पूछा कि ‘क्या मैं डॉक्टर जे. को जानता था?’ मेरे हामी भरने पर वे बोले, ‘लुबियां का मैं मेरी उनसे दोस्ती हो गई थी। वहाँ उनकी मौत चालीस साल की आयु में मूत्राशय के कैन्सर से हुई। वे मेरे सबसे विश्वसनीय मित्र बने रहे।’ वे बहुत ही उच्च नैतिक मूल्यों के साथ जीए और वहाँ सबको दिलासा देते रहते थे। जेल में बिताए कई सालों के दौरान वे मेरे सबसे अच्छे और पक्के मित्रों में से एक थे।

यह डॉक्टर जे. की कहानी है, स्टेनहाफ का जनसंहारक! हम किसी मनुष्य के व्यवहार की भविष्यवाणी करने या उसके भविष्य का अनुमान लगाने का साहस कर भी कैसे हो सकते हैं? हाँ, हम एक मशीन की गतिविधियों का पूर्वानुमान लगा सकते हैं। अगर हम इससे भी आगे जाना चाहें तो मनुष्य के जहन (मन) का भी अनुमान लगा सकते हैं, लेकिन एक मनुष्य अपने जहन या अपने मन के दायरे से कहीं विस्तृत होता है।

हालाँकि आजादी को ही सब कुछ नहीं माना जा सकता। आजादी की कहानी में केवल आधा सच शामिल है। आजादी सारी कहानी का नकारात्मक पक्ष है, जिसका सकारात्मक पहलू है, ‘जिम्मेदारी की भावना’। दरअसल, जब आजादी को जिम्मेदारी के साथ नहीं निभाया जाता, तो उसके अनियंत्रित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसीलिए मैं सिफारिश करता हूँ कि जिस प्रकार पूर्वी तट पर स्टेच्यू ऑफ लिबर्टी बनाई गई है, उसी प्रकार पश्चिमी तट पर उसके पूरक के तौर पर स्टेच्यू ऑफ रिस्पॉन्सिबिलिटी (जिम्मेदारी की मूर्त) भी बनाई जानी चाहिए।

मनोरोग संबंधी सूत्रवाक्य

हम यह नहीं मान सकते कि मनुष्य को आजादी की सोच से पूरी तरह दूर किया जा सकता है। यहाँ तक कि मनोरोगियों व पागलों के मामले में भी कहीं न कहीं आजादी का अंश पाया जाता है। भले ही वह कितनी भी सीमित ही क्यों न हो। दरअसल, रोगी के व्यक्तित्व के आंतरिक अंश को तो पागलपन छू तक नहीं पाता।

भले ही कोई मनोरोगी इलाज न हो पाने की दशा में अपनी उपयोगिता क्यों न खो दे, लेकिन उसके भीतर एक मनुष्य होने की गरिमा व मर्यादा हमेशा बरकरार रहती है। मेरा मनोरोग-सिद्धान्त और विश्वास यही है। यदि मेरे पास यह न हो, तो मुझे अपने आपको मनोचिकित्सक तो नहीं समझना चाहिए। आखिर किसके लिए? केवल एक घायल मस्तिष्क रूपी बिगड़ी हुई मशीन के लिए, जिसमें सुधार नहीं किया जा सकता? अगर रोगी उससे कुछ अधिक नहीं है तो बेशक इच्छामृत्यु को तार्किक ठहराया जा सकता है।

मनोचिकित्सा का पुनर्मानवीकरण

दरअसल मनोचिकित्सक काफी लंबे अरसे से, लगभग आधी सदी तक, मनुष्य के मस्तिष्क को एक मशीन के रूप में ही देखते रहते हैं। नतीजन मानसिक रोगों के उपचार की पद्धति केवल एक तकनीक बनकर रह गई। लेकिन अब सब कुछ बदल रहा है। अब मनुष्य के मस्तिष्क को केवल एक मशीन या तंत्र भर नहीं समझा जाता। कुछ नए आयाम भी सामने आ रहे हैं और मनोचिकित्सा को मानवीय आधारों पर लागू किया जाने लगा है।

जो डॉक्टर अब भी अपनी भूमिका को एक तकनीशियन के रूप में ही स्वीकार करता है, वह यह भी स्वीकार करेगा कि वह अपने रोगियों को रोगग्रस्त मनुष्य के बजाय एक बिगड़ी हुई मशीन के रूप में ही देखता है।

एक मनुष्य को आप अन्य वस्तुओं के बीच मौजूद एक और वस्तु नहीं मान सकते; वस्तुएँ भले ही एक-दूसरे की नियति तय करती हों, लेकिन मनुष्य निश्चित रूप से अपनी नियति स्वयं ही निर्धारित करता है। वह अपने पर्यावरण व अपनी परिस्थितियों के बीच जो भी बनता है, स्वयं ही बनता है।

मिसाल के तौर पर, मनुष्यों की सजीव प्रयोगशाला। जैसे उन यातना शिविरों

में, हमने ऐसे साथी भी देखे, जो सुअरों की तरह बरताव करते थे और साथ ही ऐसे साथियों को भी देखा, जिनका बरताव किसी संत से कम नहीं था। मनुष्य के भीतर दोनों ही तरह की संभावनाएँ उपस्थित हैं: उनमें से कौन सी संभावना साकार होगी, यह उसकी अवस्थाओं या परिस्थितियों पर नहीं, बल्कि उसके द्वारा लिए गए निर्णय पर आधारित होता है।

हमारी पीढ़ी वास्तविकता को समझती है क्योंकि हमने मनुष्य को उसके वास्तविक रूप में जान लिया है। जो भी हो, मनुष्य ही वह जीव है, जिसने ऑश्विज के गैस चैंबरों की रचना की; हालाँकि मनुष्य ही वह प्राणी भी है, जो होठों पर ईश्वर का नाम या शेमा इज़राइल के शब्द लिए, उन गैस चैंबरों में दाखिल हुआ।

जीवन के अर्थ की तलाश में मनुष्य (डॉ. विक्टर ई फ्रैकल)

क्या है परम सत्य...लक्ष्य... ?

प्रचलित शिक्षा, कानून, राजनीति, विज्ञान, पॉजिटिव व पॉवर

थिंकिंग व स्पीकिंग से परे परम सत्य...लक्ष्य!

चाल : 1. क्या मिलिए...2. यमुना किनारे...

बिग बैंग से हुई विश्व सृष्टि...

असत्य से जब हुई विश्व उत्पत्ति...

आत्मा क्यों न बन सकता परमात्मा... ?

आत्मा में क्यों न हो अनन्त शक्ति...(1)...

क्वाण्टम में यदि है इतनी शक्ति...

एक समय में अनेक स्थान में स्थिति...

आत्मा में क्यों न हो चौदह राजू गति (असंख्य कि.मी.)!?

फोटोन (प्रकाश) की जब एक सेकण्ड में तीन लाख कि.मी. गति...(2)...

सूक्ष्मदर्शी जब सूक्ष्म तत्त्व (जीव) को देखता...

दूरदर्शी जब खरबों कि.मी. देखता...

परमात्मा क्यों नहीं सर्वज्ञ होंयेंगे...!?

त्रिकाल के सभी तत्त्वों को न जानेंगे...!...(3)

यदि जड़ यन्त्रों से ज्ञात होती सर्दी-गर्मी...

रोग-वातावरण से ले निकट व दूरी...
 चाप-ताप-हल्का से ले भारी आदि...
 शुद्धात्मा क्यों न जान पायेंगे दुनिया सारी...!?(4)
 पशु-पक्षी को भी अनुभव होता भविष्य...
 भूकम्प-वर्षा आदि घटना प्राकृतिक...
 परम चेतनावान् क्यों न जानेंगे भविष्य...!?...
 अन्तःप्रज्ञ, अवधि, मनःपर्यय, सर्वज्ञ...(5)...
 तन से इन्द्रिय व मस्तिष्क में अधिक शक्ति...
 जीनियस करते दश प्रतिशत दिमाग प्रयोग...
 असंख्य आत्म प्रदेश जिनके शुद्ध सक्रिय/(उपयोग)
 वे क्यों न होंगे अनन्त जीनियस...!?...(6)...
 कम्प्यूटर, रोबोट से ले कृत्रिम दिमाग...
 करते जटिल गणना व सटीक काम...
 सुपर इण्टेलजेंस वाला सुपर चेतना...
 क्यों न कर पाएगा विश्व की गणना...!?...(7)
 विज्ञान को अभी न ज्ञात परम सत्य...
 चेतन-अचेतन मूर्तिक से ले अमूर्तिक...
 अणु से ले ब्रह्माण्ड व स्व-आत्म तत्त्व...
 अतएव विज्ञान नहीं पूर्ण सत्य मापक...(8)
 तथाहि प्रचलित शिक्षा-कानून-धर्म...
 रूढ़ि-परम्परा-राजनीति-सम्बिधान...
 पॉजिटिव थिंकर मोटिवेशनल स्पीकर...
 इनसे अनन्त सुपर है परम स्पीरिच्चल...(9)
 यह ही शुद्ध-बुद्ध परमात्म अवस्था...
 यह ही जीवों की परम शुद्धावस्था...
 जीवों के अस्तित्व का परम लक्ष्य...
 'सूरी कनक' इस लक्ष्य हेतु सदा प्रयत्न...(10)....

नन्दौड़, दि. 5.12.2019, रात्रि 8.01

आध्यात्मिक सुपर पंचविध व्यक्तित्व (पंचपरमेष्ठी)

सुखबोधायां तत्त्वार्थवृत्तौ

देशव्रत धारण करता है उसके अन्तर्मुहूर्त तक असंख्यात गुण श्रेणि निर्जरा होगी। प्रथमोपशम सम्यक्त्वी की जो निर्जरा हुई है उससे असंख्यात गुणी अधिक निर्जरा इस देश विरत की होती है। काल अन्तर्मुहूर्त होते हुए भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त से यह छोटा वाला अन्तर्मुहूर्त है। यह काल का हीनपना अन्तिम स्थान तक समझना तथा अधिक अधिक निर्जरा का क्रम समझना। भाव यह है कि निर्जरा के पूर्वोक्त दशों स्थानों में काल तो अल्प अल्प होता गया है और निर्जरा अधिक अधिक होती गयी है। असंख्यात गुण श्रेणि निर्जरा आदि विषयों का लब्धिसार ग्रन्थ में बहुत विशद वर्णन पाया जाता है। जिज्ञासुओं को अवश्य अवलोकनीय है। अस्तु!

शंका-इन दश स्थान वाले भव्यात्माओं के सम्यग्दर्शन के रहने पर भी असंख्यात गुणी निर्जरा की अपेक्षा परस्पर में सादृश नहीं है तो फिर श्रावक के समान गुण भेद वाले ये विरतादिक निर्ग्रन्थपने के योग्य नहीं होते हैं?

समाधान-ऐसा नहीं है, क्योंकि इन सबमें गुणों की अपेक्षा परस्पर में विशेषता होने पर भी नैगमादि नयों की अपेक्षा सभी निर्ग्रन्थ होते हैं, ऐसा अगले सूत्र में कहते हैं:-

पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्गन्थाः॥४६॥ (तत्त्वार्थ वृत्ति)

सूत्रार्थ:पुलाक, वकुल, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये सभी मुनिराज निर्ग्रन्थ कहलाते हैं।

जिनके उत्तर गुणों में भावना नहीं है, व्रतों में भी कहीं पर कदाचित् किसी प्रकार से पूर्णता नहीं होती इस तरह के मुनिराज अविशुद्ध तण्डुल-छिलका युक्त चावल के समान होने से पुलाक नाम से कहे जाते हैं। जो निर्ग्रन्थता के प्रति उपस्थित है अखण्डित व्रतयुक्त हैं, शरीर और उपकरणों को सजाने में लगे रहते हैं, परिवार युक्त हैं, चितकबरे आचरण युक्त उन मुनिराज को बकुश कहते हैं। यहाँ पर बकुश शब्द का अर्थ शबल है। नाना रंग युक्त को शबल या बकुश कहते हैं। कुशील मुनि दो प्रकार के हैं-प्रतिसेवनाकुशील और कषायकुशील। उनमें जो परिग्रह से पृथक हैं, मूल और उत्तर गुणों से परिपूर्ण हैं, जिनके कदाचित् उत्तर गुण में विरोध आता है वे

प्रतिसेवना कुशील कहलाते हैं। अन्य कषायों का उदय जिनके नहीं आता जो मात्र संज्वलन युक्त हैं वे कषाय कुशील मुनि हैं। जिस प्रकार जल में रेखा खींचने पर वह अभिव्यक्त नहीं रहती है उसी प्रकार जिनका कर्मोदय व्यक्त नहीं है जो मुहूर्त के अनन्तर केवलज्ञान को प्रगट करने वाले हैं वे निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं। जिनके घातिकर्म चतुष्टय नष्ट हो चुके हैं, ऐसे केवली जिनेन्द्र स्नातक कहलाते हैं। इनके दो भेद हैं-सयोगी जिन और अयोगी जिन। ये पाँचों ही निर्ग्रन्थ चारित्र परिणामों के प्रकर्ष और अप्रकर्षरूप भेद के होने पर भी नैगम संग्रह आदि नयों की अपेक्षा सभी निर्ग्रन्थ ही कहे जाते हैं।

आगे उन निर्ग्रन्थों की विशेष प्रतिपत्ति के लिये सूत्र कहते हैं:-

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिङ्गलेश्याउपपादस्थानविकल्पतः साध्याः॥(47)

सूत्रार्थ : संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिङ्ग, लेश्या, उपपाद और स्थान की अपेक्षा उक्त मुनिराजों का व्याख्यान करना चाहिए।

ये पुलाक आदि मुनि महाराज संयम आदि अनुयोगों से साध्यवर्णन करने योग्य है। आगे इसी को बताते हैं-पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील इनके दो संयम होते हैं, सामायिक और छेदोपस्थापना। कषाय कुशील पूर्व के सामायिक छेदोपस्थापना इन दो संयमों से युक्त तथा परिहार विशुद्धि एवं सूक्ष्म साम्पराय संयम इन दो संयमों से युक्त होते हैं। निर्ग्रन्थ और स्नातकों के एक यथाख्यात संयम होता है। श्रुत की अपेक्षा-पुलाक, बकुश और प्रतिसेवना कुशील उत्कर्ष से अभिन्न दश पूर्वधर होते हैं। कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ उत्कर्ष से चतुर्दश पूर्वधर होते हैं। जघन्य से पुलाक का श्रुतज्ञान आचार वस्तु है, और बकुश कुशील तथा निर्ग्रन्थों का श्रुत अष्ट प्रवचन मातृका है। स्नातक श्रुतज्ञान रहित हैं क्योंकि वे तो केवलज्ञानी हैं। प्रतिसेवना की अपेक्षा कथन करते हैं-पुलाक मुनि के पांच मूलगुण तथा रात्रि भोजन त्याग व्रत में परके द्वारा हटात् कोई एक व्रत की विराधना होती है-प्रतिसेवना होती है। बकुश दो प्रकार के हैं-शरीर बकुश और उपकरण बकुश। उनमें उपकरण बकुश के बहुत से उपकरण विशेष की कांक्षा होती है। शरीर संस्कार का सेवी शरीर बकुश कहा जाता है। प्रतिसेवना कुशील मूलगुणों की विराधना नहीं करता किन्तु उत्तर गुणों में कुछ विराधना करता है, यही इसकी प्रतिसेवना है। कषाय कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातकों के प्रतिसेवना नहीं होती। दोष करने को प्रतिसेवना कहते हैं। तीर्थ की अपेक्षा कथन करते हैं-सभी तीर्थकरों के

तीर्थ में ये सब प्रकार के मुनिराज होते हैं। लिंग की अपेक्षा प्रतिपादन करते हैं-लिंग दो प्रकार का है-भावलिंग और द्रव्यलिंग। भाव लिंग की अपेक्षा पांचों मुनि महाराज भावलिंगी होते हैं, क्योंकि सभी के सम्यक्त्व आदि परिणाम विद्यमान रहते हैं। द्रव्यलिंग की अपेक्षा भजनीय है। वह इस प्रकार है कि किसी किसी मुनि के कभी कहीं पर किसी कारणवश (उपसर्गवश) किसी प्रकार से प्रावरण सम्भव है। लेश्या की अपेक्षा वर्णन करते हैं-पुलाक के उत्तरवर्ती तीन शुभ लेश्या होती हैं। बकुश और प्रतिसेवना कुशील के कहीं कदाचित् किसी कारण से किसी प्रकार छहों लेश्या सम्भव हैं। उनके कदाचित् अपने तपश्चरण आदि के मदादि के वश से अशुभ लेश्या उत्पन्न हो जाती है। किन्तु अशुभ लेश्या के समय उनके उपचार से ही मुनिपना रहता है। उपचार का भी कारण यह है कि उनके द्रव्यलिंग मौजूद है। कषाय कुशीलों में जो परिहार विशुद्धि संयम वाला कषाय कुशील है उनके उत्तरवर्ती चार लेश्या (कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल) होती हैं। सूक्ष्मसाम्पराय संयम वाले कषाय कुशील तथा निर्ग्रन्थ एवं स्नातक के एक शुक्ल लेश्या ही होती है। अयोगी जिन लेश्या रहित अलेश्या हैं। उपपाद की अपेक्षा व्याख्यान करते हैं-पुलाक मुनि का उपपाद उत्कृष्टता से सहस्त्रार स्वर्ग में उत्कृष्ट स्थित वाले देवों में होता है। बकुश, प्रतिसेवना कुशीलों का उपपाद बावीस सागर स्थिति वाले आरण अच्युत स्वर्गों के देवों में होता है। कषाय कुशील और निर्ग्रन्थ का उपपाद तैंतीस सागर स्थितिवाले सर्वार्थसिद्धि के देवों में होता है। इन सभी का जघन्य से उपपाद सौधर्म कल्प में दो सागर स्थिति वाले देवों में होता है। स्नातक तो निर्वाण ही जाते हैं। स्थान की अपेक्षा वर्णन करते हैं-कषाय के निमित्त से संयम के स्थान असंख्यात होते हैं। उनमें सर्व जघन्य लब्धि स्थान पुलक और कषाय कुशील के होते हैं। वे दोनों मुनि एक साथ असंख्यात स्थान तक जाते हैं। उसके आगे पुलाक रुक जाता है अर्थात् उनके आगे के संयम लब्धिस्थान पुलाक के नहीं होते। कषाय कुशील उक्त स्थानों से आगे असंख्यात इष्ट स्थानों तक अकेला चला जाता है। उनके आगे कषाय कुशील, प्रति-सेवना कुशील और बकुश एक साथ इष्ट स्थानों में चले जाते हैं। वहां बकुश तो रुक जाता है और आगे असंख्यात स्थानों तक जाकर प्रतिसेवना कुशील रुक जाता है-छूट जाता है या बिछुड़ जाता है। उनसे भी आगे

असंख्यात स्थान तक जाकर कषाय कुशील व्युच्छिन्न होता है। उनसे आगे तो अकषाय स्थान हैं उनको निर्ग्रन्थ प्राप्त करते हैं। निर्ग्रन्थ भी असंख्यात स्थान जाकर व्युच्छिन्न होता है। उसके आगे एक स्थान जाकर स्नातक निर्वाण को प्राप्त करते हैं, इनकी संयमलब्धि अनन्तगुणी होती है।

पंचाचारपरा दक्षाः षट्त्रिंशद्गुणभूषिताः

विश्वोपकारचातुर्या आचार्याः सर्ववदिताः॥ (947) मू.प्रदीप

अर्थ: जो पाँचों आचारों के पालन करने में अत्यन्त चतुर हैं, जो छत्तीस गुणों से सुशोभित हैं, जो समस्त जीवों का उपकार करने में चतुर हैं और सब मुनि जिनको नमस्कार करते हैं, उनको आचार्य कहते हैं।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप-

रत्नत्रयमहाभूषा अंगपूर्वाब्धिपारगाः।

उपाध्याया महान्तो ये श्रुतपाठनतत्पराः॥ (948)

अर्थ: जो रत्नत्रय से अत्यन्त सुशोभित है, जो अंग पूर्वरूपी महासागर के पारगामी हैं, और जो शास्त्रों के पठन-पाठन में सदा तत्पर रहते हैं ऐसे महा साधुओं को उपाध्याय कहते हैं।

प्रवर्तक तथा स्थविर का लक्षण-

प्रवर्तकाः स्वसंघानां योगक्षेमविधायिनः।

मर्यादादेशका ये च स्थविराश्चिरदीक्षिताः॥ (949)

अर्थ: जो अपने संघ में योग क्षेम करनेवाले हैं उनको प्रवर्तक कहते हैं तथा जो एक देश मर्यादा को पालन करने बतलानेवाले चिरकाल के दीक्षित हैं उनको स्थविर कहते हैं।

ये चारों प्रकार के मुनि जगत्त्वद्यं होते हैं-

चत्वारस्ते जगद्व्यं योग्या भवन्ति भूतले।

विनयस्य मुनीनां च सर्वेषां कृतिकर्मणाम्॥ (950)

अर्थ: ये जगत्त्वद्यं चारों प्रकार के मुनि इस संसार में अन्य मुनियों की विनय के और समस्त मुनियों के कृतिकर्म के योग्य होते हैं।

कौन वंद्य नहीं है (पाप श्रमण)

शैथल्याचारणा मंदसंवेगा द्रव्यलिङ्गिनः।

द्विधासंगार्त्तसंसक्ताः शठाः पंडितमानिनः॥ (951)

नरेन्द्रमातृपित्राद्यै दीक्षाविद्यादिदायिनः।

गुरुवश्चक्रियाहीनाः सर्वे पाषंडिलिङ्गिनः॥ (952)

रागिणो विरताविश्वे कुदेवा भववर्तिनः।

एते सतामवंद्या यतोऽयोग्याः कृतिकर्मणाम्॥ (953)

अर्थः जिनका आचरण अत्यन्त शिथिल है, जिनका संवेग मंद है, जो द्रव्य लिंगी है, बाह्यभ्यंतर परिग्रह धारण करने के कारण जो आर्त्तध्यान में लीन रहते हैं, जो मूर्ख हैं, अपने को पण्डित मानते हैं, जो राजा वा माता-पिता के कहने से दीक्षा व विद्या देते हैं, जो गुरु क्रियाहीन हैं, जो जो पांखड़ी हैं, रागी हैं, व्रतहीन हैं, जो जो संसार में परिभ्रमण करनेवाले कुदेव हैं, वे सब सज्जनों को वंदना करने के अयोग्य हैं तथा कृतिकर्म करने के अयोग्य हैं। उन्हें न वंदना करनी चाहिये और न उनके लिये कृतिकर्म करना चाहिये।

पार्श्वस्थ के भेद तथा उनकी अवंद्यता-

पार्श्वस्थाश्च कुशीला हि संसक्ता वेषधारिणः।

तथापगतसंज्ञाश्च मृगचारित्रनामकाः॥ (954)

एते पंचैवपार्श्वस्था न वंद्या संयतैः क्वचित्।

अमीषां लक्षणं किंचिन्निद्याचारं ब्रुवेऽत्र च॥ (955)

अर्थः जो मुनि पार्श्वस्थ है, कुशील हैं, वेषधारी संसक्त हैं, अपगत संज्ञक हैं और मृगचारित्री हैं वे सब पार्श्वस्थ कहलाते हैं। मुनियों को ऐसे पार्श्वस्थों की वंदना कभी नहीं करनी चाहिये। आगे मैं संक्षेप से इन पार्श्वस्थों का थोड़ा सा लक्षण और निंद्य आचरण कहता हूँ।

पार्श्वस्थ मुनियों का लक्षण-

वसनिप्रतिबद्धा ये बहुमोहाः कुमार्गगाः।

संगोपकरणादीनांकार काः शुद्धिदूरगाः॥ (956)

दूरस्थाः संयतेभ्यो दुष्टाऽसंयतादि सेविनः।

अजिताक्षकषायाश्च द्रव्यलिंगधरा भुवि।। (957)

गुणेभ्योदृग्विदादिभ्यः पार्श्वे तिष्ठन्तियोगिनाम्।

ते पार्श्वस्था जिनैः प्रोक्ताः स्तुतिनुत्यादि वर्जिताः।। (958)

अर्थः—जो सदा वसति का में निवास करते हैं, जो अत्यन्त मोही हैं कुमार्गगामी हैं, परिग्रह और उपकरण आदि को उत्पन्न करनेवाले हैं, जो शुद्धता से दूर रहते हैं, संयमियों से दूर रहते हैं, दुष्ट असंयमियों की सेवा करते हैं, जो न तो इंद्रियों को जीतते हैं और न कषायों को जीतते हैं जो संसार में केवल द्रव्य लिंग को धारण करते हैं, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान आदि गुणों के लिये मुनियों के पास रहते हैं उनको भगवान् जिनेन्द्रदेव पार्श्वस्थ मुनि कहते हैं ऐसे मुनि स्तुति वा नमस्कार आदि सबसे रहित होते हैं।

कुशील मुनि का स्वरूप—

शीलं च कुत्सितं येषां निंद्यमाचरणं सताम्।

स्वभावो वा कुशीलास्ते क्रोधादिग्रस्त क्रोधादिग्रस्तमानसाः।।

अर्थ—जिनका शील भी कुत्सित है, जिनके आचरण भी निंद्य हैं, जिनका स्वभाव भी निंद्य है और जिनका मन क्रोधादिक से भरा हुआ है उनको कुशील कहते हैं।

व्रतशीलगुणेर्हीना अयशः करणे भुवि।

कुशलाः साधुसंगानां कुशीला उदिताः खलाः।। (960)

अर्थ—ये कुशील मुनि व्रत शील और गुणों से रहित होते हैं, साधु और संघ का अपयश करने में जो संसार भर में कुशल होते हैं या जो दुष्ट होते हैं ऐसे मुनियों को कुशील कहते हैं।

संसक्त मुनियों का स्वरूप—

असक्ता दुर्धियोनिंद्या असंयतगुणेषु ये।

सदाहारादिगृह्य्या च वैद्यज्योतिषकारिणः।। (961)

राजादिसेवनो मूर्खा मंत्रतंत्रादितत्पराः।

संसक्तास्ते बुधैः प्रोक्ता धृतवेषाश्चलंपटाः।। (962)

अर्थ—जो मुनि चारित्र पालन करने में असमर्थ है विपरीत बुद्धि को धारण

करनेवाले हैं, असंयमियों में भी निंद्य हैं, जो आहारादिक लालसा से ही, वैद्यक वा ज्योतिष का व्यापार करते हैं, राजादिकों की जो सेवा करते हैं, जो मूर्ख हैं, मंत्र तंत्र करने में तत्पर हैं, और जो लंपटी हैं ऐसे भेष धारण करनेवाले मुनियों को बुद्धिमान लोग संसक्त मुनि कहते हैं।

अपगत संज्ञक मुनि कौन होते है?

विनष्टाः प्रगताः संज्ञाः सम्यग्ज्ञानदिजाः पराः।

येषां ते लिंगनोत्रापगतसंज्ञा भवन्तिभो।।

अर्थ-जिनकी सम्यग्ज्ञानादिक संज्ञा सब नष्ट हो गई है चली गई है ऐसे भेषाधारी मुनियों को अपगत संज्ञक कहते हैं।

मृगचारित्र मुनि कौन है?

जिनवाक्यमजानाना भ्रष्टाः चारित्रवर्जिताः।

सांसारिकसुखासक्ताः करणालसमानसाः।।

मृगस्येव चारित्रं चाचरणं स्वेच्छया भुवि।

येषां ते मृगचारित्रा भवेयुः पापकारिणः।। (965)

अर्थ-जो भगवान् जिनेन्द्रदेव के वाक्यों को समझते ही नहीं जो भ्रष्ट हैं, चारित्र से रहित हैं, संसार के विषयजन्य सुखों में लीन रहते हैं, जिनका मन चारित्र के पालन करने में आलसी रहता है जो इस संसार में हिरणों के समान अपनी इच्छानुसार चारित्र वा आचरणों को पालन करते हैं उन पापियों को मृगचारित्र नाम के मुनि कहते हैं।

उक्त पांचों प्रकार के मुनि अवद्य हैं-

स्वच्छंदचारिणो जैनमार्गदूषणदायिनः।

त्यक्त्वाचार्योपदेशांश्चैकाकिनो धृतिवर्जिताः।। (966)

दर्शनज्ञान चारित्र तपेभ्यो विनयाच्छ्रुतात्।

दूरीभूताश्च पार्श्वस्था एते पंचैव दुर्भंगाः।। (967)

छिद्रादिप्रेक्षिणो ज्ञेया गुणियोगिसतां सदा।

अवंधाः सर्वथानिन्दा अयोग्या कृतिकर्मणाम्।। (968)

अर्थ-ये ऊपर लिखे पाँचों प्रकार के मुनि स्वच्छन्दचारी होते हैं, जैन धर्म में

दोष लगाने वाले होते हैं, आचार्यों के उपदेश को छोड़कर एकाकी रहते हैं, धैर्य से सदा रहित होते हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र विनय और श्रुतज्ञान से सर्वथा दूर रहते हैं, भाग्यहीन होते हैं तथा गुणी मुनि और सज्जनों के दोष देखने में ही निपुण होते हैं छिद्रान्वेषी होते हैं। इसीलिये ये अवंदनीय होते हैं सर्वथा निंद्य होते हैं और कृतिकर्म के अयोग्य होते हैं।

किसी भी लोभ से उक्त मुनियों की वंदना न करनी चाहिए-

एषां पूर्वोदितानां च जातु कार्या न वंदना।

विनयाद्या न शास्त्रादिलाभभीत्यादिभिर्बुधैः॥

अर्थ : बुद्धिमान् पुरुषों को किसी शास्त्र आदि के लोभ से वा किसी भय से भी ऊपर कहे हुए पार्श्वस्थ आदि मुनियों की वंदना कभी नहीं करना चाहिये और न इनकी विनय करनी चाहिये।

उक्त मुनियों को वंदना करने से रत्नत्रय की हानि-

अमीषांभ्रष्टवृत्तानां ये कुर्वन्ति स्वकारणात्।

विनयादि नुतिस्तेषांक्र बोधिर्निश्चयः कथम्॥

अर्थ : जो पुरुष अपने किसी भी प्रयोजन से भ्रष्ट चारित्र को धारण करने वाले इन पार्श्वस्थों की विनय करता है वा इनको वंदना करता है उसके रत्नत्रय और श्रद्धा वा निश्चय कभी नहीं हो सकता अर्थात् कभी रत्नत्रय नहीं हो सकता।

सज्जनों की हानि-

यतः पलायते नूनं सम्यक्त्वं सद्गुणैः समम्।

ढौकन्ते दोषामिथ्यात्वा नीचसंगनुतेः सताम्॥

अर्थ : इसका भी कारण यह है कि नीच लोगों के संसर्ग से वा उनको नमस्कार करने से सज्जनों का समस्त श्रेष्ठ गुणों के साथ सम्यग्दर्शन दूर भाग जाता है और मिथ्यात्व आदि दोष सब उन सज्जनों में आ मिलते हैं।

व्रतों को जड़ मूल से गिराने वाला है-

मत्वेति जातु कार्या न तेषां संगोयकीर्तिकृत्।

व्रतमूलहरो निंद्यः सद्भिः शास्त्रादि लोभतः।

अर्थ : यही समझकर सज्जन पुरुषों को किसी शास्त्र आदि के लोभ से भी इन भ्रष्ट मुनियों का संसर्ग नहीं रखना चाहिये क्योंकि इनका संसर्ग अपकीर्ति करने वाला है, व्रतों को जड़ मूल से हरण करने वाला है और निंदनीय है।

पुष्पमालार्हतो यद्वत्संपकट्दिव्यतां व्रजेत्।

अस्पर्शतां च लोकेहि मृतकस्य न संशयः॥(973)

तद्वन्महात्मनां संग्तापूज्यतां याति संयताः।

नीचात्मनामिहामुत्र निंद्यतां च पदेपदे॥(974)

अर्थ : देखो जिस प्रकार भगवान् अरहंत देव के संसर्ग से पुष्पमाला भी वंदनीय गिनी जाती है और मृत के (मुर्दा के) संसर्ग से वही पुष्पमाला अस्पृश्य छूने अयोग्य मानी जाती है उसी प्रकार संयमी लोग भी महात्माओं के संसर्ग से पूज्यता को प्राप्त होते हैं और नीचों के संसर्ग से इस लोक और परलोक में पद-पद पर निंदनीय हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है।

संसर्ग के कारण गुण और दोष-

यथापद्मादियोगेन सुगंधं शीतलं जलम्।

भाजनानलसंपर्कात्संतप्तं जायतेतराम्॥(975)

तथात्रोत्तमसंगेनोत्तमोंगी तद्गुणैः समम्।

भवेन्नीचप्रसंगेन नीचश्चतद्गुणैः सह॥(976)

अर्थ : देखो कमल आदि के संयोग से जल सुगंधित और शीतल हो जाता है तथा बर्तन और अग्नि के संसर्ग से वही जल अत्यन्त गर्म हो जाता है। उसी प्रकार यह पुरुष भी उत्तम पुरुषों के संसर्ग से उनके उत्तम गुणों के साथ-साथ उत्तम बन जाता है और नीच पुरुषों के संसर्ग से उनके नीच गुणों के साथ-साथ नीच हो जाता है।

साहूकार भी खोटी संगति से चोर कहलाता है -

अचौरश्चौरसंसर्गाद्यथा चौरात्र कथ्यते।

साधुश्चासाधुसंसर्गादसाधुर्नान्यथा तथा॥(977)

अर्थ : जिस प्रकार कोई साहूकार भी चोर के संसर्ग से चोर कहलाता है। उसी प्रकार साधु पुरुष भी असाधुओं के संसर्ग से असाधु ही कहलाता है इसमें किसी प्रकार का सदेह नहीं है।

निर्गुणी भी गुणी पुरुष की संगति से गुणवान् बन जाता है-

असाधुः प्रोच्यते साधुर्यथात्र साधुसेवया।

निर्गुणोपि तथा लोकेगुणी च गुणिसेवया।।(978)

अर्थ : इस संसार में जिस प्रकार असाधु पुरुष भी साधु की सेवा करने से साधु कहलाते हैं उसी प्रकार निर्गुणी पुरुष भी गुणी पुरुषों की सेवा करने से इस लोक में गुणी ही कहलाते हैं।

किमत्र बहूनोक्तेन गुणांश्चदोषांश्च देहिनाम्।

संसर्गजनितान् मन्ये सर्वान् बुद्ध्या च चान्यथा।

अर्थ : बहुत कहने से क्या थोड़े से में इतना समझ लेना चाहिये कि जीवों के जितने गुण या दोष हैं वे सब संसर्गजन्य ही माने जाते हैं। न तो वे गुण दोष बुद्धि से उत्पन्न होते हैं और न किसी अन्य प्रकार से उत्पन्न होते हैं।

नीच पुरुषों की संगति कभी नहीं करनी चाहिये-

विज्ञायेत्युत्तमानां च संगंमुक्त्वा गुणार्थिभिः।

क्वचित्संगो न कर्तव्यो नीचानां कार्यकोटिषु।।

अर्थ : यही समझकर गुण चाहने वाले पुरुषों को करोड़ों कार्य होने पर भी उत्तम पुरुषों के संसर्ग को छोड़कर कभी भी नीच पुरुषों का संसर्ग नहीं करना चाहिये।

आदर्श मुनिराज की भक्ति करना चाहिये-

महाव्रतसमित्याद्यैः कलितान् धर्मभूषितान्।

बाह्यन्तर्ग्रथनिमुक्तान् युक्तान् सद्गुणसम्पदा।।

मुमुक्षून् श्रमणानित्यं ध्यानाध्ययनतत्परान्।

वंदस्व परया भक्त्या त्वं मेधाविन् शिवाप्तये।।

अर्थ : इसलिए हे बुद्धिमान्! जो मुनि महाव्रत और समिति आदि से सुशोभित हैं, धर्म से विभूषित हैं, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहों से रहित हैं, श्रेष्ठ गुणरूपी संपदा से

सुशोभित हैं जो ध्यान और अध्ययन करने में सदा तत्पर रहते हैं और मोक्ष की इच्छा करने वाले हैं ऐसे मुनियों की मोक्ष प्राप्त करने के लिए परम भक्ति पूर्वक वंदना कर।

आत्मध्यान में लीन मुनि ही संसार में वंदनीय है

सम्यग्दृग्ज्ञानचारित्रतपोविनय भूषणैः।

भूषिता निर्मानित्यंसर्वत्रांगादिवस्तुषु॥(983)

सतां गुणधराणां च ये दक्षगुणवादिनः।

आत्मध्यानरतास्तेत्र वंदनीया न चापरे॥(984)

अर्थ : जो मुनि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तपोविनय आदि आभूषणों से सुशोभित हैं, जो अपने शरीर आदि पदार्थों में भी मोह रहित हैं, जो गुणों को धारण करने वाले सज्जनों के गुण वर्णन करने में निपुण हैं और जो आत्मध्यान में लीन हैं ऐसे मुनि ही इस संसार में वंदनीय हैं अन्य नहीं।

**ध्यान अध्ययन से रहित मुनि को नमस्कारादि नहीं करना चाहिए-
केनचिद्धेतुना व्याकुलचित्ता मुनयोप्यहो।**

प्रमत्ता निद्रिताः सुप्ता विकथादिरताशयाः॥(985)

अपरिग्रह महाव्रत का स्वरूप- (अकिंचन्य महाव्रत)

त्यजन्ते निखिला यत्र, बाह्यान्तः स्थाः परिग्रहाः।

जीवाबद्धनिबद्धाश्चसमंतान् मूर्च्छया बुधैः॥

कृत-कारित-संकल्पैर्मनोवाक्कायकर्मभिः।

तत्प्रणीतं जिनैः पूज्य, माकिंचन्यमहाव्रतम्॥(231)

अर्थ : जहाँ पर बुद्धिमान् लोग, शरीर, कषायादि संसारी जीवों के साथ, रहने वाले और वस्त्रालंकार आदि जीव के साथ न रहने वाले, समस्त परिग्रहों का त्याग कर देते हैं तथा मन-वचन-काय और कृत-कारित अनुमोदना से उन परिग्रहों में होने वाली मूर्च्छा व ममत्व का भी त्याग कर देते हैं उसको भगवान् जिनेन्द्रदेव ने पूज्य 'आकिंचन्य' महाव्रत कहा है।

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं पशुसंचयम्।

आसनं शयनं वस्त्रं, भांडं बाह्यः परिग्रहाः॥(232)

दशामी सर्वथा त्याज्याः, पृथग्भूतानिजात्मनः।

जीवाबद्धास्त्रिशुध्यात्र, यतिभिः सहमर्च्छया॥ (233)

अर्थ : (1) खेत (2) घर (3) धन (4) धान्य (5) दास (6) पशु (7) आसन (8) शयन (9) वस्त्र और (10) बर्तन ये दस प्रकार के बाह्य परिग्रह कहलाते हैं। परिग्रह 'जीवाबद्ध' या जीव से भिन्न कहलाते हैं क्योंकि ये सब आत्मा से भिन्न हैं। मुनियों को इनमें रहने वाली मूर्च्छा के साथ-साथ मन-वचन-काय की शुद्धता पूर्वक इन सबका त्याग कर देना चाहिए।

मिथ्यात्वं च त्रयोवेदा, रागा हास्यादयोऽत्रषट्।

चत्वारोऽपि कषया हि, चतुर्दश परिग्रहाः॥ (234)

अभ्यंतरा इमे जीव, निबद्धा दुस्त्यजा बुधैः।

विश्वदोषाकरा हेयाः, सर्वथा जीवतन्मयाः॥(235)

अर्थ : (1) मिथ्यात्व (2) स्त्रीवेद (3) पुर्वेद (4) नपुसंकवेद (5) राग (6) हास्य (7) अरति (8) शोक (9) भय (10) जुगुप्सा (11) क्रोध (12) मान (13) माया (14) लोभ ये चौदह अंतरंग परिग्रह कहलाते हैं। ये 14 परिग्रह 'जीव-निबद्ध' हैं अर्थात् जीव के साथ लगे हुए हैं और इसीलिए कठिनता से त्याग किये जाते हैं।

ये जीव से तन्मय होकर रहते हैं और समस्त दोषों को उत्पन्न करने वाले हैं। इसलिए बुद्धिमानों को इनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

चेतनास्तेऽथवा दासी, दासंगोऽश्वादयो भुवि।

मणिमुक्तासुवर्णाशुक, गेहाद्या अचेतना॥(236)

अर्थ : अथवा दासी, दास, गाय, घोड़ा आदि इस संसार में 'चेतन परिग्रह' कहलाते हैं तथा मोती, मणि, सुवर्ण, वस्त्र, घर आदि 'अचेतन परिग्रह' कहलाते हैं।

चेतनाचेतना सर्व, बाह्यासंगाः अघार्णवाः।

ज्ञानंसयम शौचोपकरणेन बिना बुधैः॥(237)

न ग्राह्यश्च स्वयं श्रामण्यायोग्या, हि परस्वभोः।

न दातव्या न कार्योऽनुमोदस्तद्ग्रहणे परैः॥ (238)

अर्थ : चेतन, अचेतन, बाह्य-आभ्यन्तर सब परिग्रह पापों के समुद्र हैं और मुनिधर्म के अयोग्य हैं; इसलिए ज्ञान, संयम और शौच के उपकरणों को छोड़कर बुद्धिमानों को बाकी के सब परिग्रहों का त्याग कर देना चाहिये; न तो उन्हें स्वयं ग्रहण करना चाहिये; न दूसरों को देना चाहिये और अन्य कोई ग्रहण करता हो तो उसकी अनुमोदना भी नहीं करनी चाहिये।

मूर्छा तेषु न कर्त्तव्या, खनिः सर्वैः नसां बुधैः।

यतो मूर्च्छैव सिद्धांते, संगः प्रोक्तो गणाधिपैः॥ (239)

अर्थ : बुद्धिमानों को इन परिग्रहों में कभी ममत्व भी नहीं रखना चाहिये; क्योंकि इनमें ममत्व रखना भी समस्त पापों को उत्पन्न करने वाला है; इसका भी कारण यह है कि भगवान् गणधर देव ने सिद्धान्त शास्त्रों में मूर्छा या ममत्व को ही 'परिग्रह' बतलाया है।

असंयत जनच्छात्रो, वासुश्रूषादि हेतवे।

असंयमकरः स्वांते, रक्षणीयो न संयतै॥(240)

अर्थ : मुनियों को अपनी सेवा, सुश्रूषा करने के लिए भी, असंयम को बढ़ाने वाला असंयमी मनुष्य या विद्यार्थी अपने समीप नहीं रखना चाहिये।

वसत्यादौ विधेयं न, स्वामित्वं संगकारणम्।

पूजा द्रव्यांगचलेषु, चान्यत्र परस्तुनि॥(241)

अर्थ : इसी प्रकार 'वसतिका' आदि में भी अपना स्वामित्व नहीं रखना चाहिये; क्योंकि उसमें 'स्वामित्व' रखना भी परिग्रह का कारण है तथा पूजा द्रव्य के अंगभूत वस्त्र आदि पर वस्तुओं में भी अपना 'स्वामित्व' कभी नहीं रखना चाहिये।

बहुनोक्तेन किं साध्य, मंत्रादेयो न योगिभिः।

बालाग्रः कोटिमात्रः श्रामण्यायोग्यः स जातुचित्॥ (242)

अर्थ : बहुत कहने से क्या लाभ है? इतने में ही समझ लेना चाहिये कि मुनियों को, मुनिधर्म के अयोग्य पदार्थ का 'एक बाल के अग्रभाग का करोडवां भाग' भी कभी ग्रहण नहीं करना चाहिये।

परिग्रहार्जनेनात्र, पराचिंता च जायते।

तस्याप्ते परमोरागो, रौद्रध्यानं च रक्षणे॥(243)

तत्राशे शोककोपाद्याः, सव प्रादुर्भवन्ति भोः।

तैश्च पापानि घोराणि, पापैर्दुर्गतयोऽखिलाः॥(244)

तासु दुःखनि तीव्राणि, लभन्ते संगिनः। शठाः।

इतिमत्वा बुधैर्हेय, संगः सर्वेऽपि सर्वथा॥(245)

अर्थ : इस संसार में परिग्रह को इकट्ठा करने में बड़ी चिंता करनी पड़ती है; उसके प्राप्त होने पर 'परम राग' उत्पन्न हो जाता है, उसकी रक्षा करने में 'रौद्रध्यान' प्रगट हो जाता है तथा उसके नाश होने पर 'क्रोध-शोक' आदि सब विकार उत्पन्न हो जाते हैं; उन क्रोधादिक विकारों से महा पाप उत्पन्न होते हैं; उन पापों से नरकादिक समस्त दुर्गतियाँ प्राप्त होती हैं और उन दुर्गतियों में परिग्रह रखने वाले वे मूर्ख तीव्र दुःखों को प्राप्त होते हैं; यही समझकर, बुद्धिमानों को सब तरह के परिग्रहों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

ग्रंथा येऽभ्यन्तराः, विश्वे दुस्त्याज्याः कातरांगिनां।

महायत्नेन तेत्याज्याः, कृत्सादोषविधायिनः॥(246)

अर्थ : अंतरंग परिग्रह कातर पुरुषों से कभी नहीं छोड़े जाते तथा वे अंतरंग परिग्रह अनेक दोषों को उत्पन्न करने वाले हैं; इसलिए महान् प्रयत्न करके उन सब परिग्रहों का त्याग कर देना चाहिए।

यतोऽतः संगमाकेन, मज्जति प्राणानोऽखिलाः।

बाहोषु संगपकेषु, पापदुर्ध्यानखानिषु॥(247)

अर्थ : इसका भी कारण यह है कि इस अंतरंग परिग्रह रूपी कीचड़ में संसार के प्राणी अवश्य डूब जाते हैं।

अतस्तपो व्रतैः सार्ध, प्रव्रज्या निष्फलासतां।

वृथा वस्त्रपरित्यागोऽत्रान्तर्ग्रन्थाच्युतात्मनाम्॥ (248)

अर्थ : बाह्य परिग्रहों में डूब जाने से सज्जन पुरुषों के व्रत, तपश्चरण आदि भी सब निष्फल हो जाते हैं; और उनके साथ-साथ दीक्षा भी निष्फल हो जाती है; इसलिये जिन लोगों ने अंतरंग परिग्रहों का त्याग नहीं किया है उनका वस्त्रों का त्याग करना भी व्यर्थ है।

यथा मुञ्चति कृष्णाहि निर्माकं च विषं न भोः।

तथा कश्चित्कुधोः वस्त्रा, दीनिनान्तः परिग्रहान्॥ (249)

जिस प्रकार काला सर्प, अपनी कांचली तो छोड़ देता है; परन्तु विष को नहीं छोड़ता; उसी प्रकार कोई कोई मूर्ख वस्त्रों का तो त्याग कर देते हैं परन्तु अंतरंग परिग्रहों का त्याग नहीं करते।

अतो मिथ्यात्ववेदांश्च, कषायान् सकलेतरान्।

त्यक्तुं येऽत्राक्षमास्तेषां, वस्त्रत्यागोऽहिवद्भवेत्॥ (250)

इसलिए जो पुरुष मिथ्यात्व, वेद, कषाय और नौ कषायों के त्याग करने में असमर्थ है; उनका वस्त्रों का त्याग भी सर्प के समान समझना चाहिये।

महायत्नेन मत्वेति, मिथ्यावेदोदयान् बुधाः।

जायते च तया ध्यानं, कर्मरण्यदवानलम्॥ (251)

अंतरंग और बाह्य परिग्रहों का त्याग कर देने से सज्जनों का हृदय परम शुद्ध हो जाता है तथा कर्मरूपी वन को जलाने के लिए, दवानल अग्नि के समान, उत्तम ध्यान प्रगट हो जाता है।

ध्यानाच्च कर्मणां नाशस्ततो मोक्षोऽसुखातिगः।

वाचामगोचरंसौख्यं, नित्यं तत्र भजति ये॥(253)

ध्यान से कर्मों का नाश हो जाता है; कर्मों के नाश होने से समस्त सुखों से सहित, मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और मोक्ष में उनकी वाणी के अगोचर ऐसा नित्य सुख प्राप्त हो जाता है।

द्रव्यादीनुपधीन् बाह्यान्, यः क्लीवस्त्यक्तुमक्षमः।

सोऽन्तः स्थान् च कषायादीन्, रिपून् हन्ति कथं बहून्॥(254)

जो नुपंसक मनुष्य, (कुछ न करने वाला) धन, धान्य आदि बाह्य परिग्रहों का ही त्याग नहीं कर सकता; वह भला अंतरंग कषाय रूपी अनेक शत्रुओं को कैसे मार सकता है? अर्थात् कभी नहीं।

पूर्वं त्यक्त्वाखिलान् संगान्, कटिसूत्रादिकान् ततः।

इष्टवस्तूनि गृह्णाति, यः सोऽहो किं न लज्जते॥(255)

जो मुनि पहले तो करधनी आदि समस्त परिग्रहों का त्याग कर देता है; और

फिर वह इष्ट पदार्थों को ग्रहण करता है आश्चर्य है कि वह फिर भी लज्जित नहीं होता।

धन्या पूज्यास्त एवात्र, विरक्ता ये मुमुक्षवः।

शरीरादिषु नेहन्ते, संगं स्वल्पं सुखादि वा।।(256)

इस संसार में मोक्ष की इच्छा करने वाले जो वीतरागी पुरुष हैं वे ही धन्य और पूज्य हैं; क्योंकि वे शरीरादिक के लिए भी कुछ परिग्रह नहीं चाहते और न कभी सुख की इच्छा करते हैं।

विज्ञायेति द्विधा संगान्, त्यजंतु मुक्तिकांक्षिणः।

सौख्यैर्वैषयिकैः सार्धं, हत्वा लोभाक्षविद्विषः।। (257)

यही समझ कर, मोक्ष की इच्छा करने वाले मुनियों को लोभ और इन्द्रिय रूपी शत्रुओं को नाश कर, विषय जन्य सुखों के साथ-साथ देनों प्रकार के परिग्रहों का त्याग कर देना चाहिये।

शब्दरूपरसस्पर्श, गंधेषु विषयेषु च।

सुमनोज्ञामनोज्ञेषु, पंचाक्षाणामिहाखिलाः।।(258)

रागद्वेषादयो दक्षैस्त्यज्यन्ते ये सुभावनाः।

ताः पंच सर्वदा ध्येयाः, पंचमव्रत शुद्धये।।(259)

इन्द्रियाँ 5 हैं तथा उनके विषय भी शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध ये पाँच हैं, ये पाँचों विषय मनोज्ञ भी होते हैं और अमनोज्ञ भी अथवा अनिष्ट भी होते हैं; इन सबमें चतुर पुरुषों को राग, द्वेष छोड़ देना चाहिये; मनोज्ञ विषयों में राग और अमनोज्ञ विषयों में द्वेष छोड़ देना चाहिये। इन्हीं को परिग्रह त्याग महाव्रत को शुद्ध रखने के लिए इन पाँचों भावनाओं का सदा चिंतन करते रहना चाहिए।

5. आकिंचन्य महाव्रत की सफलता-

त्रिभुवनपतियपूज्यं, लोभतृष्णाद्विवृजं।

दुरिततिमिर सूर्य, श्री जिनेशादि सेव्यं।।

शिवशुभगतिमार्ग, सौख्यखानिं गुणाब्धिं।

श्रयत विद इहाकिंचन्यसारं प्रयत्नात्।।(260)

यह आकिंचन्य महाव्रत, तीनों लोकों के स्वामी तीर्थंकर देवों के द्वारा भी पूज्य हैं; लोभ, तृष्णा रूपी पर्वत को चूर करने के लिए सूर्य के समान है; भगवान् जिनेन्द्र देव भी इसको सेवन करते हैं, यह मोक्ष और शुभगति का मार्ग है; सुख की खान है,

गुणों का समुद्र है, इसलिए बुद्धिमानों को बड़े प्रयत्न से इस परिग्रह त्याग महाव्रत को धारण करना चाहिये।

महार्थ मोक्षमेवाहो, वा त्रिलोकीपतेः पदम्।

साधयन्ति महर्द्धिःवा चरितानि जिनादिभिः॥(261)

महान्ति वा स्वयं यानि, महाव्रतान्यतोबुधैः।

सार्थनामानि नान्यत्र, कीर्त्तितानि शिवाप्तये॥(262)

ये महाव्रत सर्वोत्कृष्ट मोक्ष पुरुषार्थ को सिद्ध करते हैं, इसलिए इनको 'महाव्रत' कहते हैं अथवा तीर्थंकर आदि महापुरुष इनका पालन करते हैं इसलिए भी ये 'महाव्रत' कहलाते हैं अथवा ये स्वयं ही महान् है इसलिए भी इनको 'महाव्रत' कहते हैं। इस प्रकार विद्वानों के द्वारा सार्थक नाम को धारण करने वाले महाव्रत मोक्ष प्राप्त करने के लिए ही मैंने यहाँ पर निरूपण किए हैं।

प्रथम अध्याय का उपसंहार-

एतान्यत्र महाव्रतानि महतां, योग्यानि साराणि च।

स्वर्माक्षैक निबन्धनानि विदुषा ये पालयन्त्यन्वहम्॥

ये महाव्रत महापुरुषों के ही योग्य हैं; सारभूत हैं; और स्वर्ग मोक्ष के कारण हैं; जो विद्वान् इनको प्रति दिन पालन करते हैं वे तीनों लोकों में उत्पन्न होने वाले सर्वार्थसिद्ध आदि के महा सुखों को पाकर फिर मनुष्य पर्याय में कर्मरूपी समस्त शत्रुओं को नाश कर, अनंत सुख देने वाले मोक्ष में शीघ्र ही जा बिराजमान होते हैं।

निराकांक्ष-निराडम्बर पिच्छी परिवर्तन समारोह सम्पन्न

बिना बोली एक परिवार द्वारा तृतीय चातुर्मास सम्पन्न

भारत भूमि में वाग्वर अञ्चल के अद्वितीय पुण्यशाली ग्राम नन्दौड़ के एक घर, एक परिवार के महान् सातिशय पुण्यार्जक श्रावक कलिकाल श्रेयांस स्व. प्रवीणचन्द्रशाह के महान् लक्ष्यानुसार उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती नन्दादेवी शाह परिवार व संकल्पवान् सहयोगी श्री ऋषभकुमार जैन, अहमदाबाद द्वारा तृतीय चातुर्मास बहुआयामी प्रभावी उपलब्धियों सह सम्पन्न हुआ। आचार्य श्री कनकनन्दी गुरुदेव श्रीसंघ द्वारा निस्पृह-निराडम्बर उक्त चातुर्मासों से सम्पूर्ण देश-विदेश में इसकी सर्वत्र प्रशंसा व अनुमोदना

की जा रही है, जो कि जैन समाज धर्म में व्याप्त विकृति व समस्याओं के समाधान की दृष्टि से घोर अन्धकार में प्रकाश स्तम्भ का कार्य कर रहा है।

आचार्य श्री द्वारा व्यापक अन्त्योदयी-सर्वोदयी आध्यात्मिक अभियान की शृंखला में गुरुदेव सृजित सात (7) ग्रन्थों का विमोचन सम्पन्न हुआ। श्रीसंघ के सेवा-सहयोग-दान आदि में तत्पर रहने वाले निराकांक्ष भक्त शिष्यों को आचार्य श्री द्वारा पुरानी पिच्छी बिना बोली के प्रदान की गई। प्राप्तिकर्त्ताओं में (1) श्री मयंक शाह चीतरी (2) श्री मधोकशाह, चीतरी (गुरुदेव श्रीसंघ के ज्ञान-विज्ञान के प्रभावक) (3) श्रीमती टीना पत्नी श्री मनीष जैन, कॉलोनी सागवाड़ा (श्री संघ के स्वाध्याय प्रवासकर्त्ता) (4) श्रीमती जिग्ना पत्नी रितेश जैन, डूंगरपुर (5) श्रीमती ऊषा पत्नी राजमल जैन, कॉलोनी, (6) श्री गोविन्दसिंह बन्धु रावली तोप, उदयपुर (निराकांक्ष साहित्य सहयोगी क्षत्रिय भक्त)। इसके अतिरिक्त आहारदानी, ज्ञानदानी, सेवा-वैयावृत्ति आदि के पुण्यार्जक जनों का आचार्य श्री ने यथायोग्य साहित्य देकर आशीर्वाद प्रदान किया। इस समारोह में बिना निमंत्रण स्व प्रेरणा भक्ति से अञ्चल व अन्य प्रान्तों से पधारे आबाल वृद्धों ने अपनी स्वरचित कविताओं आदि के माध्यम से गुणात्मक अभिव्यक्ति दी। आचार्य श्री संघ के आगामी चातुर्मास-प्रवास कराने हेतु भक्त शिष्यों द्वारा प्रायः 400 चातुर्मास के निवेदन किए गए हैं। व्यक्ति से लेकर समाज द्वा निवेदनों की शृंखला में मुम्बई से पधारे स्थानकवासी श्वेताम्बर भक्त हीरेन व राजभाई जैन द्वारा गुजरात के लिमड़ी नगर में आगामी चातुर्मास कराने हेतु भावभीना निवेदन किया गया। (शुभाकांक्षा सह श्रमण मुनि सुविज्ञसागर)

छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन

उठो साथियों लो अंगड़ाई, क्रांति का आह्वान हुआ है।

छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है।

सामाजिक हिंसा है अपव्यय, अनर्थदण्ड का कारण है।

कुरीतियाँ होड़ा होड़ी, ये आधुनिक रावण है।।

जो हराए इस रावण को, जो जन मन का राम हुआ है।

छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है।। (1)

चकाचौंध में लोग उमड़ते, मस्ती के गुलछर्र उड़ते।

पलभर की उस वाहवाही में, कितने ही आदर्श उजड़ते।
 ऐसी महफिलों से मित्रों, बस मिथ्या अभिमान हुआ है।
 छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है॥ (2)
 फिजूलखर्ची देखादेखी, भेड़चाल को छोड़ दीजिए।
 सद्गुरु के संकेत समझकर, अपना जीवन मोड़ दीजिए।
 जिसने सद्व्यय, मितव्यय समझा, वो सच्चा धनवान हुआ है।
 छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है॥ (3)
 सादगी की राह सुहानी, अपरिग्रह व्रत का आधार।
 आओ! इस शपथ पर चलकर, देश धर्म से कर लें प्यार॥
 मर्यादा के साथ सभी के, जीवन का उत्थान हुआ है।
 छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है॥ (4)
 अंधविश्वासों की अटवी, मानव को भटकाती है।
 सच्चे विश्वासों की प्राची, नई रोशनी लाती है॥
 आडम्बर जिसने भी छोड़ा, उसका महिमागान हुआ है।
 छोड़ो अपव्यय और प्रदर्शन, संतों का फरमान हुआ है॥ (5)

-डॉ.दिलीप धींग

निदेशक: अंतर्राष्ट्रीय प्राकृत अध्ययन व शोध केन्द्र
 सुगन हाउस 18, रामानुज अय्यर स्ट्रीट, साहुकारपेट, चैन्नई 600001
 ई.मेल: drdHING@gmail.com

अपने-अपने झंडों के डंडे नहीं, धर्म का झण्डा ऊँचा करने का समय

-सेवानिवृत्त जज डॉ.निर्मल जैन

ए-282, सरिता विहार मथुरा रोड नई दिल्ली-110076

ई.मेल: jainnirmal.955@gmail.com

जैनधर्म कोई धर्म-विशेष नहीं है, न केवल जैनियों के लिए ही है। यह तो एक विचार-धारा है, संपूर्ण मानवता के लिए जीवन-आधार है। जन-मानस की सुविधा के लिए उसको धर्म कहने लगे हैं। यह किसी भगवान के बारे में बात नहीं करता, यह

सभी मुक्त आत्माओं का सम्मान करता है। जैन विचारधारा पूरी तरह से भावना और कर्म पर आधारित है, इस विचारधारा को अपनाने के लिए किसी कुल या जाति विशेष में जन्म लेना आवश्यक नहीं। कर्म से कोई भी जैन हो सकता है। इसको धर्म का नाम देने इसकी व्यापकता को संकुचित करना होगा। धर्ममंचों से विलाप होता रहता है कि जैनियों कि जनसंख्या कम होती जा रही हैं। जनसंख्या में वृद्धि समाधान नहीं, जनसंख्या वृद्धि तो और अनेक समस्याएँ उत्पन्न कर देगी। जब जैन कहलाने वाले ही पूर्णतया इस मानवतावादी विचारधारा को पालन करने में उदासीन होकर इसके मूल्य को नहीं समझ रहे हैं तो अन्य कैसे समझ सकते हैं? उत्तम निराकरण यह होगा कि हम जो जैनधर्म के मूल सिद्धांतों का पालन करने और समझने के लिए जैन के रूप में पैदा हुए हैं एकजुट हों, मिलकर इस विचारधारा के प्रति आचरण करें। उस आचरण से प्राप्त सकारात्मक उपलब्धियाँ निश्चित ही अन्य लोगों को इसे अपनाने को आकर्षित करेंगी। जैन धर्म के प्रति उनकी आस्था बढ़ायेंगी। नई पीढ़ी हमारी धार्मिक प्रक्रियाओं की कट्टरता से तेज दौड़ती दुनिया के साथ एडजस्ट न कर पाने से विमुख हो रही है। उसे समन्वय का मार्ग सुझाया जाने की आवश्यकता है। जटिलता के स्थान पर भावात्मक आस्था-भाव का समावेश करना होगा। इन दिनों हमने जैनधर्म में अपनी असली भावना खो दी है। पूजा-अर्चना पद्धति भी विराग से हटकर राग की ओर आकर्षित हो रही है। पञ्चपरमेष्ठि के अतिरिक्त अन्य कई में आस्था संजोनी शुरू कर दी है। भक्ति-भाव भक्ति-रस में बदल गया है।

सबसे अधिक संवेदनशील बिन्दु यह है कि अपनी महत्त्वाकांक्षा और कुछ निहित प्रयोजनों से वशिभूत हो हम एक से अनेक हो गए हैं। उप-श्रेणियों में विभाजित हो चुके हैं। शाखाओं का पोषण करने में हम जड़ों को खोखला करते जा रहे हैं। अगर जड़ें ही कमजोर हो जाएंगी तो शाखाओं और तनों का अस्तित्व कहाँ से बचेगा? रचनात्मक एजेण्डा विहीन जितने संगठन और संस्था बन रही हैं उतने ही हम बिखरते जा रहे हैं। इसी बिखराव और अलगाव के कारण हम, हमारे तीर्थ, संत सभी हर ओर से असुरक्षित होते जा रहे हैं। हमें अपने अस्तित्व बचाने के लिए गंभीरता से एकजुट प्रयास करने चाहिए। अपने अलग-अलग झंडों के डँडे ऊँचे न कर सिर्फ अपने धर्म का, विचारधारा का झण्डा बुलंद करना होगा। एक सुलझा हुआ अध्यापक ही बेहतर शिक्षा और संस्कार दे सकता है। हमारे धर्म-गुरु ही हमें ऐसा

मार्ग-दर्शन दे सकते हैं कि हम सभी हर दुराग्रह, पूर्वाग्रह को छोड़ पंथवाद, अज्ञान से ऊपर उठकर मंजिल तक जाने वाले रास्तों को महत्व न देकर केवल और केवल उस मंजिल को जो अहिंसा, अनेकांत, अपरिग्रह, परस्परोग्रहो जीवनाम्, क्षमा पर आधारित है, को पाने का उपक्रम करें। अपने तीर्थकरों के अनुगामी बनें, अनुयायी नहीं। मंदिर, अनुष्ठानों के लिए नीलामी के स्थान बन गए हैं। पुराने तीर्थ उपेक्षित पड़े हैं लेकिन अधिक से अधिक नए मंदिरों का निर्माण एक अधिमान्य बात बन गई है। जैन समाज एक धनाढ्य समुदाय है। दान देना उसके स्वभाव में रचा-बसा है। वर्तमान में मंदिरों और अनुष्ठानों को दान करना धर्म का एकमात्र अर्थ विकल्प बन गया है। निर्वाण को छोड़ हम जाने किस मंतव्य हेतु निर्माण में जुट गए हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जरूरत है कि दान का उपयोग भव्य आयोजनों में न किया जाकर अपनी प्राचीन धरोहरों की सुरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, जैसे जन-हितकारी रचनात्मक प्रयोजनों के लिए एवं समाज के आर्थिक अभाव से जूझ रहे वर्ग के हितार्थ ही किया जावे।

संसार में पढ़ना तो बहुत लोग जानते हैं, पर क्या पढ़ना चाहिए, इस बात को विरले व्यक्ति ही जानते हैं। खाना सभी खाते हैं, पर क्या खायें, क्या नहीं, इस बात को कम ही लोग जानते हैं। बोलना बहुत लोग जानते हैं, पर क्या बोलें, यह बहुत कम लोग जानते हैं। क्या आप नहीं चाहते कि आपकी गिनती बहुमत नहीं अल्पमत में हो?

सर्वत्र ध्यान रखने योग्य

वर्तमान की जैन सम्बन्धी समस्याओं व विषमाताओं के समाधान-निवारण हेतु अनेक वर्षों (2004) से अनेक लोगों के निवेदन व रिपोर्ट से भी प्रेरित होकर (1) जैनधर्म के अभी की समस्याएँ एवं समाधान (2) श्रावक-साधु धर्म (3) ध्यान (4) भाव (5) भाव-द्रव्य प्रदूषण : समस्या-समाधान (6) आध्यात्मिक सुपर थिंकिंग आदि कृतियों की रचना हुई।

दोष, निन्दा व अप्रभावना से बचने व बचाने हेतु मेरा यह शुभ प्रयास है, न कि अन्य की निन्दा आदि हेतु।

- आचार्य कनकनन्दी